प्रकाशिका - 8
Prakashika - 8

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र विरचित

लघ्वर्हन्नीति

(मूल एवं वृत्ति, पाठान्तर, हिन्दी अनुवाद, परिशिष्टादि सहित)

सम्पादक
अशोक कुमार सिंह

राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन
॥ विज्ञानमुपास्व ॥
National Mission for Manuscripts

लघ्वर्हन्नीति

Prakashika Series
No. 8

General Editor
Dipti S. Tripathi

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र विरचित

लघ्वर्हन्नीति

(मूल एवं वृत्ति, पाठान्तर, हिन्दी अनुवाद, परिशिष्टादि सहित)

अनुवादक एवं सम्पादक

अशोक कुमार सिंह

National Mission for Manuscripts

राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन

नयी दिल्ली

तथा

न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन

नयी दिल्ली

प्रकाशक :
राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन
11, मानसिंह रोड,
नई दिल्ली-110 001
फोन : 2338 3894; फैक्स : 2307 3387
E-mail: director.namami@nic.in
www.namami.org

सह-प्रकाशक :
न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन
208, द्वितीय तल, प्रकाशदीप बिल्डिंग,
4735/22, अंसारी रोड, दरिया-गंज,
नई दिल्ली-110002
फोन : 011-23280214, 011-23280209
E-mail : deepaknbbc@yahoo.in

प्रथम संस्करण : 2013

© राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन

ISBN: 978-93-80829-02-9
ISBN: 978-93-80829-17-3

मूल्य : Rs. 350.00

आमुख

भारतीय परम्परा में अनेक ऐसे आचार्य हुए हैं जिन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा एवं ज्ञान के द्वारा अनेक विषय क्षेत्रों को समृद्ध बनाया है। ऐसे ही आचार्यों की परम्परा में आचार्य हेमचन्द्र का नाम अग्रगण्य है। बारहवीं शताब्दी में गुजरात में आविर्भूत हेमचन्द्र, जैन आचार्य थे लेकिन उनका काम किसी मत की परिधि में सीमित नहीं रहा। उन्होंने उस काल में प्रचलित विभिन्न शास्त्रों को अपने लेखन से समृद्ध किया। उनके लेखन की महती विशेषता यह है कि उन्होंने जो शास्त्र-ग्रन्थ लिखे उन पर स्वयं वृत्ति की रचना भी की। यह वैशिष्ट्य संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य में अद्वितीय है। व्याकरण के क्षेत्र में सिद्धहेमशब्दानुशासन अष्टाध्यायी की शैली में लिखा गया अति प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके प्रथम सात अध्यायों में संस्कृत का व्याकरण एवं आठवें अध्याय में प्राकृत का व्याकरण निबद्ध हैं। इस ग्रन्थ पर लघुवृत्ति और वृहद्वृत्ति की रचना भी हेमचन्द्राचार्य ने की है। इसी तरह कोश का निर्माण करने के समय अभिधानचिन्तामणि की वृत्ति भी आचार्य ने स्वयं लिखी है। काव्यशास्त्र एवं छन्दशास्त्र के क्षेत्र में काव्यानुशासन और छन्दोऽनुशासन की रचना करते हुए भी वह वृत्ति लिखना नहीं भूले। दर्शनशास्त्र और योगशास्त्र में उनके दो ग्रन्थ प्रमाणमीमांसा एवं योगशास्त्र सुप्रसिद्ध हैं। इसी क्रम में राजनीतिशास्त्र पर लध्वर्हन्नीति नामक उनका ग्रन्थ वृत्ति के साथ उपलब्ध होता है। शास्त्र लेखन में वैविध्य उनके ज्ञान एवं मौलिक चिन्तन का साक्षात् प्रमाण है।

ऐसा नहीं है कि हेमचन्द्राचार्य केवल शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना में प्रवृत्त हुए अपितु सृजनात्मक साहित्य में भी उनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं पर उनका जो समान अधिकार था वह दोनों ही भाषाओं में द्व्याश्रयकाव्य की रचना के द्वारा उन्होंने समालोचकों के समक्ष उपस्थापित किया। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित एवं स्थविरावलिचरित उनकी अन्य साहित्यिक कृतियाँ हैं। उनके चार स्तोत्र ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं। आचार्य हेमचन्द्र के बहुआयामी व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना, उनकी कृति के महत्त्व का मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक है।

राजनीति शास्त्र का प्रतिपादन अनेक नामों से संस्कृत भाषा में होता रहा है। इसे दंडनीति, अर्थशास्त्र, शस्त्रविद्या, राज्यशास्त्र, राजधर्म, राजनीति, न्यायशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि नामों से भी अभिहित किया गया है। इसमें सर्वाधिक प्रचलित और स्वीकृत नाम दंडनीति एवं अर्थशास्त्र हैं। परवर्ती आचार्यों ने नीतिशास्त्र और न्यायशास्त्र शब्दों का भी प्रयोग किया है। इस क्रम में शुक्रनीति का नाम पर्याप्त प्रसिद्ध है। हेमचन्द्राचार्य ने प्रस्तुत रचना का नाम लघ्वर्हन्नीति रखा। इसको पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पूर्व प्राकृत भाषा में निबद्ध नीतिशास्त्र का कोई विशाल ग्रन्थ उपलब्ध रहा होगा। उसी ग्रन्थ से सार ग्रहण कर आचार्य ने लघ्वर्हन्नीति का प्रणयन किया होगा। मूलग्रन्थ का उन्होंने वृहदर्हन्नीति के नाम से उल्लेख किया है। यह ग्रन्थ अभी अनुपलब्ध है। जैन परम्परा में इस विषय पर उपलब्ध दूसरी कृति सोमदेव सूरी का नीतिवाक्यम् है।

वैसे तो राजनीतिक विषय से सम्बद्ध ग्रन्थ होने के कारण इस रचना में राजा के गुणों का वर्णन, युद्ध के प्रकार, युद्ध की नीति, युद्ध के भेद आदि विषयों का वर्णन है ही लेकिन उसके अतिरिक्त व्यवहार अधिकार एवं प्रायश्चित्त अधिकार के माध्यम से सामाजिक एवं नैतिक सन्दर्भों को भी संकलित किया गया है। नीतिसम्पन्न राजा प्रजा के लिये हितकारी और समृद्धि का स्रोत होता है तो नैतिक मूल्यों का पालन करने वाली प्रजा देश की सुदृढ, सर्वांगीण सुखशान्ति का आधार होती है। इसलिए लघ्वर्हन्नीति में चार प्रकरणों में इन समस्त विषयों को समाहित किया गया है।

लघ्वर्हन्नीति का चार पाण्डुलिपियों के आधार पर डॉ० अशोक कुमार सिंह ने सुयोग्य सम्पादन किया है। नीतिशास्त्र के क्षेत्र में भारतीय चिन्तन एवं तत्सम्बन्धी मूल्यों को समझने में यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। इसके द्वारा भारतीय राजनीतिशास्त्र के विकास को समझने में भी सहायता मिलेगी। संस्कृत साहित्य एवं नीतिशास्त्र के अध्येताओं के समक्ष इस ग्रन्थ को प्रस्तुत करते हुए राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन भोगीलाल लहेर चन्द इन्स्टिच्यूट का आभार व्यक्त करता है जिनके वित्तीय अनुदान से सम्पादन एवं अनुवाद की यह परियोजना पूर्ण हो सकी। अप्रकाशित पाण्डुलिपियों को प्रकाश में लाने के लिए मिशन सतत् प्रयत्नशील है एवं भोगीलाल लहेर चन्द इन्स्टिच्यूट जैसी सारस्वत संस्थाओं से भविष्य में भी सहयोग की आशा रखता है। इस ग्रन्थ के शीघ्र एवं सुरुचिपूर्ण प्रकाशन में न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन के सर्वेसर्वा श्री सुभाष जैन ने जो तत्परता और अभिरुचि दिखलायी है, वह अभिनन्दीय है। आशा है यह ग्रन्थ विद्वानों एवं शोधछात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

दिल्ली
नववर्ष २०१३

दीप्ति शर्मा त्रिपाठी
निदेशक

प्रस्तावना

कलिकाल सर्वज्ञ महान जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र (वि० सं० ११४५ - १२२९) द्वारा संस्कृत में प्रणीत एवं स्वोपज्ञ वृत्ति युक्त राजनीति शास्त्र विषयक लघ्वर्हन्नीति का भोगीलाल लहेरचन्द भारतीय संस्कृति मंदिर, दिल्ली तथा हेमचन्द्राचार्य जैन हस्तप्रत भण्डार, पाटण (गुजरात) में उपलब्ध देश में मात्र चार हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर परिशिष्टों सहित सम्पादित रूप व हिन्दी अनुवाद (मूल एवं वृत्ति) विद्वज्जगत् के समक्ष प्रस्तुत है।

गुजरात के धन्धूका में वि० संवत् ११४५ में उत्पन्न श्री हेमचन्द्र मोढवंशीय चाचिग सेठ और पाहिनी की सन्तान थे। इनका बचपन का नाम चाङ्गदेव था। इनकी दीक्षा कोटिक गण में, बज्र शाखा में, चन्द्रगच्छ में श्रीदेवचन्द्रसूरि के समीप वि० सं० ११५० में हुई। इनका गुरु प्रदत्त नाम सोमचन्द्र था। दीक्षा के लगभग सोलह वर्ष पश्चात् ही विक्रम सं० ११६६ में इन्हें आचार्य पद प्रदान किया गया और उनका नाम हेमचन्द्र रख गया। अपने अगाध एवं व्यापक ज्ञान के कारण वे कलिकाल सर्वज्ञ नाम से प्रसिद्ध हुए। गुजरात के चौलुक्य राजाओं सिद्धराज जयसिंह एवं कुमारपाल पर इनका दूरगामी प्रभाव पड़ा। विशेषतः राजा कुमारपाल इनको गुरु मानते थे। इनके प्रतिबोध से उक्त राजा ने सप्त व्यसन त्याग किया एवं अमारि घोषणा के साथ अनेक जनहित के कार्य किये। पूर्व मध्यकाल में सांस्कृतिक उत्थान में इनका महती योगदान रहा। आचार्य हेमचन्द्र और राजा कुमारपाल का जीवन चरित्र पूर्व मध्यकालीन भारत के इतिहास में अद्वितीय स्थान रखता है।

कलिकालसर्वज्ञ ने प्रभूत साहित्य का प्रणयन किया। विविध विषयों पर मूल कृतियों के साथ अपवादस्वरूप एक-दो को छोड़कर सब पर स्वोपज्ञवृत्ति के रूप में विशाल व्याख्या साहित्य की सर्जना भी आप ने की। व्याकरण, कोश, काव्यशास्त्र, छन्दशास्त्र, दर्शन, काव्यसाहित्य, योग, स्तुति एवं स्तोत्र, राजनीतिशास्त्र जैसे विषयों पर बहुमूल्य ग्रन्थ आपने प्रसूत किये। इनकी कृतियों की सूची इस प्रकार है—

(अ) व्याकरण

१. सिद्धहेमशब्दानुशासन–

(१-७ अध्याय संस्कृत व्याकरण)

(८वाँ अध्याय प्राकृत व्याकरण)

स्वोपज्ञवृत्ति – सिद्धहेमलघुवृत्ति

सिद्धहेमबृहद्वृत्ति (तत्त्वप्रकाशिका)

सिद्धहेमबृहन्न्यास(शब्दमहार्णवन्यास) - अपूर्ण सिद्धहेमप्राकृतवृत्ति

लिङ्गानुशासन-सटीक

उणादिगण-विवरण

धातुपारायण-विवरण

(ब) कोश

२. अभिधान-चिन्तामणि

स्वोपज्ञवृत्ति- अभिधान-चिन्तामणि वृत्ति

अभिधान-चिन्तामणि परिशिष्ट

३. अनेकार्थक कोश

४. निघण्टुकोश (वनस्पति विषयक)

५. देशीनाममाला

स्वोपज्ञवृत्ति – देशीनाममाला – वृत्ति

(स) काव्यशास्त्र

६. काव्यानुशासन

स्वोपज्ञवृत्ति – अलङ्कार-चूडामणि

विवेकवृत्ति

(द) छन्दशास्त्र

७. छन्दोऽनुशासन

स्वोपज्ञवृत्ति

छन्दश्चूडामणिवृत्ति

(य) दर्शनशास्त्र

८. प्रमाण-मीमांसा (अपूर्ण)

स्वोपज्ञवृत्ति – वेदाङ्कुश अपरनाम द्विजबदनचपेटा

(र) काव्यसाहित्य

९. द्व्याश्रयकाव्य

(संस्कृत द्व्याश्रयकाव्य)

(प्राकृत द्व्याश्रयकाव्य)

१०. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित

११. परिशिष्टपर्व अपरनाम स्थविरावलिचरित

(ल) योग

१२. योगशास्त्र

– स्वोपज्ञवृत्ति

(व) स्तुति-स्तोत्र

१३. वीतरागस्तोत्र

१४. अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका

१५. अयोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका

१६. महादेवस्तोत्र

(श) राजनीतिशास्त्र

१७. लघ्वर्हन्नीति

- संक्षिप्त वृत्ति

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित कृतियाँ व व्याख्या साहित्य भी आचार्य हेमचन्द्र की मानी जाती हैं–

कृतियाँ

१८. अर्हन्नाम समुच्चय

१९. नाभेय - नेमिद्विसन्धान काव्य

२०. न्याय बलाबलसूत्र

व्याख्या साहित्य

- सिद्धहेममध्यमवृत्ति

- सिद्धहेमरहस्यवृत्ति

- बलाबलसूत्र (बृहद्वृत्ति)
- बालभाषा - व्याकरणसूत्रवृत्ति

लघ्वर्हन्नीतिशास्त्र का प्रतिपाद्य

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र द्वारा ९१८ संस्कृत श्लोकों में विरचित कृति लघ्वर्हन्नीति चार अधिकारों में वर्गीकृत है। इसके चारों अधिकारों का शीर्षक १. भूमिका-भूपालगुणवर्णन, २. युद्ध तथा दण्डनीति, ३. व्यवहार अधिकार और ४. प्रायश्चित्त है। युद्ध तथा दण्डनीति एवं व्यवहार अधिकार में दो और शेष दो अधिकारों – भूपालगुणवर्णन और प्रायश्चित में एक-एक प्रकरण ही है। व्यवहार अधिकार उन्नीस प्रकरणों में वर्गीकृत है। प्रथम प्रकरण में व्यवहार मार्ग का स्वरूप और इसके अठारह भेदों का वर्णन किया गया है। शेष अठारह प्रकरणों में एक-एक विषय का वर्णन है। व्यवहार मार्ग के अठारह भेदों के शीर्षक इस प्रकार हैं – १. ऋणादानस्वरूप, २.सम्भूयोत्थान, ३. देयविधि, ४. दायभाग, ५. सीमा-विवाद, ६. वेतनादान, ७. क्रयेतरानुसन्ताप, ८. स्वामि-भृत्यविवाद, ९. निक्षेप, १०. अस्वामिविक्रय, ११. वाक्पारुष्य, १२. समय-व्यतिक्रम, १३. परस्त्रीग्रहण, १४. द्यूत, १५. स्तैन्य, १६. साहस, १७. दण्डपारुष्य और १८. स्त्री-पुरुषधर्म।

वर्ण्य-विषय की आवश्यकतानुसार आचार्य हेमचन्द्र ने एक विषय के लिये अधिकतम १४५ और न्यूनतम १२ श्लोकों का उपयोग किया है। इस दृष्टि से दायभाग सर्वाधिक विस्तृत (१४५ श्लोक) और सम्भूयोत्थान- प्रकरण, समयव्यतिक्रान्तिप्रकरण और द्यूतप्रकरण लघुतम आकार वाले हैं। इनमें प्रत्येक में श्लोकों की संख्या मात्र बारह है।

लघ्वर्हन्नीति के प्रथम अधिकार 'भूमिकाभूपालादिगुणवर्णन' का आरम्भ मङ्गलाचरण, जिसमें प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव और अन्तिम महावीर स्वामी की स्तुति है तथा ग्रन्थ-निर्माण का प्रयोजन, राजगृह में महावीर आगमन, महावीर के समीप राजाश्रेणिक का आगमन, श्रेणिक का महावीर से प्रश्न और नीतिशास्त्र की उत्पत्ति के वर्णन रूप ग्रन्थ की भूमिका से किया गया है। इसके बाद राजा के छत्तीस गुण, राजा को नीति शिक्षा, राजा के पाँच यज्ञ, राजा को प्रजापालन की शिक्षा, मन्त्री के गुण, मन्त्री को शिक्षा, राजा और मन्त्री के गुणवान होने से राज्य को होने वाले लाभ, अच्छे सेनापति के लक्षण तथा सेनापति को शिक्षा, दूत के लक्षण तथा राज्य के अधिकारियों को सामान्य शिक्षा का निरूपण किया गया है।

दो प्रकरणों—युद्ध एवं दण्डनीति—में वर्गीकृत द्वितीय अधिकार के प्रथम 'युद्ध प्रकरण' का आरम्भ जिन अजितनाथ की स्तुति से किया गया है। राजा और मन्त्री के गुप्त मन्त्रणा स्थल, त्रिविध नीति, षड्-अङ्ग, चतुर्विध साधन, साधन-लक्षण,

युद्ध-काल में दूत का कार्य, युद्ध हेतु प्रस्थान का काल, चातुर्मास में युद्ध-निषेध, युद्ध के समय में राजा द्वारा धारण किये जाने वाले उपकरण, व्यूह-रचना, सेना-निवेश के लिये उपयुक्त स्थल, शत्रु के सम्मुख न आने पर राजा की कार्य-योजना, युद्ध में राजा का व्यवहार, स्थल-विशेष के अनुरूप शस्त्र-चयन, दुर्ग स्थित शत्रु के साथ युद्ध विधि, विजयोपरान्त वीरों को उपहार और विजय के पश्चात् अपने देश वापस आने का वर्णन किया गया है।

द्वितीय अधिकार के द्वितीय 'दण्डनीतिप्रकरण' का आरम्भ जिन सम्भवनाथ की स्तुति से हुआ है। जैन आगम वर्णित सप्तविध दण्डनीति, आरोपी के विरुद्ध वादी का अभियोग प्रस्तुत न होने पर भी प्रजापालन हेतु दण्डनीति के प्रयोग की प्रक्रिया, अपराध व देशकाल के अनुरूप दण्डनीति का प्रयोग, दण्डनीति का विशेष स्वरूप, अन्यायपूर्वक किये गये दण्ड से प्राप्त धन का प्रजाहित में उपयोग, दण्ड प्रदान के दस स्थान, उत्तम दण्ड के लक्षण, अपराध के अनुसार दण्ड और अदण्डनीय व्यक्ति पर प्रकाश डाला गया है।

तृतीय व्यवहाराधिकार के आरम्भ में भगवान अभिनन्दननाथ की स्तुति की गई है। इसमें कुल उन्नीस प्रकरण हैं। पहले व्यवहाराधिकार प्रकरण में व्यवहार का लक्षण, इसके द्विविध और अष्टादशविध भेद, वाद के आठ भेद, सभा में राजा का व्यवहार, वादी के द्वारा प्रदत्त आवेदन का स्वरूप, आवेदन की योग्यता-अयोग्यता का निर्णय, पक्षाभासयुक्त आवेदन सुनवाई के अयोग्य, पक्षाभास के प्रकार एवं स्वरूप, अनेक विषय युक्त आवेदन सुनने का निषेध, अनेक विषय युक्त आवेदन भी सुनने की विशेष स्थितियाँ, अधिकार पत्र के विना स्वयं को स्वजन बताने पर कार्यवाही आदि का वर्णन है।

प्रतिवादी से उत्तर माँगने की विधि, उत्तर देने की अवधि, विशेष प्रकार के वादों में उत्तर देने हेतु समय का निषेध, सुनने योग्य उत्तर के चार रूप, न सुनने योग्य पञ्चविध उत्तर, न्यायाधीश का प्रतिवादी के द्वारा दिये गये उत्तर के विषय में वादी को सूचना, पञ्चविध पक्षहीनता का स्वरूप, वादी द्वारा प्रतिवादी के उत्तर की बातों का खण्डन, प्रतिवादी द्वारा वादी की बातों का पुनः उत्तर, उक्त चारों पत्रों का अवलोकन कर न्यायाधीश एवं सभासदों द्वारा निर्णय करने का निर्देश है।

तत्पश्चात् सभासदों का लक्षण एवं संख्या, साक्षियों का लक्षण, साक्षियों को शपथ दिलाने से लाभ, साक्षियों को मान्य एवं अमान्य करने के आधार, वादियों के साक्ष्य के पश्चात् प्रतिवादियों का साक्ष्य, आत्मीय जनों के साक्ष्य पर आपत्ति, न्यायाधीश एवं सभासदों द्वारा सभी वक्तव्यों पर विचार, असत्य साक्ष्य देने वाले को दण्ड, दोनों पक्षों के साक्षियों के असत्य होने पर राजा का कर्त्तव्य, दोनों पक्षों के साक्षियों के अभाव में राजा के कर्त्तव्य आदि के निर्देश के साथ इस अधिकार को समाप्त किया गया है।

१. ऋणादान प्रकरण

सामान्यतः आवश्यकतानुसार ऋण लेना, सूद देना, ऋणव्यवहार का मूलस्रोत था। कौन सा ऋण देय या अदेय है, ऋण देने व वसूल करने की पद्धति क्या है? इस व्यवस्था से सम्बन्धित प्रकरण ऋणादान प्रकरण कहलाता था। तृतीय अधिकार के इस प्रथम प्रकरण में भगवान सुमतिनाथ की स्तुति के पश्चात् ऋण का लक्षण, ऋणकर्त्ता की अर्हता और ऋण के प्रयोजन, ऋण कर्त्ता से लिया जाने वाला प्रपत्र, वर्ण-विशेष हेतु भिन्न-भिन्न ब्याज दर का प्रावधान, चतुर्विध ब्याज और ऋणी द्वारा धन न लौटाने पर राजा से निवेदन का वर्णन है। साथ ही हिरण्य-धान्य-वस्त्रादि धरोहर रखने, धरोहर रखी गई वस्तु के चोरी होने की स्थिति, पितृकृत ऋण की पुत्रों द्वारा वापसी, नियत अथवा अनियत धरोहर, स्थावर एवं जङ्गम धरोहर, धनी द्वारा विना ऋण दिये ऋणी से प्रपत्र लेना, ऋण का ब्याज, धरोहर रखने पर ब्याज का दर, पशु, वस्त्र आदि को धरोहर रखना, पिता का देय पुत्र द्वारा वापस न करने की स्थिति, स्वामी के कुटुम्बार्थ दास कृत ऋण की वापसी आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

२. सम्भूयोत्थान प्रकरण

सम्भूय का अर्थ संयोग, उत्थान का अर्थ उन्नति। जब अनेक जन या व्यापारी या कलाकार, शिल्पकार एवं अन्य लोग परस्पर मिलकर या साझेदार होकर किसी कार्य को करते थे, तब उसे सम्भूयोत्थान कहते थे। सहकारी आधार पर किया गया कार्य भी सम्भूयोत्थान कहलाता था। सम्भूय उत्थान में प्रत्येक भागीदार बराबर होता है। इस प्रक्रिया से सम्बन्धित विवाद एवं व्यवधान को सम्भूय उत्थान व्यवहार कहते थे। इसमें भगवान पद्मप्रभु की स्तुति के पश्चात्, समवाय के स्वरूप और सदस्यों के हिस्से की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

३. देय विधि प्रकरण

तृतीय देय प्रकरण में भगवान सुपार्श्व की स्तुति के पश्चात् देय विधि के दो रूप, छः प्रकार के देय पदार्थ, सोलह और नव प्रकार के अदेय तथा देय का स्वरूप वर्णित किया गया है।

४. दाय भाग प्रकरण

चतुर्थ दाय भाग प्रकरण में भगवान चन्द्रप्रभ की स्तुति के बाद दायभाग का स्वरूप, पितामह की सम्पत्ति में भाइयों का भाग, पिता की सम्पत्ति में पुत्रों का भाग, पिता की सम्पत्ति में पुत्रेतर भागीदारों का निर्णय, माता-पिता की सम्पत्ति में माता-पिता की इच्छा की प्रमुखता, पिता द्वारा कृत भाग के अमान्य होने की स्थितियाँ, सम्पत्ति में ज्येष्ठ भाइयों का विशेष अधिकार, पिता की सम्पत्ति में

कन्या-विवाह में व्यय का प्रावधान, पिता के मरणोपरान्त माता का भाग, युगलिया के रूप में उत्पन्न बालकों में ज्येष्ठता, अग्रजा पुत्री से कनिष्ठ पुत्र की ज्येष्ठता, विधवा का अधिकार, विवाहिता पुत्री की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति के स्वामित्व का निर्धारण, विभाजनोपरान्त उत्पन्न पुत्र का सम्पत्ति में स्वामित्व, चतुर्वर्ण स्त्रियों के पुत्र से उत्पन्न बालकों का भाग, न्यासी का नामाङ्कन,न्यासी का दोषयुक्त होना, विधवा स्त्रियों द्वारा दत्तक ग्रहण का नियम, दत्तक ग्रहण विधि, जैन सिद्धान्त के अनुसार मान्य प्रमुख पञ्चविध पुत्र, जैनेतर परम्परा में मान्य अष्टविधपुत्रों का लक्षण, सम्पत्ति-प्राप्ति की दृष्टि से सम्बन्धों की वरीयता, सदाचारिणी एवं दुराचारिणी विधवा का सम्पत्ति में भाग, विधवा का सम्पत्ति में भाग, पुत्री के धन पर अधिकार, दीक्षा लेने वाले की सम्पत्ति पर भाइयों का अधिकार, दत्तक का विरुद्ध होना, पितामह की सम्पत्ति में कुटुम्बियों का अधिकार, औरस माता व पितृव्य (चाचा) की सम्पत्ति का स्वामित्व, सास तथा बहू का अधिकार, विधवा की पुत्री को सम्पत्ति का स्वामित्व, अन्यगोत्रियों को सम्पत्ति का अधिकार-निषेध, स्त्री-धन अधिग्रहण, देशकाल के अनुरूप भाग का विभाजन आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

५. सीमा-विवाद

सीमा विवाद का सम्बन्ध जनपद, ग्राम, खेत या गृह की सीमा से था। क्षेत्र के अधिकार को लेकर सेतु (बाँध), केदार (मेंड़) और खेत की सीमा के घटने-बढ़ने के विवाद को क्षेत्रज विवाद कहते थे। सीमा से प्रयोजन दो नगर, दो ग्राम, दो खेत एवं दो गृहों के मध्य एवं मार्ग के किनारे पड़ने वाली उस रेखा, चिह्न, स्थान और वस्तु से होता था जहाँ एक का अधिकार समाप्त होकर दूसरों का प्रारम्भ होता था। तालाब, पुल, जलप्रवाह के स्थान के निर्धारण का विवाद सीमा विवाद प्रकरण में सम्मिलित होता था।

इस प्रकरण में भगवान पुष्पदन्त की स्तुति के बाद सीमा के स्वरूप, पञ्चविध सीमायें, षड्विध सीमा के विवाद, सीमा-विवाद पर न्यायाधीश का कर्त्तव्य, सीमा पर चिह्न बनाना, सीमा-निर्णय हेतु उपयुक्त साक्षी, सेतु तथा कुएँ का सार्वजनिक प्रयोग आदि विषयों का वर्णन है।

६. वेतनादानस्वरूपप्रकरण

भृत्यों (नौकरों) को वेतन देने या न देने के विषय वेतनादान के व्यवहार विषय कहलाते थे। इस प्रकरण के आरम्भ में भगवान शीतलनाथ की स्तुति की गई है। पञ्चविध सेवकों एवं पञ्चविध दासों का लक्षण, दास को मुक्त करने की विधि, दास को दासत्व से मुक्त करवाने के उपाय, भृत्य को वेतन प्रदान करने की

विधि, दोषी भृत्य को दण्ड आदि विषयों का निरूपण इस प्रकरण में किया गया है।

७. क्रयेतरानुसन्ताप प्रकरण

इसका शाब्दिक विश्लेषण है क्रय – खरीदना, इतर अर्थात् क्रय से भिन्न विक्रय – बेचना, अनुशय – पश्चात्ताप करना। क्रय-विक्रय के पश्चात् पश्चात्ताप अर्थात् क्रय के बाद वस्तु लौटा देना, विक्रय के बाद वस्तु न देना, क्रयविक्रयानुशय कहलाता था। चल व अचल दोनों ही प्रकार की सम्पत्ति इस विवाद का विषय होती थी। यदि ग्राहक किसी वस्तु का मूल्य देकर, क्रय करने के बाद उस वस्तु को लेना ठीक नहीं समझता, तो उसका यह आचरण क्रीतानुशय कहलाता था। यदि व्यापारी किसी द्रव्य या पण्य का मूल्य लेकर विक्रय कर देने के बाद भी खरीददार को वह द्रव्य नहीं देता, तो विक्रेता के इस आचरण को विक्रिय सम्प्रदान कहते थे।

क्रयेतरानुसन्ताप प्रकरण का आरम्भ भगवान श्रेयांसनाथ की स्तुति से हुआ है। इसमें क्रय और विक्रय कर क्रेता और विक्रेता अपने सौदों से क्रमशः मूल्य की अधिकता और न्यूनता तथा वस्तु से असन्तुष्ट होकर पश्चात्ताप करते हैं। इससे सम्बन्धित वस्तु-परीक्षा की अधिकतम अवधि, वस्तु वापस करने की विधि, स्वर्ण आदि धातुओं की परीक्षा जैसे विषयों पर विचार किया गया है।

८. स्वामिभृत्यविवाद प्रकरण

पशुस्वामी व पशु चरवाहे के मध्य विवाद, स्वामी व सेवक का विवाद स्वामिभृत्यविवाद प्रकरण की परिधि में आता था। इसमें भगवान वासुपूज्य की स्तुति के बाद दूसरे के खेतों को हानि पहुँचाने वाले पशु मालिक को दण्ड, गोपालक को दण्ड, गोपालक का कर्त्तव्य, गोपालक को वृत्ति, चारागाह का प्रावधान आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

९. निक्षेप प्रकरण

निक्षेप अर्थात् धरोहर, उपनिधि, अमानत आदि। मनुष्य शङ्कारहित होकर, दूसरे पर विश्वास कर, उसके पास अपनी वस्तु, द्रव्य, धरोहर के रूप में रखता था। धरोहर के रूप में रखी वस्तु निक्षेप या उपनिधि कहलाती थी। इस प्रकरण में भगवान विमलनाथ की स्तुति के बाद निक्षेप रखने के कारण, धनवान् द्वारा निक्षेप वापस न करना, निक्षेप का नष्ट होना, निक्षेप का हरण करना, साक्षियों की योग्यता, साक्षियों के प्रकार, साक्षियों के सामान्य गुण आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

१०. अस्वामिविक्रय प्रकरण

सामान्यतः धरोहर में रखी या चुराई सम्पत्ति को, वस्तु के वास्तविक स्वामी के परोक्ष में विक्रय करना अस्वामिविक्रय कहलाता था। मुद्राङ्कित या मुद्रारहित निक्षेप, दूसरे की चोरी की गई वस्तु, उत्सव के निमित्त ली गई वस्तु, किसी की छूटी हुई वस्तु या प्रतिभूति को गुप्त रूप में विक्रय करना अस्वामिविक्रय माना गया है। दूसरे के धन का गुप्तरूप में दान देना भी इसी प्रकार के अपराध की श्रेणी में माना जाता था।

इस प्रकरण में भगवान अनन्तनाथ की स्तुति के बाद स्वामी की आज्ञा के विना विक्रय, अल्प मूल्य में निर्धन से बहुमूल्य वस्तु लेने का दण्ड, अपनी आज्ञा के विना विक्रय की गई वस्तु को दूसरे के हाथ में पाना, विना स्वामित्व वाले धन का उपयोग जैसे विषयों का वर्णन किया गया है।

११. वाक्पारुष्य प्रकरण

इस प्रकरण में भगवान धर्मनाथ की स्तुति करते हुये वाक्पारुष्य का लक्षण, प्रयोग में न लाने वाले वचन, चतुर्वर्ण के मनुष्यों द्वारा भिन्न-भिन्न वर्णों के साथ कटु वचन पर दण्ड, उपदेशक के अधिकार का उल्लङ्घन करने पर दण्ड, विकल अङ्ग को लक्ष्यकर लोगों को काना, बहरा, लूला कहने वाले को दण्ड आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

१२. समय-व्यतिक्रान्ति प्रकरण

श्रेणियों, निगमों व पूगों के नियम समय या संविद रूप हैं। मनु, याज्ञवल्क्य ने इसे संविद व्यतिक्रम, बृहस्पति ने समयातिक्रम एवं कौटिल्य ने सम्यानपाकर्म आदि शीर्षक से इसका उल्लेख किया है।

नियत की हुई व्यवस्था का नाम संविद या समय है। उसका उल्लङ्घन व्यतिक्रम माना जाता था। अनेक लोगों द्वारा किसी विशिष्ट नियम या रूढ़ि या परम्परा को स्वीकार करना संविद होता था। यह परम्परा दल के सम्पूर्ण सदस्यों को एकता के सूत्र में बाँधे रखती थी। इनका अनुकरण अनिवार्य था। बारहवें समय-व्यतिक्रान्ति प्रकरण में भगवान शान्तिनाथ की स्तुति करते हुये समयधर्म का लक्षण, समयधर्म के उल्लङ्घन पर दण्ड, साधारण द्रव्य हरण करने वाले को दण्ड, हितवादियों का वचन मानने की आवश्यकता पर बल, सभामण्डल का कर्त्तव्य, समुदाय के हितचिन्तकों का लक्षण, पृथक्-पृथक् व्यवसायियों का संरक्षण आदि विषयों का निर्देश किया गया है।

१३. स्त्रीग्रह प्रकरण

कामवासना के वशीभूत होकर किसी नारी का पर-पुरुष के साथ संयोग या

पुरुष का नर-नारी के साथ मिलन स्त्रीसंग्रह कहलाता था। नारी की ओर देखकर हँसना, स्त्री का मुख चूमना, स्त्री-प्राप्ति की कामना करना, बिना कारण स्त्री का स्पर्श करना आदि स्त्रीसंग्रह अपराध माना जाता था। इस प्रकरण में भगवान कुन्थुनाथ की स्तुति करते हुये व्यभिचार-अनियन्त्रण से राज्य को हानि, परस्त्री के साथ राजमार्ग में वार्तालाप-दोष, ब्राह्मणी स्त्री के साथ तीन वर्णों के पुरुषों द्वारा सम्भोग पर दण्ड, कई स्त्रियों के साथ वार्तालाप की अदोषता, भिन्न-भिन्न वर्णों के पुरुषों और स्त्रियों में परस्पर सम्बन्ध पर दण्ड, स्त्री-शरीर की अशुचिता, पर-स्त्री-त्याग का उपदेश आदि विषयों का निरूपण है।

१४. द्यूत प्रकरण

द्यूत को सर्वव्यसनों का नायक बताया गया है। जिन अरनाथ की स्तुति के बाद द्यूत के प्रकार, द्यूत-स्थल का स्वरूप, द्यूत में जीतने और हारने वाले के मध्य विवाद, द्यूत-स्थल के स्वामी के कर्त्तव्य आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

१५. स्तैन्य प्रकरण

परद्रव्य-हरण, परोक्ष या प्रत्यक्ष, दिन या रात्रि में, जब भी होता था तो इसे स्तेय कहते थे। सोते हुए, असावधानीवश उन्मत्तावस्था में धन का अपहरण हो जाना भी स्तेय था। पन्द्रहवें स्तैन्य प्रकरण में जिन मल्लिनाथ की स्तुति के बाद राजधर्म का स्वरूप, राजधर्म के सम्यक् पालन से राजा को लाभ और इसके अभाव में हानि, चोरी करने, स्वजनों के धर्म-भ्रष्ट होने और चोर आदि को आश्रय देने पर दण्ड, अपराध करने पर दोषी न गिने जाने वाले व्यक्ति आदि का वर्णन किया गया है।

१६. साहसप्रकरण

साहस प्रकरण के अन्तर्गत लूट, हत्या, डकैती, बलात्कार जैसे अपराधों की गणना होती थी। ऐसा कर्म जो दूसरों को उत्पीड़ित करने के प्रयोजन से किया जाये, साहस कहलाता था। बल व हिंसा के प्रयोग से किया गया कार्य साहस था। सब लोगों के सम्मुख बल के अभिधान से किया गया अपहरण साहस होता था।

इस प्रकरण में भगवान्न मुनि सुव्रत की स्तुति के बाद साहस कर्म– अपराध का लक्षण, अपराध की तीन कोटियों–न्यून, मध्यम और उत्तम कर्म – का स्वरूप, अनेक विध साहस कर्म और उनके आचरण पर दण्ड, नकली माप-तोल पर दण्ड, वैद्य न होते हुए भी चिकित्सा, नकली से असली वस्तुओं को बदलना आदि विषयों का निरूपण किया गया है।

१७. दण्डपारुष्यप्रकरण

दूसरे के शरीर या किसी अङ्ग पर आयुध से प्रहार करना, शरीर पर अग्नि,

राख, धूल, मल-मूत्र फेंकना, दूसरों को विकलाङ्ग करना, हिंसा करना, लड़ाई-झगड़ा, मारपीट, लाठी-रस्सी से पीटना, बाँधना, वन-उपवन नष्ट करना, आत्महत्या करना, पशु-पक्षी की हिंसा करना, दूसरों पर ढेला फेंकना या किसी भी प्रकार पीड़ा पहुँचाना, पत्थर आदि फेंकना दण्डपारुष्य कहलाता था। यह कृत्य अपने में घोर अपराध था। भ्रूण-हत्या एवं मनुष्य की बलि देने वाले को भी दण्डपारुष्य का अपराधी समझा जाता था।

दण्ड पारुष्य प्रकरण में भगवान नमिनाथ की स्तुति के बाद ब्राह्मण तथा क्षत्रिय आसन पर बैठने पर वैश्य-शूद्र को, हत्या का षडयन्त्र और वस्तुओं को नष्ट करने वाले, दुर्घटना करने पर वाहन चालक के दण्डित न होने की स्थिति, वाहन चालक के अज्ञानी होने पर दोषी कौन और वाहन दुर्घटना से क्षति हेतु चालक को मिलने वाले दण्ड का निरूपण है।

१८. स्त्री-पुरुष धर्मप्रकरण

अठारहवें स्त्री-पुरुष धर्म प्रकरण में भगवान नेमनाथ की स्तुति के बाद मुख्यतः स्त्री द्वारा पति को देवरूप मानने और पुरुष को स्त्री का रक्षक होने का निर्देश, ऋतुवती स्त्री का धर्म, पुरुष का कर्त्तव्य सन्तानोत्पत्ति, परस्त्री-त्याग, स्त्री द्वारा कुसङ्ग-त्याग, स्त्री के एकाकी गमन एवं स्त्री-मलोत्सर्ग हेतु निषिद्ध स्थलों का निर्देश है। स्त्री के प्रति पुरुष के कर्त्तव्यों में ऋतुवती स्त्री का स्पर्श-त्याग, पुरुष के लिये रात्रि-भोजन-निषेध, पाँच स्थितियों में स्नान की आवश्यकता और पुरुष का दिन सम्बन्धी कर्त्तव्य निरूपित है।

४. चतुर्थ अधिकार के एकमात्र प्रायश्चित्त अधिकार में भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति के बाद मातङ्ग आदि के स्पर्श सहित भोजन, अठारह वर्णों का भोजन, ब्रह्महत्यादि पाप, अन्य वर्णों द्वारा शूद्र के साथ अन्न-पानी का व्यवहार, मिथ्यादृष्टि शूद्रों द्वारा स्पर्शित भोजन, पुत्री, माता, चाण्डाली के साथ सम्भोग, जघन्य अपराध करने वालों का अन्न-ग्रहण, भोजन हेतु वर्जित गोत्र में भोजन, मलेच्छ देश में वास आदि करने वालों को अपनी शुद्धि हेतु क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये इसका निर्देश है।

लघ्वर्हन्नीति के प्रकरणों का पौर्वापर्य

लघ्वर्हन्नीति के प्रकरणों का क्रम-निर्धारण तार्किक सङ्गति के आधार पर किया गया है और वृत्ति में आचार्य हेमचन्द्र ने प्रत्येक प्रकरण के आरम्भ में इस तथ्य का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है। भूमिकाभूपाल- गुणवर्णन अधिकार के आरम्भ में कहा गया है – उपयोगी होने के कारण ग्रन्थ के प्रारम्भ में राजा तथा मन्त्री के गुणों को सूचित कर उन राजा तथा मन्त्री की ही कुछ शिक्षाओं का कथन करेंगे –

तत्रादावुपयोगित्वान्नृपाणां मन्त्रिणां गुणाः।
प्रकाश्य च तथा तेषामेव शिक्षाश्च काश्चन।।१-२४।।

द्वितीय अधिकार के आरम्भ में कहा गया है राजा का प्रमुख कर्त्तव्य नीति का क्रियान्वयन है अतः उसका कथन किया जाता है –

नीतिप्रवर्तनं कृत्यं भूपालस्य तदुच्यते।।२.१.२।।

युद्ध, दण्ड तथा व्यवहार रूप से नीति तीन प्रकार की कही गई है। प्रथम नीति (युद्ध) को अवसरानुकूल, मध्य (दण्ड) और अन्तिम (व्यवहार) नीति को निरन्तर प्रयोग में लाना चाहिए। राजा की नीति के वर्णन में सर्वप्रथम युद्धनीति का वर्णन किया गया है। इसके बाद दण्डनीतिप्रकरण और अन्त में व्यवहारनीति का प्रतिपादन किया गया है।

व्यवहारनीति के सभी अठारह प्रकरणों के आरम्भ में उसके उस क्रम पर प्रतिपादन का औचित्य बताया गया है। व्यवहारविधि के प्रथम प्रकरण के बाद उल्लेख है कि पूर्व प्रकरण में ऋणादान के विषय में कहा गया। ऋण से उपलब्ध धन का अनेक लोग मिलकर व्यवहार आदि करते हैं, अतः सम्भूयोत्थान की रचना की जाती है। सम्भूयोत्थान में कोई साधारण द्रव्य का दान भी करता है इसलिए देयादेयव्यवस्था का निरूपण करने के लिए अब देयविधि की व्याख्या की जाती है। देयविधि में अदेय साधारण द्रव्य के व्यय के कारण उत्पन्न कलह में भाइयों का परस्पर दाय भाग हो इसलिए अब उसका विचार किया जाता है। दायभाग के कारण भाइयों में सीमा-विवाद होता है अतः उसके निर्णय के विषय में कहा जाता है। सीमा-विवाद में भृत्यों की भी आवश्यकता पड़ती है अतः इस प्रकरण में उनका तथा उनके वेतनादि का स्वरूप वर्णित किया जाता है। नौकरयुक्त स्वामी नौकर के माध्यम से अथवा स्वयं क्रय-विक्रय भी करता है जिसमें वस्तु-परीक्षा के विना क्रय-विक्रय से उत्पन्न दुःख या पश्चात्ताप भी होता है इसलिए व्यापार से सम्बन्धित पश्चात्ताप का स्वरूप वर्णित किया जाता है।

पूर्व प्रकरण में क्रय और विक्रय की जाने वाली वस्तु की परीक्षा की समय-मर्यादा का कथन किया गया है। परख कर खरीदे गये पशुओं में गाय-भैंस आदि भी होते हैं, उनको चराने के लिए नियुक्त सेवकों के दोष के कारण विवाद होता है अतः उसका वर्णन किया जाता है। सेवक के दोष से स्वामी की हानि का निर्देश किया गया उससे दुःखी कोई भी स्वामी ब्याज के लाभ के लिए अथवा धन की रक्षा के लिए अपने धन का कुछ अंश न्यास रखकर निर्वाह करता है। अतः निक्षेप के भेदों का यहाँ वर्णन किया जाता है। धरोहर रखे गये धन को कोई भी लोभी स्वामी की आज्ञा के बिना भी विक्रय करता है इसलिए उसका वर्णन किया जाता

है। स्वामी की आज्ञा के विना वस्तु-विक्रय में वचन की कठोरता होती है अतः उसका वर्णन यहाँ प्रतिपादित किया जाता है। वाणी की कठोरता में क्रोध आदि आवेश के वश नियम का अतिक्रमण भी सम्भव है अतः उस (समयव्यतिक्रान्ति) का स्वरूप वर्णित किया जाता है। समयव्यतिक्रान्ति में स्त्रीग्रह आदि दोष उत्पन्न होते हैं इसलिए यहाँ स्त्रीग्रहदोष का व्याख्यान किया जाता है। स्त्रीग्रह दोष के साथ द्यूत का साहचर्य होने से अब द्यूत का वर्णन किया जाता है। द्यूत में हारा हुआ कोई भी चोरी का आचरण करता है। इसलिए व्यसन की समानता से अब स्तैन्य-वर्णन का अधिकार कहा जाता है। स्तैन्यदण्ड से सम्बन्धित होने से साहसदण्ड का कथन किया जाता है। साहस दण्ड के साथ साहचर्य के कारण दण्डपारुष्य का निरूपण किया जाता है। दण्ड सदा धर्म की रक्षा के लिए होता है इसलिए अब स्त्री-पुरुष के धर्म की प्ररूपणा की जाती है।

पूर्व अधिकार के अन्तिम प्रकरण में स्त्री-पुरुष धर्म का निरूपण किया गया। स्त्री-पुरुष धर्म के मार्ग से विचलित होने पर प्रायश्चित्त की आवश्यकता होने से लौकिक प्रायश्चित्त जो लौकिक व्यवहार के साधन जाति द्वारा प्रदत्त दण्डनीति के रूप में होने से नीति से सम्बन्ध होने के कारण इस अधिकार में प्रायश्चित्त का वर्णन किया जाता है।

लघ्वर्हन्नीति के सम्पादन में प्रयुक्त पाण्डुलिपियाँ

लघ्वर्हन्नीति के इस आलोचनात्मक संस्करण के सम्पादन में आधारभूत कागज की चार हस्तप्रतों का विवरण इस प्रकार है—

(१) भ १ भोगीलाल लहेरचन्द संस्कृति विद्यामन्दिर, दिल्ली के हस्तप्रत भण्डार में उपलब्ध लघु-अर्हन्नीति की इस हस्तप्रत का क्रमाङ्क ३१४५ है। इसमें ४० पत्र हैं । इसकी लम्बाई २२.५ से. मी. और चौड़ाई ११ से. मी. है। इसमें प्रत्येक पृष्ठ पर १६ पंक्तियाँ हैं। हस्तप्रत का लेखन काल अङ्कित नहीं है। प्रतिलिपि संवत् १९४७ (सन् १८९०) में की गई है।

(२) भ २ भोगीलाल लहेरचन्द के हस्तप्रत भण्डार में ही उपलब्ध इस हस्तप्रत का क्रमाङ्क ३१६५ है। इसमें ३१ पत्र हैं। इसकी लम्बाई २०.५ से. मी. और चौड़ाई ९.५ से.मी. है। इसमें भी प्रत्येक पृष्ठ पर १६ पंक्तियाँ हैं। इस हस्तप्रत का भी लेखन काल अङ्कित नहीं है। प्रतिलिपि संवत् १९४६ (सन् १८८९) में की गई है।

(३) प १ पाटन (गुजरात) के श्री हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर में उपलब्ध इस हस्तप्रत का क्रमाङ्क २५६९ है। इसमें ३३ पत्र हैं। इसकी लम्बाई २३.५ से. मी. और चौड़ाई ९.५ से.मी. है । इसमें प्रत्येक पृष्ठ पर १६ पंक्तियाँ हैं।

(४) प २ पाटन (गुजरात) के श्री हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर में उपलब्ध इस हस्तप्रत का क्रमाङ्क १८७९३ है। इसमें ३६ पत्र हैं। इसकी लम्बाई २१.५ से. मी. और चौड़ाई १० से.मी. है। इसमें प्रत्येक पृष्ठ पर १५ पंक्तियाँ हैं। इस हस्तप्रत का भी लेखन काल अङ्कित नहीं है। प्रतिलिपि संवत् १९४८ (सन् १८९१) में गुजरावाला के ब्राह्मण बेलीराम द्वारा की गई है।

लघ्वर्हन्नीतिशास्त्र का आलोचनात्मक सम्पादन

लघ्वर्हन्नीतिशास्त्र की हस्तप्रतों में कुछ ऐसे संयुक्त व्यञ्जनों का द्वित्व प्रयोग उपलब्ध होता है सामान्यतया जिनके प्रयोग में प्रायः द्वित्व का अभाव होता है। सम्भवतः महर्षि पाणिनि के सूत्र 'अचोरहाभ्यां द्वे' ८-४-४६ के अनुसार जिसप्रकार अक्र्कः, मक्र्कः, ब्रह्म्मा में अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरोद्वे वा स्तः (वृत्ति) अर्थात् अच् रे पर जो रेफ और हकार उनसे पर जो यर् उसको विकल्प से द्वित्व होता है। लघ्वर्हन्नीति की हस्तप्रतों में उपलब्ध ऐसे कुछ शब्दों की सूची इस प्रकार है–

पर्व्व (१-६), धर्म्म (१-१५), मर्म्म (१-१८), कर्म्म (१- ३०), आर्य्यैः (१-२१), कार्य्यं (१-८९), पूर्व्वं (२-१२), दुर्ग्गे (२-१४), पर्य्यन्त (२-१८), सर्व्वथा (२-४६) आदि। प्रस्तुत संस्करण में इस प्रकार के शब्दों का द्वित्वरहित पाठ ग्रहण किया गया है।

लघ्वर्हन्नीति का वैशिष्ट्य

प्रस्तुत ग्रन्थ का शीर्षक लघ्वर्हन्नीति है। यह कृति चौलुक्य राजा कुमारपाल के आग्रह पर पूर्वविरचित किन्तु सम्प्रति अनुपलब्ध प्राकृत भाषा निबद्ध समान विषयक विशाल ग्रन्थ अर्हन्नीति शास्त्र से सार ग्रहण कर लिखा गया है। इस कारण आचार्य ने अपनी इस कृति का शीर्षक लघ्वर्हन्नीति और स्रोत ग्रन्थ को बृहदर्हन्नीति शीर्षक से उल्लिखित किया है।

वस्तुतः राजनीतिशास्त्र विषयक अर्हन्नीति शीर्षक अन्य कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। जैन परम्परा में इस विषय पर अन्य उपलब्ध कृति सोमदेवसूरि विरचित नीतिवाक्यामृतम् (९९२ ई०) है। विद्वानों ने राजनीति शास्त्र के ज्ञापक शब्दों पर विचार किया है। सामान्य रूप से राज्य-कार्य तथा राज- सिद्धान्तों का वर्णन करने वाले ग्रन्थ दण्डनीति और अर्थशास्त्र कहलाते थे। उशनस् ने इस विषयक अपने ग्रन्थ का नाम दण्डनीति और बृहस्पति ने अर्थशास्त्र रखा था। विष्णुपुराण में भी अठारह विद्याओं की सूची में अर्थशास्त्र का उल्लेख है। (प्राचीन भारतीय राजशास्त्र की अवधारणा और महत्त्व, (शिवस्वरूप सहाय, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली २००५, पृ. ५)। मनु ने भी इसे दण्डनीति कहा है (मनुस्मृति ७.३१)। आपस्तम्ब

धर्मसूत्र में राजधर्म कहा गया है (आपस्तम्बधर्मसूत्र २.९.२५.१) । कौटिल्य ने भी इसे अर्थशास्त्र नाम दिया है। छान्दोग्य उपनिषद् में राज्य की शासन-व्यवस्था के लिये क्षत्रविद्या शब्द का प्रयोग किया है। (छान्दोग्य उपनिषद् ७.१.२, ७.२.१, ७.७.१) (शिवस्वरूप सहाय, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली २००५, पृ. ५)। महाभारत में राजनीति को अर्थशास्त्र, राजशास्त्र, दण्डनीति (शान्तिपर्व ५९.७८) और राजधर्म (शान्तिपर्व ५६.५८, ५८.३१) कहा गया है।

ईस्वी शताब्दी से राजशास्त्र के जिन ग्रन्थों का सृजन हुआ वे प्रायः नयशास्त्र अथवा नीतिशास्त्र कहलाये। कामन्दक ने अपनी पद्यमय कृति को नीतिसार कहा है। पञ्चतन्त्र नामक ग्रन्थ में राजनीति शास्त्र का नाम नयशास्त्र दिया गया है (गोपाल, डॉ. लल्लन जी, प्राचीन राजनीतिक विचारधारा, विश्व विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी १९९९, पृ.११)। पुराणों में राजशास्त्र को कई संज्ञाओं से अभिहित किया गया है, यथा, राजधर्म (अग्निपुराण, अध्याय २३९ का नाम राजधर्म है।), राजनीति (अग्निपुराण, अध्याय २४२ का नाम राजनीति है।) दण्डनीति (वायुपुराण, ५७.८२) तथा अर्थशास्त्र (मत्स्यपुराण २१५.१३)। उत्तरवर्ती ग्रन्थकारों में चण्डेश्वर (१३१५ ई०) ने अपनी पुस्तक का नाम राजनीतिरत्नाकर रखा है। देवण्णभट्ट (१३००ई०) की स्मृतिचन्द्रिका का राजनीतिकाण्ड है। (गोपाल, डॉ. लल्लन जी, प्राचीन राजनीतिक विचार-धारा, विश्व विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी १९९९, पृ.११)

राजनीति शास्त्र के प्रणेता

आचार्य हेमचन्द्र ने लघ्वर्हन्नीति में प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव को राजाओं के नीतिमार्ग का प्रणेता बताया है–

ततो जगाद भगवान् श्रृणु भो मगधेश्वर !!
कालेऽस्मिन्नादिमो भूप ऋषभोऽभूज्जिनेश्वरः।।१-१३।।

स एव कल्पद्रुमफले क्षीणे कालप्रभावतः।
भारतान् दुःखितान् दृष्ट्वा कलिछद्मपरायणान्।।१-१४।।

कारुण्याद्युग्मजातानां छित्वा धर्मं पुरातनम्।
वर्णाश्रमविभागं वै तत्संस्कारविधिं पुनः।।१-१५।।

कृषिवाणिज्यशिल्पादिव्यवहारविधिं तथा।
नीतिमार्गं च भूपानां पुरपट्टनसंस्थितिम्।।१-१६।।

विद्याः सर्वाः क्रियाः सर्वाः ऐहिकामुष्मिकाअपि।
प्रादुश्चकार भगवान् लोकानां हितकाम्यया।।१-१७।।

अर्थात् भगवान् बोले हे मगधराज ! सुनो इस युग में आदि जिनेश्वर भगवान् ऋषभदेव प्रथम राजा हुए। काल के प्रभाव से कल्पवृक्ष के फल के क्षीण हो जाने पर कलिकाल के कपट के वशीभूत भरत की प्रजा को दुःखी देखकर करुणावश युगलियों (युग्म रूप में उत्पन्न) के पुरातन धर्म का भेदन कर संस्कारविधि सहित वर्ण और आश्रम (दो प्रकार) के विभाग तथा कृषि, वाणिज्य, शिल्प आदि, व्यवहार विधि तथा राजाओं का नीति मार्ग, पुर तथा नगरों की व्यवस्था, लौकिक-पारलौकिक सभी विद्यायें, सभी क्रियायें, भगवान् (ऋषभदेव) ने लोगों के हित की कामना के लिए प्रवर्तित किया।

महाभारत में कहा गया है कि प्रारम्भ में ब्रह्मा जी ने उस समय फैली हुई अराजकता का अन्त करके समाज व्यवस्था पुनः स्थापित करने के बाद एक लाख श्लोकों में विशाल राज्यशास्त्र की रचना की। इसे क्रमशः शिव, विशालाक्ष, इन्द्र, बृहस्पति या शुक्र ने संक्षेप किया। (महाभारत, शान्तिपर्व ५७, ५८)। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी अनेक स्थलों में विशालाक्ष, इन्द्र (बहुदन्त), बृहस्पति, शुक्र, मनु, भारद्वाज और गौरशिरस् का उल्लेख करके इनके मन्तव्यों पर विचार किया गया है। इनके अतिरिक्त अर्थशास्त्र में पराशर, पिशुन, कौणपदन्त, वातव्याधि, घोटमुख, कात्यायन और चारायण आदि राज्यशास्त्र के प्रणेताओं का भी उल्लेख है। इसप्रकार भगवान् ऋषभदेव को स्पष्टरूप से राज्यशास्त्र का प्रणेता बताना लघ्वर्हन्नीति की अपनी विशेषता है।

लघ्वर्हन्नीति का स्रोत

कुमारपालक्ष्मापालाग्रहेण पूर्वनिर्मितात्।
अर्हन्नीत्यभिधात् शास्त्रात्सारमुद्धृत्य किञ्चन।। १.६ ।।

आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है कि चौलुक्य राजा कुमारपाल के आग्रह से पूर्व विरचित 'अर्हन्नीति' नामक शास्त्र से कुछ सार उद्धृत कर निश्चय ही राजा और प्रजा के कल्याण के लिए शीघ्रता से स्मरण में आने वाले तथा सरलता से ज्ञान होने वाले उत्तम शास्त्र लघु-अर्हन्नीति की रचना करता हूँ। आचार्य ने कई स्थलों पर वृत्ति में यदुक्तं बृहदर्हन्नीतौ कहकर गाथायें और गद्यांश उद्धृत किये हैं। यह प्राकृत भाषा-निबद्ध बृहदर्हन्नीति के अस्तित्व के सम्बद्ध में पुष्ट प्रमाण माना जा सकता है। लघ्वर्हन्नीति की वृत्ति में उपलब्ध कुछ उद्धरण इस प्रकार हैं —

रोगाउरेण दिण्णं जं दाणं मुक्खधम्मकज्जस्स।
तस्स य मरणेवि सुओ जुग्गोच्चियं तं धणं दाउं।।३.४.९।।

किसिवाणिज्जपसूहिं जं लाहो हवइ तस्स दसमंस्सं दावेइ निवो भिच्चं अणिच्छिए वेज्जणे तस्स।१। —३.७.१८

हाणी णहु सुवणेअमीए पलदुग्गं भवे रयए।
तंवस्स पञ्च लोहे दस सीसे अठयइसयगं।।१।।३.८.९
हियवाइस्सय वयणं जो नहु मणइ तिदुवितव्यूहे सो होइ दण्डणिज्जोपढमदमेणं खु णिच्चंपि।१। ३.१३.७।।

लघ्वर्हन्नीति के चारों अधिकारों में से तृतीय व्यवहार अधिकार के अठारह प्रकरणों के शीर्षकों पर विचार करने पर हम पाते हैं कि अपराध को अठारह प्रकारों में वर्गीकृत करने की परम्परा विद्वानों के अनुसार सर्वप्रथम मनु ने आरम्भ की थी। सम्पूर्ण अपराधों को मनु ने अठारह विभागों में समेट कर व्यवहार पद्धति को नई दिशा दी है। वे ही प्रथम व्यवस्थाकार, न्यायविद् एवं विधिज्ञ थे जिन्होंने सूक्ष्म चेतना के आधार पर अपनी पैनी व विवेचनापूर्ण दृष्टि से ऋग्वेदकाल से लेकर अपने पूर्ववर्तीकाल तक विश्रृंखलित व्यवहार पद्धति को व्यवस्थित किया है। मनु के बाद के स्मृतिकारों तथा अर्थशास्त्र के रचयिता कौटिल्य ने भी अपराध का वर्गीकरण, मनु द्वारा निर्देशित आधार पर ही किया है। यद्यपि अनेक स्थलों पर भिन्नता दृष्टिगत होती है तो भी रूपरेखा, मानदण्ड, व्यवहारप्रणाली, मनु के अनुरूप ही है। अनेक व्यवहार शीर्षकों में परिवर्तन एवं कुछ भिन्नता अवश्य हुई है, परन्तु उनका मूल मनु के सिद्धान्तों में ही आधारित है। काल परिवर्तन के प्रभाव से अपराध-सूचियों में परिवर्तन अवश्य हुआ। अपराध वरीयता भी विभिन्न कालों में बदलती रही थी।

मनु ने व्यवहार-पद्धति में १८ प्रकार के व्यवहारों का उल्लेख किया है। याज्ञवल्क्य ने बीस प्रकार के व्यवहारों को दर्शाया है। उन्होंने अयुपेत्या- शुश्रूषा एवं प्रकीर्णक नाम से दो अतिरिक्त व्यवहारों का उल्लेख किया है। नारद ने १८, बृहस्पति ने १९ प्रकार के व्यवहार वर्ग में प्रकीर्णक व्यवहार पद्धति अध्याय को सम्मिलित किया है। यही स्थिति कौटिल्य की भी है। स्मृतिकारों ने मनु द्वारा प्रतिपादित व्यवहार वर्गीकरण को ज्यों का त्यों या न्यून परिवर्तन के साथ स्वीकार कर लिया है।

स्मृतिकारों की व्यवहार सूचियों से स्पष्ट है कि प्रत्येक स्मृतिकार के युग में अपराधों की ज्येष्ठता व गुरुता परिवर्तनशील रही है। समय व परिस्थितियों के कारण सामाजिक परिवर्तन का सीधा प्रभाव व्यवहारों के क्रम पर पड़ता था। ऋण और निक्षेप को छोड़कर स्मृतिकारों ने अपनी-अपनी अपराध या व्यवहार सूची को बदला है। मनु ने तीसरे स्थान पर अस्वामिविक्रय को रखा, तो याज्ञवल्क्य ने दायविभाग, नारद ने सम्भूयसमुत्थान, बृहस्पति ने अदेयाह्य (दत्ताप्रदानि) को तीसरे स्थान पर रखा है। सम्पूर्ण स्मृतिकारों के व्यवहार विवरण इस परिवर्तन से

प्रभावित हैं। वाक्पारुष्य, दण्डपारुष्य, स्तेय, साहस, स्त्रीसंग्रह जैसे विवादों के सूचीस्थल परिवर्तन में गौणता अवश्य रही है। कुछ स्थलों पर भिन्नता भी स्पष्ट है। उदाहरणतः मनु द्वारा उल्लिखित स्वामिपालविवाद को नारद और बृहस्पति ने, स्त्रीसंग्रहण व स्तेय को नारद ने, अभ्युयेत्याशुश्रूषा व प्रकीर्णक को मनु ने अपनी व्यवहार पद्धतिसूचियों में सम्मिलित नहीं किया है। प्रमुख स्मृतिकारों की यह भिन्नता अग्रिम तालिका से स्पष्ट हो जाती है–(देखे पृ० xiii)

मनु, याज्ञवल्क्य तथा नारद आदि स्मृतिकारों को छोड़कर अन्य स्मृतिकारों ने अतिपाप, महापाप (अर्थात् अपराध, उप-अपराध, अति अपराध, महापराध) आदि वर्गीकरण किया है।

चतुर्थ प्रायश्चित्त अधिकार का उल्लेख करते हुए विभिन्न प्रकार के अपराधों की गणना की है। अनेक स्मृतिकारों ने अपराधों को अपनी स्मृतियों में विकीर्ण कर दिया है। अपराधों पर सामाजिक शक्ति के प्रभाव ने आपराधिकस्तर में परिवर्तन किया है। इसमें वर्ण की प्रधानता को वरीयता मिली है। उदाहरणतः ब्राह्मण द्वारा घटित क्रिया को गौण और शूद्र द्वारा घटित वही क्रिया शूद्र का महापराध बनती थी।

उपवासाश्च पञ्चाशदेकभक्तास्तथैव च।
पञ्चैव तीर्थयात्राश्च तथा सधर्मिवत्सलाः।।३।।
पञ्चपूजा जिनानां च शान्तिकापौष्टिकादयः।
सङ्घभक्तिर्गुरौभक्तिर्दानानि च यथाविधि।।४।।
जिनोपवीतसंस्कारस्तथा कोशस्य वर्द्धनम्।
जिनज्ञानौषधादीनां तथा च ज्ञातिभोजनम्।।५।।
इति कृत्वा तथा स्नात्वा तीर्थमृत्साजलेन च।
सर्वौषधिविमिश्रेण शुद्धो जायेत मानवः।।६।।
अन्यथा ज्ञातिबाह्यत्वान्नोपवेश्यः स्वपंक्तिषु।
सहभोज्योऽपि तेन स्यात्तुल्यो ज्ञातिबहिष्कृतः।।७।।

उपरोक्त प्रायश्चित्त में अपराध की शुद्धि हेतु एकाशना, साधर्मिक वात्सल्य, जिनपूजा, सङ्घभक्ति आदि का समावेश जैन मान्यता के अनुरूप है।

प्रजा-पालन

राजा का सर्वोपरि कर्त्तव्य – आचार्य हेमचन्द्र ने राजा के सद्गुणों और कर्त्तव्य की चर्चा करते हुये प्रजापालन को राजा का परम धर्म बताया है

क्रम.	मनु	याज्ञवल्क्य	बृहस्पति	नारद	हेम
१.	ऋणादान	१. ऋणादान	१. कुसीद (ऋण)	१. ऋणादान	१. ऋणादान
२.	निक्षेप	२. उपनिधि	२. निधि	२. निक्षेप	२. सम्भूयोत्थान
३.	अस्वामिविक्रय	३. अस्वामिवि०	८. अस्वामिवि०	७. अस्वामिवि.	३. देयविधि,
४.	सम्भूयसमुत्थान	१७. सम्भूयसमु०	४. सम्भूयोत्थान	३. सम्भूयत्थान	४. दायभाग,
५.	दत्तस्यानपाकर्म	७. दत्ताप्रदानिक	३. अदेयाद्य	४. दत्ताप्रदा.	५. सीमाविवाद
६.	वेतनादान	११. वेतनादान	५. भृत्यदान	६. वेतनस्यानपाकर्म	६. वेतनादान
७.	संविदव्यतिक्रम	१०. संविदव्यति.	१०. संमिवातिक्रम	१०. समस्यानपा	७. क्रयेतरानुस०
८.	क्रयविक्रयानुशय	८. क्रीतानुशय	९. संमिवविक्रया.	९. क्रीतानुशय	८. स्वामिभृत्यवि०
९.	स्वामिपालविवाद	१६. विक्रीयसंप्रदान०	......	८. विक्रीयसम्प्रदान	९. निक्षेप
१०.	सीमाविवाद	५. स्वामिपालविवाद	......	....	१०. अस्वामिवि०
११.	वाक्पारुष्य	४. सीमाविवाद	११. क्षेत्रविवाद	७. भूवाद	११. वाक्पारुष्य
१२.	दण्डपारुष्य	१३. वाक्यपारु.	१६. वाक्यपारु.	१६. वाक्यपारु.	१२. मर्यादाव्यतिक्रम,
१३.	स्तेय	१४. दंडपारुष्य	१६. दंडपारुष्य	१६. दंडपारुष्य	१३. स्त्री-संग्रह
१४.	साहस	१८. स्तेय	१२. स्तेय	१२. स्तेय	१४. द्यूत-विवाद
१५.	स्त्रीसंग्रहण	१५. साहस	१४. साहस (वध)	१७. वध	१५. स्तैन्यप्रकरण
१६.	स्त्रीपुंधर्म	१९. स्त्रीसंग्रहण	१८. स्त्रीसंग्रहण	१८. स्त्रीसंग्रहण	१६. साहस,
१७.	विभाग (दायभाग)	......	१२. स्त्रीपुसयोग	११. +	१७. दण्ड पारुष्य
१८.	द्यूतसमाह्वय	३. दायविभाग	१३. दायभाग	१३. दायभाग	१८ स्त्री-पुरुषधर्म
१९.	......	१२. द्यूतसमा.	१७. द्यूतसमाहय	१४. अक्षदेवन	
२०.	......	९. अभ्युयेत्या	५. अभ्युप्रेत्याशुश्रूषा	६. अशुश्रूषा	
		२०. प्रकीर्णक	१८. प्रकीर्णक	१९. प्रकीर्णक	

नृपतेः परमो धर्मः स्वप्रजापालनं सदा । –३.१६.२

जिस प्रकार गाय अपने बछड़े का पालन करती है उसी प्रकार प्रीतिपूर्वक राजा को भी अपनी प्रजा का पालन करना चाहिए –

गौर्वत्समिव, भूपोऽपि प्रीत्या स्वाः पालयेत्प्रजाः । –३.३.११

राजा के लिये आचार्य का उपदेश है कि वह सज्जन पुरुषों का पालन करता हुआ एवं दुष्टों का निग्रह (दण्डित) करता हुआ देव, दानव और मनुष्य सभी योनि के लोगों द्वारा पूजा जाता है –

शिष्टानां पालनं कुर्वन् दुष्टानां निग्रहं पुनः।
पूज्यते भुवने सर्वैः सुरासुरनृयोनिभिः।। ३.१९.६।।

आचार्य के अनुसार राजा को अपने सगे सम्बन्धियों को भी अपराध हेतु दण्डित करना चाहिये। यदि पत्नी, पुत्र, दूत, दास, सहोदर (भ्राता), चौरकर्म के अपराधी हों तो राजा द्वारा नाथ (बैल की नाक में पिरोई जाने वाली रस्सी और) दण्ड से उनकी पिटाई हो –

भार्यापुत्रप्रेष्यदाससोदराश्चापराधिनः ।
तेषां नाथेन दण्डेन स्तैन्यकर्मणि भूभृता।। ३.१८.२५।।

समाज में अपराध पर नियन्त्रण और प्रजा की सुरक्षा के लिये राजा से अपेक्षित है कि वह अपराध घटित होने पर भुक्तभोगी द्वारा अपराध की सूचना न देने पर भी स्वयं संज्ञान लेकर अपराधी को दण्ड दे। मुख्य लक्ष्य समाज को अपराध मुक्त रखना है चाहे उसके लिये जो भी कदम उठाना पड़ें।

एताः सत्त्वेऽभियोगस्यासत्त्वे चापि महीभुजा।
प्रयुज्यन्ते प्रजास्थित्यै यथादोषं दुरात्मसु।। २.२.५।।

अर्थात् ये दण्डनीतियाँ आरोपी के विरुद्ध अभियोग दोषारोपण सामने लाये जाने पर और न लाये जाने पर भी राजा द्वारा प्रजा की रक्षा हेतु दुष्टों के अपराध के अनुसार प्रयोग की जाती हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र के व्यक्ति एवं राजा एवं समाज का उनके प्रति व्यवहार

धर्मनिष्ठ, प्रतिभाशाली, पवित्र, लोभरहित, कार्यकुशल, आलस्यरहित, बहुशास्त्र वेत्ता, शुद्ध कुल वाला, सर्वमान्य और कार्य की चिन्ता करने वाला व्यक्ति सभा का कार्यभार ग्रहण करे।

धर्मिणः प्रतिभायुक्ताः शुचयो लोभवर्जिताः।
कार्यदक्षा निरालस्या बहुशास्त्रविशारदाः।।३.१३.९।।

कुलशुद्धाः सर्वमान्याः कार्यचिन्तासमाहिताः।
माननीयं वचस्तेषां सर्वैस्तद्व्यूहसंस्थितैः॥१०॥

साथ ही समूह या पञ्च-समिति में स्थित सदस्यों के हितवादी वचनों को दूसरे मनुष्यों को स्वीकार करना चाहिए। इसके विपरीत (न मानने वालों को) अधम दण्ड से दण्डित करना चाहिये–

हितवादिवचो मान्यं समूहे तत्स्थितैः परैः।
विपरीतो हि दण्ड्यः स्याज्जघन्येन दमेन च॥ ३.१३.६॥

पर्यावरण सुरक्षा

आचार्य हेमचन्द्र ने पर्यावरण को क्षति पहुँचाने वाले कृत्यों के लिये कठोर दण्ड का विधान किया है जो निम्नलिखित श्लोकों से स्पष्ट है –

आरामं गच्छता येन दर्पादुत्पाटिता लता।
त्वक्पत्रदण्डपुष्पाद्याः स दण्ड्यो दशराजतैः ३.१८.८

अर्थात् उपवन की ओर जाते हुए धृष्टता से जिसके द्वारा लता उखाड़ी गई हो, वृक्ष की छाल, पत्ते, डाली, फूल आदि तोड़ा गया हो वह दस रजत मुद्राओं से दण्डनीय है। इससे स्पष्ट है कि वनस्पति आदि को क्षति पहुँचाना गम्भीर अपराध था। पत्ते और फूल तोड़ना भी भारी दण्ड का कारण बनता था। यही नहीं वृक्ष काटने वाले को नगर से निष्कासित करने का विधान था – **प्रवास्योवृक्षभेदकः –३.१८.९**

वर्तमान समय में भी यदि वनस्पति को क्षति पहुँचाने पर इसके समान कठोर दण्ड दिया जाय तो वृक्ष आदि की सुरक्षा बढेगी और फलतः हमारा पर्यावरण भयावह विनाश से मुक्त हो सकेगा।

पुत्र-पुत्री उत्पन्न होने के कारण–आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार सम (संख्या वाली) रात्रि में गर्भ धारण हो तो पुत्र और विषम (संख्या वाली) रात्रि में गर्भ धारण हो तो कन्या, वीर्य की अधिकता से पुत्र तथा रक्त की अधिकता होने से पुत्री उत्पन्न होती है–

समायां निशि पुत्रः स्याद्विषमायां तु कन्यका।
वीर्याधिक्येन पुत्रः स्याद्रक्ताधिक्येन पुत्रिका॥३.१९.१६॥

वाहन दुर्घटना

आचार्य हेमचन्द्र द्वारा वाहन-दुर्घटना से सम्बद्ध दण्ड में चालक की कुशलता-अकुशलता को केन्द्र बनाया गया है। वाहन चालक के मूर्ख या अकुशल

होने पर राजा द्वारा वाहन चालक और स्वामी दोनों को दण्डित करना चाहिए। इसका फलित यह है कि अकुशल चालक नियुक्त करने वाला वाहन स्वामी भी अपराधी है। यदि चालक की अकुशलता का दोष दुर्घटना होनेपर वाहन स्वामी को प्रभावित करने लगे तो अप्रशिक्षित चालकों के हाथ में वाहन देने की परम्परा स्वतः समाप्त होजाय। साथ ही येन-केन प्रकारेण कुशलता का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने की भी प्रवृत्ति पर अंकुश लगे और सड़क पर जीवन की सुरक्षा में गुणातीत सुधार हो जाय—

मूर्खत्वे सारथेर्दण्ड्यो युग्मे भूपेन सारथेः। ३.१८.२०॥

लघ्वर्हन्नीति में अनेक ऐसी व्यवस्थाओं का वर्णन आचार्य हेमचन्द्र ने किया है जिनको आज के प्रशासन में भी अपनाया जासकता है। इसप्रकार शासक और नागरिक दोनों के लिये यह ग्रन्थ आज भी प्रासङ्गिक है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी मेधा से एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की थी।

कृतज्ञता ज्ञापन

लघ्वर्हन्नीति परियोजना की पूर्णता के अवसर पर सर्वप्रथम मैं परमादरणीय गुरु प्रोफेसर सुरेश चन्द्र पाण्डेय, पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं परमादरणीय क्वाण्डम प्रोफेसर सत्य रञ्जन बनर्जी, कोलकाता का उनके आशीर्वाद एवं प्रोत्साहन हेतु हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। भोगीलाल लहेरचन्द संस्कृति विद्यामन्दिर के अध्यक्ष माननीय श्री निर्मल भाई भोगीलाल, सभापति माननीय श्री राजकुमार जैन सहित समस्त प्रबन्ध मण्डल और निदेशक डॉ. बालाजी गणोरकर के प्रति उनके सहयोग के लिये धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। श्री देवेन यशवन्त जी, पूर्व कोषाध्यक्ष की इस कार्य में विशेष रुचि थी। भारत के महान विधिवेत्ता एवं राजनयिक स्वनामधन्य स्व० लक्ष्मीमल्ल संघवी से किसी समारोह में श्री देवेन जी ने सुना था कि एक महान निर्ग्रन्थ आचार्य ने अपने शिष्य राजा कुमारपाल को उसके आग्रह पर राजनीति – शासन करने का उपदेश दिया है। वह निश्चित ही अद्भुत होगा। इसका अनुवाद सहित प्रकाशन अवश्य होना चाहिये। मैं भी जब पार्श्वनाथ विद्यापीठ में कार्यरत था। एक बार इलाहाबाद विश्वविद्यालय राजनीति शास्त्र विभाग के मेरे आदरणीय गुरु प्रो. प्रमोद कुमार मित्तल, अर्हन्नीति की पाण्डुलिपि की खोज में विद्यापीठ आये। रात्रि-विश्राम के समय वार्तालाप के क्रम में उन्होंने कहा कि निवृत्तिमार्ग के पोषक धर्म के अनगार आचार्य हेमचन्द्र जैसे आत्मकल्याण के साथ-साथ लोककल्याण को समर्पित, अपनी अद्वितीय मेधा के कारण जो कलिकाल सर्वज्ञ माने जाते थे, उनका अपने शिष्य राजा को व्यावहारिक राजनीति का दिया हुआ उपदेश निश्चित ही आज भी प्रासङ्गिक होगा और विसङ्गतियों से भरे इस काल

में बहुत उपयोगी होगा। उस कृति को प्रकाश में लाना चाहिये। बी. एल. आई. आने के बाद अर्हन्नीति की चर्चा होने पर मुझे गुरु की इच्छा पूर्ण करने का सुयोग मिला और उत्साह से इस कार्य को आरम्भ किया।

इसकी दो पाण्डुलिपियाँ बी. एल. आई. हस्तप्रत भण्डार में थीं और दो पाटन (गुजरात) में थीं। संस्थान के उपाध्यक्ष प्रो. जीतेन्द्र बी. शाह और और निदेशक महोदय के प्रयास से श्री हेमचन्द्राचार्य जैन हस्तप्रत भण्डार, पाटन के न्यासी श्री यतिन भाई शाह, एडवोकेट ने वहाँ उपलब्ध हस्तप्रतों की छायाप्रति उपलब्ध कराई और कार्य आगे बढ़ा। संस्थान के उपाध्यक्ष श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन इस कार्य की प्रगति में निरन्तर रुचि लेते रहे और उत्साह वर्द्धन करते रहे। मैं उन सबके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

मैं भोगीलाल लहेरचन्द विद्यामन्दिर परिवार के समस्त सदस्यों प्रशासनिक अधिकारी श्री पी. एस. गणेशन, पुस्तकालय प्रभारी श्री अभयानन्द पाठक, डॉ. मोहन पाण्डेय, लिपिक अनिता गुप्ता, पुस्तकालय परिचारक अर्जुन यादव, मुन्नी एवं अरविन्द को उनसे प्राप्त सहयोग के लिये धन्यवाद देता हूँ।

इस पुस्तक की कम्प्यूटर टाइप-सेटिंग के लिये अपने संस्थान के सङ्गणक प्रभारी श्री लक्ष्मी कान्त के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

इस अवसर पर उच्च नैतिक मूल्यों एवं शुचिता को जीवन में अङ्गीकार करने वाले अपने शुभचिन्तकों अग्रज श्री जगदानन्द सिंह पूर्व कैबिनेट मन्त्री एवं वर्तमान लोकसभा सांसद (बक्सर, बिहार), अग्रज श्री गिरीश चन्द्र द्विवेदी, अतिरिक्त आयुक्त पुलिस, दिल्ली, भारत सरकार पदस्थ परम सुहृत् श्री आनन्द मिश्र (संयुक्त सचिव, रक्षा), श्री अनिल स्वरूप (संयुक्त सचिव, श्रम विभाग), श्री उदय प्रताप सिंह (संयुक्त सचिव, इस्पात), श्री आदित्य कुमार बाजपेयी (निदेशक, प्रत्यक्ष कर, वित्त विभाग) एवं श्री राजेश्वर सिंह (संभागीय आयुक्त, भरतपुर, राज.) को उनसे प्राप्त आत्मीयता एवं प्रोत्साहन के लिये सदैव आभारी हूँ। इन सभी का स्नेहसिक्त व्यवहार मेरे लिये बहुत बड़ा सम्बल है।

पत्नी श्रीमती मीरा सिंह, भतीजे श्री विनोद कुमार सिंह, श्री बृजेश कुमार सिंह, पुत्र चिरंजीव सिद्धार्थ आनन्द, पुत्रवधू श्रीमती सुजाता, पुत्रियाँ सुश्री अदिति और माधवी – सभी मेरी शैक्षणिक गतिविधियों में रुचि लेती हैं जिससे उत्साह बढ़ता है, अतः उन सभी को साधुवाद।

डॉ० अशोक कुमार सिंह,

विषय सूची

आमुख (v)

प्रस्तावना (vii)

प्रथम अधिकार

१. भूपालादिगुणवर्णनम् १

द्वितीय अधिकार

२.१ युद्धनीतिप्रकरणम् १७

२.२ दण्डनीतिप्रकरणम् ३२

तृतीय अधिकार

३.१ व्यवहारविधिप्रकरणम् ३९

३.२ ऋणादानप्रकरणम् ६१

३.३ सम्भूयोत्थानप्रकरणम् ७७

३.४ देयविधिप्रकरणम् ८०

३.५ दायभागप्रकरणम् ८५

३.६ सीमाविवादप्रकरणम् १२१

३.७ वेतनादानस्वरूपम् १२९

३.८ क्रयेतरानुसन्तापप्रकरणम् १३६

३.९ स्वामिभृत्यविवादप्रकरणम् १४०

३.१० निक्षेपप्रकरणम् १४४

३.११ अस्वामिविक्रयप्रकरणम् १५२

३.१२ वाक्पारुष्यप्रकरणम् १५६

३.१३ समयव्यतिक्रान्तिप्रकरणम् १६०

३.१४ स्त्रीग्रहप्रकरणम् १६४

३.१५ द्यूतविधिप्रकरणम् १६९
३.१६ स्तैन्यप्रकरणम् १७२
३.१७ साहसप्रकरणम् १७८
३.१८ दण्डपारुष्यप्रकरणम् १८६
३.१९ स्त्रीपुरुषधर्मप्रकरणम् १९२

चतुर्थ अधिकार

४. प्रायश्चित्तम् २०१

परिशिष्ट

१. श्लोकानुक्रमणिका २०९
२. ग्रन्थानुक्रमणिका २२४
३. शब्दानुक्रमणिका २२९

।। श्री गुरुभ्यो नमः।।

लघ्वर्हन्नीति

प्रथम अधिकार

भूपालादिगुणवर्णनम्

श्रीमन्तं नाभिजं वन्दे प्रथमं तीर्थनायकम्।
भूपं च योगिनं योग[1] विल्लक्ष्यं रम्यविग्रहम्।।१।।

विभूति सम्पन्न, राजा नाभि के पुत्र प्रथम तीर्थङ्कर, प्रथम राजा, योगी और योगाभ्यासियों के ध्येय रूप सुन्दर शरीर वाले (श्री ऋषभदेव) की वन्दना करता हूँ।

देवार्याय नमस्तस्मै यस्माच्चरमशासनम्।
प्रवृत्तमस्मिन् भरते संसारार्णवतारकम्।।२।।

संसार रूपी समुद्र को पार कराने वाले, इस भरत क्षेत्र में जिससे अन्तिम (जिन) शासन आरम्भ हुआ उस श्रेष्ठ देव (महावीर) का नमन करता हूँ।

गणेशान् पुण्डरीकादीन् द्विपञ्चाब्धिरसामितान्।
प्रणमामि त्रिधा भक्त्या प्रत्यूहोच्छित्तिकारकान्।।३।।

दो, पाँच, सात और नौ (२, ५, ७, ९) संख्या वाले, विघ्न का नाश करने वाले पुण्डरीक आदि गणधरों की त्रिविध (मन, वचन, काय) भक्ति से वन्दन करता हूँ।

सुधर्मस्वामिनं स्तौमि पञ्चमं गणनायकम्।
यदादिष्टगिरा सर्वं श्रुतं लोके प्रवर्तते।।४।।

जिसकी वाणी द्वारा प्ररूपित समस्त आगम शास्त्र लोक में प्रचलित हैं (महावीर के) उस पञ्चम गणधर सुधर्मा स्वामी की वन्दना करता हूँ।

---

१. योगि० भ १, भ २, प १, प २।।

श्रुतदेवीं सद्गुरूंश्च नतिर्मेऽस्तु मुहुर्मुहुः।
यत्प्रसादसमुद्भूतो मयि बोधः प्रसर्पति।।५।।

देवी सरस्वती तथा सद्गुरु की मैं बारम्बार वन्दना करता हूँ जिनकी कृपा से उत्पन्न हुए ज्ञान का मुझमें प्रसार हो रहा है।

कुमारपालक्ष्मापाला[१]ग्रहेण पूर्वनिर्मितात्।
अर्हन्नीत्यभिधात् शास्त्रात्सारमुद्धृत्य किञ्चन।। ६।।
भूपप्रजाहितार्थं हि शीघ्रस्मृतिविधायकम्।
लघ्वर्हन्नीतिसच्छास्त्रं सुखबोधं करोम्यहम्।। ७।। युग्मम्।।

चौलुक्य राजा कुमारपाल के आग्रह से पूर्व विरचित 'अर्हन्नीति' नामक शास्त्र से कुछ सार उद्धृत् कर निश्चय ही राजा और प्रजा के कल्याण के लिए शीघ्रता से स्मरण में आने वाले तथा सरलता से ज्ञान होने वाले उत्तम शास्त्र लघु-अर्हन्नीति की रचना करता हूँ।

एकदा वीरभगवान् राजगृहपुराद्बहिः।
उद्याने समवासार्षी[२]द्गौतमादिव्रतीडितः।।८।।

एकबार गौतमादि मुनियों से पूजित भगवान् महावीर ने राजगृह नगर से बाहर उपवन में समवसरण किया।

तदागमनवृत्तान्तं श्रुत्वा श्रेणिकभूमिराट्।
जगाम वन्दितुं तूर्णं समुत्कः सपरिच्छदः।।९।।

उन (भगवान् महावीर) के आगमन का वृत्तान्त सुनकर राजा श्रेणिक अपने परिजनों सहित उत्सुकता से शीघ्र वन्दना हेतु गये।

प्रणिपत्य जगन्नाथमुपविश्योचितस्थले।
देशनान्ते चावसरं प्राप्य पप्रच्छ भूधनः।। १०।।

जगत् के स्वामी (भगवान् महावीर) की वन्दना कर उपयुक्त स्थान पर बैठकर प्रवचन के अन्त में अवसर पाकर राजा ने पूछा।

राजप्रश्नाः

पुरा स्वामिन् राजनीतिमार्गः केन प्रकाशितः।
कतिभेदश्च किंरूपो जिज्ञासेति भृशं मम।। ११।।

हे प्रभु! प्राचीन काल में राजनीति का मार्ग किसके द्वारा उद्घाटित किया

---

१. ०पालग्रहेण भ २।।
२. समवासार्षी प १।।

गया, (राजनीति के) कितने भेद हैं, क्या स्वरूप है? इस सम्बन्ध में जानने की मुझे प्रबल इच्छा है।

तत्समाख्याहि भगवन् कृपां कृत्वा ममोपरि।
परार्थसाधने दक्षाः भवन्ति हि महाशयाः।।१२।।

हे भगवन्! मेरे ऊपर कृपा कर उसका सम्यक्प्रकार से प्ररूपण कीजिए। निश्चय ही महात्मा या उदारचेता दूसरों के प्रयोजन को सिद्ध करने में कुशल होते हैं।

ततो जगाद भगवान् शृणु भो मगधेश्वर!।
कालेऽस्मिन्नादिमो भूप ऋषभोऽभूज्जिनेश्वरः।।१३।।

तत्पश्चात् भगवान् बोले हे मगधराज! सुनो इस युग में आदि जिनेश्वर भगवान् ऋषभदेव प्रथम राजा हुए।

स एव कल्पद्रुमफले क्षीणे कालप्रभावतः।
भारतान् दुःखितान् दृष्ट्वा कलिछद्मपरायणान्।।१४।।

कारुण्याद्युग्मजातानां छित्वा धर्मं पुरातनम्।
वर्णाश्रमविभागं वै तत्संस्कारविधिं पुनः।।१५।।

कृषिवाणिज्यशिल्पादिव्यवहारविधिं तथा।
नीतिमार्गं च भूपानां पुरपट्टनसंस्थितिम्।।१६।।

विद्याः सर्वाः क्रियाः सर्वाः ऐहिकामुष्मिकाअपि।
प्रादुश्चकार भगवान् लोकानां हितकाम्यया।।१७।।

— चतुर्भिः कलापकम्।

काल के प्रभाव से कल्पवृक्ष के फल के क्षीण हो जाने पर कलिकाल के कपट के वशीभूत भरत की प्रजा को दुःखी देखकर करुणावश युगलियों (युग्म रूप में उत्पन्न) के पुरातन धर्म का भेदन कर संस्कारविधि सहित वर्ण और आश्रम (दो प्रकार) के विभाग तथा कृषि, वाणिज्य, शिल्प आदि, व्यवहार विधि तथा राजाओं का नीति मार्ग, पुर तथा नगरों की व्यवस्था, लौकिक-पारलौकिक सभी विद्यायें, सभी क्रियायें, भगवान् (ऋषभदेव) ने लोगों के हित की कामना के लिए प्रवर्तित किया।

तत्पुत्रो भरतश्चक्रे निधाय हृदि तद्वचः।
निधाननवकप्राप्तनीतिधर्मादिमर्मवित् ।।१८।।

आर्यवेदचतुष्कं हि जगत्स्थित्यै चकार सः।
पुरुषार्थार्जने दक्षाः यतः स्युर्निखिलाः प्रजाः।।१९।। युग्मम्।।

उस (भगवान् ऋषभ) के पुत्र नवनिधान प्राप्त, नीति, धर्मादि के मर्म को जानने वाले भरतचक्रवर्ती ने पिता के वचन को हृदय में धारण कर (शासन किया)। उसने संसार के पालन के लिए आर्य वेद-चतुष्क की रचना की जिससे सम्पूर्ण प्रजा पुरुषार्थ की प्राप्ति में निपुण हो गयी।

तत्तु कालान्तरे भ्रष्टं जातं हिंसादिदूषितम्।
मिथ्यात्विभिर्गृहीतं हि सुविध्यादिजिनान्तरे।।२०।।

परन्तु समय बीतने के साथ सुविधि आदि तीर्थङ्करों के काल में मिथ्यात्वियों (जैनेतरों) द्वारा अङ्गीकार करने से हिंसा आदि से दोषयुक्त होकर वह (शास्त्र) भ्रष्ट हो गया।

तदार्यैस्तत्परित्यज्य पूर्वाचार्यैर्विनिर्मिताः।
ग्रन्था अनेकशः सन्त्यधुनापि पृथिवीतले।।२१।।

तानाश्रित्य जनो लोकव्यवहारे प्रवर्त्तते।
एतन्निदानमेतस्य जानीहि मगधाधिप।।२२।।

इस लिए श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा उसे छोड़ कर, पूर्व के आचार्यों द्वारा रचित अनेक ग्रन्थ, जो पृथ्वीतल पर अब भी विद्यमान हैं, उनका आश्रय लेकर लोकव्यवहार का आचरण किया जाता है। हे मगधराज! यही (नीतिशास्त्र की उत्पत्ति का) कारण जानो।

इति प्रथमप्रश्नस्योत्तरं दत्वा जगत्प्रभुः।
प्रश्नान्तरसमाधानं यथा चक्रे तथोच्यते।।२३।।

इस प्रकार प्रथम प्रश्न का उत्तर देकर संसार के स्वामी (भगवान् महावीर) ने जिसप्रकार (राजा श्रेणिक के) अन्य प्रश्न का समाधान किया वह निरूपित किया जाता है–

(वृ०) तथाहि – **उदाहरणार्थ–**

तत्रादावुपयोगित्वान्नृपाणां मन्त्रिणां गुणाः।
प्रकाश्य च तथा तेषामेव शिक्षाश्च काश्चन।।२४।।

उपयोगी होने के कारण ग्रन्थ के प्रारम्भ में राजा तथा मन्त्री के गुणों को सूचित कर उन (राजा तथा मन्त्री) की ही कुछ शिक्षाओं का (कथन करेंगे)।

अव्यङ्गो १ लक्षणैः पूर्णः २ रूपसम्पत्तिभृत्तनुः ३।
अमदो ४ जगदोजस्वी ५ यशस्वी ६ च कृपापरः ७।।२५।।

कलासु कृतकर्मा च ८ शुद्धराजकुलोद्भवः ९।
वृद्धानुगस्त्रिशक्तिश्च १०-११ प्रजारागी १२ प्रजागुरुः १३।।२६।।

समर्थनः पुमर्थानां त्रयाणां सममात्रया १४।
कोशवान् १५ सत्यसन्ध[1]श्च १६ चरदृग् १७ दूरमन्त्रदृक् १८॥२७॥

आसिद्धिकर्मो[2]द्योगी १९ च प्रवीणः शस्त्रशास्त्रयोः २०।
निग्रहानुग्रहपरो २१ निर्लञ्चो २२ दुष्टशिष्टयोः २३॥२८॥

उपायार्जितराज्यश्री २४ दानशीलो २५ ध्रुवञ्जयी २६।
न्यायप्रियो २७ न्यायवेत्ता २८ व्यसनानां व्यपासकः २९॥२९॥

अवार्यवीर्यो ३० गाम्भीर्यौदार्यचातुर्यभूषितः ३१-३३।
प्रणामावधिकक्रोधः ३४ सात्विकस्तात्त्विको ३५-३६ नृपः॥३०॥

— इति नृपगृणाः॥

राजा १. पूर्ण अङ्गों वाला, २.समस्त (शुभ) लक्षणों से परिपूर्ण, ३. सुन्दर शरीर वाला, ४. मद रहित, ५. ओजस्वी, ६. यशस्वी, ७. दयावान, ८. कलाओं में निपुण, ९. शुद्ध राजवंश में उत्पन्न, १०. वृद्ध (वयोवृद्ध, धर्मवृद्ध, ज्ञानवृद्ध और आगमवृद्ध) का अनुगमन करने वाला, ११. तीन (प्रभाव, मन्त्र और उत्साह) शक्तियों से युक्त, १२. प्रजा में अनुरक्त, १३. प्रजा का स्वामी; १४. समान रूप से उपयुक्त मात्रा में तीन पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम) का समर्थन करने वाला, १५. कोशवान्, १६. सत्यनिष्ठ (वचन का पालन करने वाला), १७. गुप्तचर रूपी आँख वाला, १८. दूरदृष्टिवाला, १९. कार्यसिद्धि पर्यन्त उद्यम करने वाला, २०. शस्त्र और शास्त्र में प्रवीण, २१. दण्ड देने और कृपा करने में निपुण, २२. लोभ में न आने वाला, २३. दुष्टों को अनुशासित करने वाला, २४. पराक्रम से राज्यरूपी लक्ष्मी की वृद्धि करने वाला, २५. दानशील, २६. निश्चित रूप से विजय प्राप्त करने वाला, २७. न्यायप्रिय, २८. न्यायवेत्ता, २९. व्यसन-त्यागी, ३०. अप्रतिरोधी पराक्रमवाला, ३१-३३. गम्भीरता, उदारता, दक्षता से सुशोभित, ३४. क्षमायाचना की अवधि तक क्रोध धारण करने वाला, ३५. सात्विक और ३६. तात्त्विक हो।

देवान् गुरून् द्विजांश्चैव कुलज्येष्ठांश्च लिङ्गिनः।
विहाय भवतान्येषां न विधेया नमस्कृतिः॥३१॥

---

१. सप्तसन्धश्च १६ प १, सततसन्धश्च १६ भ १, भ २, प २॥

२. ०कर्मो १९ द्योगी च २० प्रवीणः शस्त्र २१ शास्त्रयोः
२२ निग्रहा २३ नुग्रहपरो २४ निर्लञ्चो दुष्टशिष्टयोः २४॥२८॥
उपायार्जितराज्यश्रीः २५ दानशीलो २६ ध्रुवंजयी २७।
न्यायप्रियो २८ न्यायवेत्ता २९ व्यसनानां व्यपासकः ३०॥२९॥
आचार्यवीर्ये ३१ गाम्भीर्यौ ३२ दार्य ३३ चातुर्यभूषितः ३४।
प्रणामावधिकक्रोधः ३५ सात्विक ३६ स्तात्विको नृपः॥३०॥ भ १, भ २, प १, प २॥

देव, गुरु, ब्राह्मण, कुल के ज्येष्ठ और साधुओं के अतिरिक्त आप अन्य किसी की वन्दना न करें।

न स्पृष्टं क्वापि भोक्तव्यं नान्येन सह भोजनम्।
न श्राद्धभोजनं कार्यं भोक्तव्यं नान्यवेश्मनि।।३२।।

(राजा को) न ही किसी के द्वारा भी स्पर्श किया हुआ और न ही दूसरे के साथ भोजन करना चाहिए, न ही श्राद्ध (पितृ क्रियाकर्म) भोजन करना चाहिए और न ही किसी के घर में भोजन करना चाहिए।

अगम्यास्पृश्यनारीणां विधेयो नैव सङ्गमः।
परेण धारितं वस्त्रं नो धार्यं भूषणं तथा।।३३।।

(राजा को) गमन न करने योग्य, स्पर्श के अयोग्य (अछूत) नारियों के साथ सम्पर्क या मैथुन नहीं करना चाहिए, दूसरों के द्वारा धारण किये गये वस्त्र तथा आभूषण नहीं धारण करना चाहिए।

शयनं परशय्यायामासनं च परासने।
परपात्रे भोजनं च वर्जयेः[1] सर्वदा नृपः।।३४।।

राजा दूसरे की शय्या पर शयन, दूसरे के आसन पर बैठने तथा दूसरे के पात्र में भोजन का सर्वदा त्याग करे।

नैवारोप्या गुरून्मुक्त्वा स्वशय्यासनवाजिषु।
स्वे रथे वारणे चैव पर्याणे क्रोड एव च।।३५।।

अपनी शय्या, आसन, घोड़े, रथ, हाथी आदि पर गुरुओं के अतिरिक्त किसी को न बिठाये।

काञ्जिकं[2] क्वथितान्नं च यवान्नं तैलमेव च।
न भोक्तव्यं क्वचिद्राज्ञा पञ्चोदुम्बरजं फलम्।।३६।।

— इति नृपाणाम् नियमशिक्षाः।।

काञ्जी (खट्टा पेय-विशेष), क्वथित (धीमी आँच पर उबाला हुआ) अन्न, जौ, तेल और उदुम्बर (गूलर) जाति के पाँच फलों का राजा को कभी भी आहार नहीं करना चाहिए।

अपराधसहस्रेऽपि योषिद्द्विजतपस्विनाम्।
न वधो नाङ्गविच्छेदस्तेषां कार्याः प्रवासनम्।।३७।।

---

१. वर्जये प २।।
२. काजिकं भ १।।

हजार अपराध होने पर भी स्त्री, ब्राह्मण तथा तपस्वियों का वध और न ही अङ्ग-भङ्ग करना चाहिए बल्कि उनका देश से निर्वासन करना चाहिए।

देवद्विजगुरूणां च लिङ्गिनां च सदैव हि।
अभ्युत्थाननमस्कारप्रभृत्या मानमाचर।।३८।।

देव, ब्राह्मण, गुरु और साधुओं (के आगमन पर) अपने आसन से खड़े होकर (अभ्युत्थान), नमस्कार आदि के द्वारा सदैव उनका समादर करना चाहिए।

धर्मार्थकामान् सन्दध्या अन्योऽन्यमविरोधितान्।
पालयस्व प्रजाः सर्वाः स्मृत्वा स्मृत्वा क्षणे क्षणे।।३९।।

धर्म, अर्थ और काम को परस्पर विरोध के विना साधना चाहिए। प्रत्येक क्षण सभी प्रजाजनों का स्मरण कर उनका पालन करना चाहिए।

मन्त्रिभिः सेवकैश्चैव पीड्यमानाः प्रजा नृप।
क्षणे क्षणे पालयेथाः प्रमादं तत्र माचर।।४०।।

हे राजन्! मन्त्रियों और सेवकों द्वारा पीड़ित की जाती हुई प्रजा की रक्षा प्रत्येक क्षण करनी चाहिये, इसमें रञ्चमात्र भी आलस्य नहीं करो।

दण्ड्या न लोभतः केचिन्न क्रोधान्नाभिमानतः।
दोषानुसारिदण्डश्च विधेयः सर्वदा त्वया।।४१।।

हे राजन्! लोभ, क्रोध और अभिमान के कारण किसी को दण्डित नहीं करना चाहिए बल्कि तुम्हारे (राजा) द्वारा सदा दोष के अनुसार दण्ड देना चाहिए।

हित्वालस्यं सदा कार्यं नीत्या कोषस्य वर्द्धनम्।
प्रजायाः पालनं नीत्या नीत्या राष्ट्रहितं पुनः।।४२।।

आलस्य छोड़कर सदा नीति द्वारा कोष की वृद्धि करना चाहिए। नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करना चाहिए, पुनः नीति से ही राष्ट्रहित करना चाहिए।

कदापि न हि मोक्तव्यो नीतिमार्गो हितेच्छुभिः।
स्यान्न्यायवर्ज्जितो भूप इहामुत्र च दुःखभाक्।।४३।।

अपना हित चाहने वाले राजाओं द्वारा कभी भी नीतिमार्ग का त्याग नहीं करना चाहिए। न्यायगुण से वञ्चित राजा इस लोक और परलोक में दुःख का भागी होगा।

यदुक्तम् – जैसा कि कहा गया है –

दुष्टदण्डः[१] सुजनस्य पूजा न्यायेन कोशस्य च सम्प्रवृद्धिः।
अपक्षपातो रिपुराष्ट्ररक्षा पञ्चैव यज्ञाः कथिता नृपाणाम्।।४४।।

---

१. दुष्टस्यदण्डः प २।।

दुष्ट को दण्ड, सज्जन की पूजा, न्यायपूर्वक कोश की सम्यक् रूप से वृद्धि, पक्षपात का अभाव और शत्रु से राष्ट्र की रक्षा – राजाओं के ये ही पाँच यज्ञ कहे गये हैं।

अङ्गरक्षान्सौविदल्लान् मन्त्रिणो दण्डनायकान्।
सूपकारान् द्वारपालान् कुर्याद्वंशक्रमागतान्।।४५।।

अङ्गरक्षकों, कञ्चुकियों, मन्त्रियों, सेनापतियों, रसोइयों और द्वारपालों की नियुक्ति वंशानुगत रूप से आये हुए लोगों की करनी चाहिए।

वर्जयन्मृगयां द्यूतं वेश्यां दासीं परस्त्रियः।
सुरां वचनपारुष्यं तथा चैवार्थदूषणम्।।४६।।

राजा द्वारा शिकार, द्यूत, वेश्या, दासी, परस्त्री, मदिरा, वाणी की कठोरता तथा धन के अपव्यय का त्याग करना चाहिये।

वृथार्थदण्डपारुष्यं वाद्यं गीतं तथाधिकम्।
नृत्यावलोकनं भूयो दिवा निद्रां च सततम्।।४७।।
परोक्षनिन्दा व्यसनान्येतानि परिवर्जयेः।[1]
न्यायान्यायपरामर्शे नीरक्षीरविवेचने।।४८।।

निष्प्रयोजन दण्ड, कठोरता, अत्यधिक वाद्य और गीत, बार-बार नृत्य देखना, निरन्तर दिन के समय शयन और पीठ पीछे निन्दा – इन दुर्व्यसनों का परित्याग करो। न्याय और अन्याय के विवेचन में (हंस के समान) नीर-क्षीर विवेक वाला होना चाहिए।

न पक्षपातो नोद्वेगस्त्वया कार्यः कदाचन।
स्त्रीणां श्रीणां विपक्षाणां नीचानां रसितागसाम्।।४९।।
मूर्खाणां चैव लघ्वानां[2] मा विश्वासं कृथाः क्वचित्।
देवगुर्वाराधने च स्वप्रजानां च पालने।।५०।।
पोष्यपोषणकार्ये च मा कुर्यात्प्रतिहस्तकान्।
कार्यः सम्पदि नोत्सेको धैर्यछेदो च चापदि।।५१।।
एतद्द्वयं निगदितं बुधैरुत्तमलक्षणम्।
शास्त्रैर्दानैः प्रपाभोज्यैः प्रासादैश्च[3] जलाशयैः।।५२।।

---

१. परिवर्जयेत् प १।।
२. लुध्वानां भ १, प २।।
३. प्रशादैश्च भ १, भ २, प १, प्रसादै० प २।।

यशस्करै[1] रमाभिश्च पूरयेः सकलामिलाम्।
घातयेः शत्रुवंश्यांश्च पोषयेः सुहृदन्वयम्॥५३॥

तुम्हारे (राजा) द्वारा न कभी किसी का पक्ष ग्रहण करना चाहिए और न ही चित्त को अस्थिर (उद्वेग) करना चाहिए। स्त्रियों, धनवानों, विपक्षियों, अधम, मदिरा सम्बन्धी अपराधियों, मूर्खों तथा अल्पवयस्कों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। देव और गुरु की आराधना, अपनी प्रजा का पालन तथा पोषण किये जाने योग्य वर्ग के पोषण का कार्य दूसरों के हाथ में नहीं सौंपना चाहिए। आनन्द में अत्यधिक अहङ्कार तथा सङ्कट के समय में धैर्य का त्याग नहीं करना चाहिए – बुद्धिमानों द्वारा ये दो उत्तम लक्षण बताये गये हैं। राजा कीर्ति में वृद्धि करने वाले शास्त्र, दान, परिखाओं, भोजनशालाओं, भवनों और जलाशयों से सम्पूर्ण पृथ्वी को पूर्ण कर दे। राजा शत्रु के वंशजों को नष्ट करे और मित्रों के वंश का पोषण करे।

शक्तित्रिकमुपायानां चतुष्कं चाङ्गसप्तकम्।
वर्गत्रयं सदैतानि रक्षणीयानि यत्नतः॥५४॥

तत्र प्रभूत्साहमन्त्राः शक्तयः समुदाहृताः।
उपायाः सामदामौ च दण्डभेदाविति क्रमात्॥५५॥

स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च।
सप्ताङ्गी नीतिराज्यस्य प्रकृतिश्चाष्टमा क्वचित्॥५६॥

षड्गुणाश्च समाख्याता राज्यस्तम्भोपमा इमे।
सन्धिविग्रहयानासनाश्रयद्वैधभावनाः ॥५७॥

तीन शक्ति, चार उपाय, सात अङ्ग और त्रिवर्ग से सदा प्रयत्नपूर्वक (राज्य का) रक्षण करे। सामर्थ्य (बल), उत्साह तथा मन्त्र (तीन) शक्तियाँ कही गई हैं। साम, दाम, दण्ड और भेद क्रमशः उपाय कहे गये हैं। स्वामी, प्रधान, मित्र, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और सैन्य – ये सात राज्य के अङ्ग हैं। कुछ प्रकृति को राज्य का आठवाँ अङ्ग भी स्वीकार करते हैं। सन्धि, विग्रह (युद्ध), यान, आसन, आश्रय और द्वैध भावना (राजनीति में दुरङ्गी नीति बरतने का गुण) – इन छः गुणों को राज्य के स्तम्भ की उपमा दी जाती है।

पालयेच्च प्रजाः सर्वाः स्वपरापेक्षयोज्झितः।
दुष्टान् प्रजापीडकांश्च तथा राज्यपदैषिणः॥५८॥

---

१. यशस्कारै भ १, भ २, प १, प २॥

गुरुदेवभिदः शत्रून् चौरान् प्राणैर्वियोजयेः।[1]
सर्वदा दण्डनीयाश्च लञ्चाग्राहिनियोगिनः।।५९।।

यथा स्युः सुस्थिताः सर्वाः प्रजाः कार्यं तथा सदा।
इत्येषा भवता शिक्षा करणीया दृढात्मना।।६०।।

– इति नृपाणां नीतिशिक्षा।।

बिना अपने पराये के भेद-भाव के सम्पूर्ण प्रजा का पालन करना चाहिए। दुष्टों, प्रजा को पीड़ित करने वालों राज्य पाने की इच्छा वालों, गुरु और देव का नाश करने वालों, तथा शत्रुओं और चोरों का प्राणहरण करना चाहिए। रिश्वत ग्रहण करने वाले अधिकारियों को सदा दण्डित करना चाहिए। हे राजन्! आप दृढ़तापूर्वक इन (उपर्युक्त वर्णित शिक्षाओं) को धारण करें और सम्पूर्ण प्रजा जिसप्रकार सुख से रहे आपको सदा वैसा आचरण करना चाहिए।

कुलीनः कुशलो धीरो दाता सत्यसमाश्रितः।
न्यायैकनिष्ठो मेधावी शूरः शास्त्रविचक्षणः।।६१।।

सर्वव्यसननिर्मुक्तो दण्डनीतिविशारदः।
पुरुषान्तरविज्ञाता सत्यासत्यपराक्रमः।।६२।।

कृतापराधसौदर्ये शत्रावपि समाशयः।
धर्मकर्मरतो नित्यमनागतविमर्शकः।।६३।।

अत्यास्तिक्यादिमतिषु चतसृष्वपि बद्धधीः।-
भक्तः षड्दर्शनेष्वेव गुरुदेवाद्युपासकः।।६४।।

नित्यमाचारनिरतः पापकर्मपराङ्मुखः।
सदा विचारयेन्न्यायं क्षीरनीरविवेचनम्।।६५।।

कुलक्रमागतं मात्रं नृपयोग्यमुदीरयन्।
ईदृशः पुरुषो मन्त्री जायते राज्यवृद्धिकृत्।।६६।।

– इति मन्त्रिगुणाः।।

उच्चकुल में उत्पन्न, कुशल, धीर, दानी, सत्य का आश्रय लेने वाला, न्यायप्रिय, मेधावी, वीर, शास्त्रज्ञ, समस्त व्यसनों से मुक्त, दण्डनीति वेत्ता, पुरुषों में अन्तर का विज्ञाता, सत्य-असत्य कथन में साहसी, अपराधी सहोदर हो अथवा शत्रु उनके प्रति समान दृष्टि वाला, धर्म कार्य में लीन, सदा भविष्य का चिन्तन करने वाला, आस्तिक्य आदि चार प्रकार की बुद्धियों में नैसर्गिक प्रवृत्ति वाला,

१. वियोजये प २।।

षड्दर्शनों का ज्ञाता, गुरु, देव आदि का उपासक, सर्वदा सदाचार का पालन करने वाला, पापकर्म से विमुख, सदा हंस की भाँति दुग्ध और पानी को पृथक् करने वाला, सतत न्याय का चिन्तन करने वाला, कुलपरम्परा से आया हुआ, राजोचित मार्ग को बताने वाला, इस प्रकार का पुरुष राज्य की वृद्धि करने वाला मन्त्री होता है।

क्रोधाल्लोभात्तथोत्सेकाद्दर्पादपथिवर्त्तनम् ।
वर्जनीयं सदामात्यैर्वाच्यं नित्यं यथाहितम्।।६७।।

व्यवहारे न कस्यापि पक्षः कार्यस्त्वया।
नृप्रजाहितैकनिष्ठत्वं धारणीयं निरन्तरम्।।६८।।

परामर्शं विधायोच्चैः राज्याङ्गेषु च वैरिषु।
तथा कार्यं यथा स्वामिकार्ये हानिर्न जायते।।६९।।

— इति मन्त्रिशिक्षा।।

अमात्यों द्वारा क्रोधवश, लोभवश, अहङ्कारवश और अभिमानवश कुत्सित मार्ग के आचरण का सदा त्याग करना चाहिए तथा सदैव हितकारी वचन बोलना चाहिए। व्यवहार में किसी का भी पक्ष नहीं लेना चाहिए, निरन्तर राजा एवं प्रजा के हित का ही एक मात्र लक्ष्य धारण करना चाहिए। राज्य के अङ्गों तथा शत्रुओं के विषय में उच्च अधिकारियों से परामर्श कर उस प्रकार कार्य करना चाहिए जिससे राज्य की हानि न हो।

नृपामात्यौ यदि स्यातां पूर्वोक्तगुणधारकौ।
तदा प्रवर्तते नीतिर्न च स्याद् द्विषदागमः।।७०।।

यदि राजा और अमात्य पूर्व में कहे गये गुणों के धारक हों तब नीति के अनुसार (राज्य-कार्य) सञ्चालन होने पर राज्य में शत्रु का प्रवेश नहीं होगा।

पूर्वोक्तशिक्षया युक्तः प्रातरुत्थाय भूपतिः।
मङ्गलातोद्यनादेन स्मरेत्पञ्चनमस्कृतिम्।।७१।।

पूर्व में कही गई शिक्षाओं से युक्त राजा प्रातः उठकर मङ्गल वाद्यों की ध्वनि के साथ पञ्चपरमेष्ठि नमस्कार का स्मरण करे।

कृत्वा प्राभातिकं कृत्यं स्नात्वा गत्वा जिनालये।
जिनभक्तिं विधायोच्चैः परिच्छदसमावृतः।।७२।।

गुरुश्चेत्तर्हि तत्पादनतिं कृत्वा तदग्रतः।
स्थित्वा तद्देशनां श्रुत्वाभियुक्तः सुसमाहितः।।७३।।

आगत्य च सभामध्ये स्थित्वा सिंहासने ततः।
मन्त्रियुक्पार्थिवः सर्वराजचिह्नसमन्वितः।।७४।।

पश्येत्सभागतान्सर्वान् राज्यकर्माधिकारिणः।
सेनापतितलारक्षप्रभृतींश्च चरानपि।।७५।।

— चतुर्भिःकलापकम्।।

प्रातःकालीन नित्य कर्म कर, स्नान कर, जिनालय जाकर, जिन की भक्ति कर, उच्च अधिकारियों एवं सेना से घिरा हुआ यदि गुरु हो तो उसके चरणों में नमनकर, उसके सम्मुख सावधानीपूर्वक दत्तचित्त हो बैठकर, देशना सुनकर और समस्त राजचिह्न से युक्त हो मन्त्रियों सहित सभा में आकर, तत्पश्चात् सिंहासन पर बैठकर सभा में आये हुए सेनापति, तलारक्ष आदि सभी राज्य कर्माधिकारियों और गुप्तचरों का भी निरीक्षण करे।

लक्षणानि स्वकर्माणि चैषां प्रस्तावयोगतः।
कथ्यन्तेऽत्र यथा प्रोक्तान्यागमे नीतिकोविदैः।।७६।।

प्रस्तुत विषय के सन्दर्भ में आगमशास्त्र में और नीतिशास्त्र के ज्ञाताओं द्वारा इनके लक्षण और कर्म जिस प्रकार कहे गये हैं उनका यहाँ निरूपण किया जाता है।

(वृ०) तद्यथा —

सेनापतिर्भवेद्दक्षः यशोराशिर्महाबलः।
स्वभावतः सदातप्तस्तेजस्वी सात्त्विकः शुचिः।।७७।।

सेनापति दक्ष, (अनेक वीरतापूर्ण कार्य करने से) कीर्तिवान, महाबलशाली, सदा तीक्ष्ण स्वभाव वाला, तेजस्वी, सत्त्वगुण प्रधान और पवित्र हृदय वाला हो।

यवनादिलिपौ दक्षो म्लेच्छभाषाविशारदः।
ततो म्लेच्छप्रभृतिषु साम[1]दामाद्युपायकृत्।।७८।।

विचारपूर्वको भाषो यथावसरवाक्यवित्।
गम्भीरमधुरालापी नीतिशास्त्रार्थकोविदः।।७९।।

जागरूको दीर्घदर्शी सर्वशास्त्रकृतश्रमः।
ज्ञातयुद्धविधिश्चक्रव्यूहाव्यूहविशेषवित् ।।८०।।

सावहित्थस्यापि यत्तूर्णं दम्भादम्भादिभाववित्।
प्रत्युत्पन्नमतिर्वीरोऽमूढः कार्यशतेष्वपि।।८१।।

---
१. समदामा० भ १, प १, प २।।

स्वामिभक्तः प्रजाप्रेष्ठः प्रसन्ननयनाननः।
दुर्दर्शनो द्विषां वीररसावेशे भयङ्करः॥८२॥

लञ्चादिलोभानाकृष्टः स्वामिकार्यैकसाधकः।
सल्लक्षणः कृतज्ञश्च दयालुर्विनयी नयी॥८३॥

जेतव्यवर्षे निम्नोच्चजलशैलादिदुर्गवित्।
नानाविषमदुर्गाणां भङ्गादानादिमर्मवित्॥८४॥

सन्धाने प्रतिभिन्नानां संहतानां च भेदने।
उपायज्ञो प्रयासेन द्विषतैवं द्विषं जयेत्॥८५॥

— इति सेनापतिलक्षणानि॥

यवनादि लिपि में सिद्धहस्त, म्लेच्छ भाषा में निपुण, तत्पश्चात् म्लेच्छ आदि जातियों में साम-दाम आदि उपाय करने वाला, गम्भीरता के साथ विचारपूर्वक बोलनेवाला, अवसर के अनुकूल वचन बोलने वाला, गम्भीर और मधुर वाणी बोलने वाला, नीतिशास्त्र के अर्थ में प्रवीण, अपने कर्त्तव्य के विषय में सावधान, दूरदर्शी, समस्त शास्त्रों का ज्ञाता, युद्ध-विधि का ज्ञाता, चक्रव्यूह संरचना और अव्यूह (व्यूह-भेदन) में निपुण, मनोभाव प्रकट न करने वाले लोगों के भी छल और प्रामाणिकता को शीघ्रता से जानने वाला, प्रत्युत्पन्नमति वीर, सैकड़ों कार्यों में कुशल, स्वामिभक्त, प्रजा का अत्यन्त प्रिय, प्रसन्न नेत्र और मुखवाला, शत्रुओं में भय उत्पन्न करने वाली आकृति वाला, वीर रस के आवेश में भयङ्कर (प्रतीत होने वाला), रिश्वत आदि के लोभ की ओर आकृष्ट न होने वाला, अपने स्वामी के कार्य को सिद्ध करने में अद्वितीय, शुभ लक्षणों वाला, उपकार मानने वाला, दयालु, विनयशील, नीतिवान्, विजयी होने योग्य, क्षेत्र की नीची-ऊँची भूमि, जल, शैलादि और दुर्ग के विषय में जानने वाला, अनेक प्रकार के विषम दुर्गों को भङ्ग करने, ग्रहण करने आदि का रहस्य जानने वाला, शत्रुओं की सन्धि को तोड़ने के उपाय को जानने वाला और शत्रुओं को शत्रु के प्रयास से ही जीतनेवाला—इन गुणों से युक्त सेनापति योग्य है।

त्वया परबलावेशो बुध्या बाहुबलेन च।
भञ्जनीयो विधेयो न विश्वासः कस्यचित् परम्॥८६॥

परस्य मण्डलं प्राप्य कार्या नानवधानता।
अल्पेऽपि परसैन्ये च महान् कार्यः उपक्रमः॥८७॥

देशं कालं बलं पक्षं षड्गुण्यं शक्तिसङ्गमम्।
विलोक्य भवता शत्रुरभियोज्यो न चान्यथा॥८८॥

स्वस्वामिने जयो देयः कार्यं स्वप्राणरक्षणम्।
दण्डनायकमुत्कृष्टमित्येवं शिक्षयेद्गुरुः।।८९।।

– इति सेनापतिशिक्षा।।

बुद्धि और बाहुबल से शत्रु बल को तोड़ना चाहिए, शत्रुपक्ष का भरोसा नहीं करना चाहिए। दूसरे के राज्य में पहुँचकर प्रमाद नहीं करना चाहिए। शत्रुसेना के संख्या में कम होने पर भी महान प्रयास करना चाहिए। देश, काल, सैन्य, पक्ष, षड्गुण तथा शक्ति का सङ्गम देखकर शत्रुओं के साथ युद्ध करना चाहिये अन्यथा नहीं। अपने राजा को विजय प्रदान करना चाहिये और अपने प्राणों की रक्षा करनी चाहिये इस प्रकार गुरु द्वारा दण्डनायक को उत्तम शिक्षा देनी चाहिये।

कुलीनाः कुशलाधीराः शूराः शास्त्रविशारदाः।
स्वामिभक्ता धर्मरताः प्रजावात्सल्यशालिनः।।९०।।

सर्वव्यसननिर्मुक्ताः शुचयो लोभवर्जिताः।
समाशयाश्च सर्वेषु नृपवस्तुसुरक्षकाः।।९१।।

परोपेक्षाविनिर्मुक्ताः गुरुभक्ताः प्रियंवदाः।
महाशया महाभाग्याः धर्मे न्याये सदा रताः।।९२।।

अप्रमादाः प्रसन्नाश्च प्रायः कीर्त्तिप्रिया अपि।
कर्माधिकारे योग्याः स्युरीदृशाः पुरुषाः परम्।।९३।।

उच्च कुल, कुशल, धैर्यवान्, पराक्रमी, शास्त्रवेत्ता, स्वामिभक्त, धर्मनिष्ठ, प्रजावत्सल, समस्त व्यसनों से मुक्त, पवित्र, लोभरहित, सबके प्रति समभाववाला, राजा की वस्तु की रक्षा करने वाला, दूसरे की आशा नहीं रखने वाला, गुरुभक्त, प्रियभाषी, उदार चित्तवाला, भाग्यशाली, सर्वदा धर्म तथा न्याय में अनुरक्त, आलस्यरहित, प्रसन्नचित्त और प्रायः यश की आकांक्षा वाला, इस प्रकार के पुरुष राजा के अधिकारी बनने के अत्यन्त योग्य हैं।

(वृ०) इतिसामान्यतःसर्वेषांकर्माधिकारिणां लक्षणानि –

इस प्रकार सामान्य रूप से सभी राजकर्मचारियों के लक्षण (कहे गये) –

स्वामिना यदि यत्कर्म न्यस्तं विश्वासतस्त्वयि।
अत्र प्रमादो नो कार्यो विधेयं स्वामिवाञ्छितम्।।९४।।

स्वामी द्वारा कर्मचारी में विश्वासपूर्वक उसे जो भी कार्य सौंपा गया है उसमें आलस्य नहीं करना चाहिए, स्वामी के अभिलषित की पूर्ति करनी चाहिए।

प्रजा न पीडनीयास्तु स्वयं पत्युर्न कर्म च।
अर्जनीयं नयाद्वित्तं न हेयं सत्यमुत्तमम्।।९५।।

प्रजाधने नृपस्वे च न कार्या कर्हिचित्स्पृहा।
एवं शिक्षा सदा देया सर्वकर्माधिकारिषु॥९६॥

— इति सामान्यतःसर्वेषांकर्माधिकारिणांतत्कर्मबोधिकाशिक्षा॥

प्रजा को पीड़ित नहीं करना चाहिए, स्वयं राजा का कार्य नहीं बिगाड़ना चाहिए, न्यायपूर्वक धन एकत्र करना चाहिए और सर्वोत्कृष्ट सत्य का परित्याग नहीं करना चाहिए। प्रजा के धन और राजा के धन की कभी आकांक्षा नहीं करनी चाहिए, इस प्रकार की शिक्षा राज्याधिकारियों को सदा दी जानी चाहिए।

मध्वाम्लकटुतिक्तेषु वाग्भेदेषु विचक्षणाः।
औत्पत्तिक्यादिधीयुक्ताः शीघ्रकार्यविधायिनः॥९७॥

विनीताः स्वामिभक्ताश्च स्वामिकार्यैकतत्पराः।
सर्वभाषासु दक्षाश्च प्रायेण स्युर्द्विजाश्चराः॥९८॥

— इतिदूतलक्षणानि॥

मधुर, आम्ल, कड़वा और तिक्त वाणी में अन्तर करने में कुशल, औत्पत्तिकी आदि बुद्धि से युक्त, कार्य को शीघ्र सम्पन्न करने वाले, विनीत, स्वामिभक्त, स्वामी के कार्य में अत्यन्त तत्पर और सभी भाषाओं में दक्ष प्रायः ब्राह्मण गुप्तचर हों।

स्वस्वामिनो वृथोत्साहो न देयो रभसात्कदा।
परप्रसादो नापेक्ष्यः कार्यं सत्यनिवेदनम्॥९९॥

स्वामिप्रतापसंवृद्धिः कार्या सर्वत्र च त्वया।
ज्ञात्वान्यभावं तद्वाच्यं यत्स्यात्स्वाम्यर्थसाधकम्॥१००॥

— इति दूतशिक्षा॥

कभी भी उतावलेपन से स्वामी को व्यर्थ का उत्साह न दिलाये, दूसरे की कृपा की आकांक्षा नहीं करे, सत्य का ही निवेदन करे। गुप्तचर द्वारा सर्वत्र स्वामी के पराक्रम की वृद्धि करनी चाहिए और दूसरे के मन्तव्य को जानकर वह बोलना चाहिए जिससे स्वामी का प्रयोजन सिद्ध हो।

तेषां विज्ञापनं सम्यक् श्रुत्वा मन्त्रियुता नृपः।
हिताहितं विविच्याथ कुर्याद्राष्ट्रहितं भृशम्॥१०१॥

राजा मन्त्री सहित उनकी सूचना को भली प्रकार सुनकर हित-अनहित का विवेचन करने के पश्चात् राष्ट्र के लिए अत्यन्त हितकारी कार्य करे।

इत्याचार्य श्रीहेमचन्द्रविरचिते चौलुक्यवंशभूषणकुमार-

पालशुश्रूषिते लघ्वर्हन्नीतिशास्त्रे भूमिकाभूपालादिगुण-
वर्णननाम प्रथमोऽधिकारः।।१।।

यह आचार्य श्री हेमचन्द्र द्वारा विरचित चौलुक्यवंश के भूषण राजा कुमारपाल द्वारा सेवित लघु अर्हन्नीति नामक शास्त्र में भूमिका के रूप में भूपालादिगुणवर्णन शीर्षक प्रथम अधिकार है।

—o—

द्वितीय अधिकार

२.१

युद्धनीतिप्रकरणम्

जगन्नाथं सनाथं चाद्भुतलक्ष्म्योर्ज्जितप्रभम्।
प्रत्यूहनाशने दक्षमजितं समुपास्महे।।१।।

जगत के स्वामी, अलौकिक सौन्दर्य से दीप्त कान्ति वाले, विघ्न का नाश करने में सक्षम, (दूसरे तीर्थङ्कर) अजित की उपासना करता हूँ।

पूर्वाधिकारे यत्प्रोक्तं हिताहितविचारणम्।
नीतिप्रवर्तनं कृत्यं भूपालस्य तदुच्यते।।२।।

पूर्व अर्थात् प्रथम अधिकार में वर्णित हित-अहित के विमर्श के सम्बन्ध में नीति के क्रियान्वयनरूप राजा का जो कर्त्तव्य है उसका कथन किया जाता है।

(वृ०) तत्रादौ नृपेण विचारणा कुत्र कथं कैश्च कर्त्तव्येत्याह –

आरम्भ में राजा द्वारा किस स्थल पर, किस रीति से और किनके साथ मन्त्रणा करनी चाहिए, इसका निरूपण –

उद्याने विजने गत्वा प्रासादे[1] वा रहःस्थितः।
मन्त्रयेन्मन्त्रिभिर्मन्त्रं भूयः स्वस्थः समाहितः।।३।।

निर्जन उद्यान में अथवा महल में एकान्त में जाकर स्वस्थ तथा दत्तचित्त होकर राजा द्वारा मन्त्रियों के साथ बार-बार मन्त्रणा करना चाहिये।

मन्त्रभेदे कार्यभेदः पार्थिवानां प्रजायते।
अतो मन्त्रणेऽखिलान् मन्त्रभेदकानपसारयेत्।।४।।

परामर्श या गुप्त वार्ता का रहस्य खुलने से राजाओं की कार्य योजना बाधित होती है। इसलिए मन्त्रणा के समय गुप्त परामर्श के सभी भेद खोलने वालों को बाहर हटाना चाहिए।

---

१. प्रसादे भ १, भ २, प १, प २।।

(वृ०) विचारानन्तरं नीत्या राष्ट्रहितं कार्यम्। तत्र नीतिः कतिधेत्याह –

परामर्श के पश्चात् नीतिपूर्वक राष्ट्रहित (का कार्य) करना चाहिए। नीति के कितने भेद वर्णित हैं, इसका निरूपण –

नीतिस्त्रिधा युद्धदण्डव्यवहारैरुदाहृता।
तत्राद्या कार्यकालीना मध्यान्त्या च निरन्तरा।।५।।

युद्ध, दण्ड तथा व्यवहार रूप से नीति तीन प्रकार की कही गई है। प्रथम नीति (युद्ध) को अवसरानुकूल, मध्य (दण्ड) और अन्तिम (व्यवहार) निरन्तर प्रयोग में लाना चाहिए।

(वृ०) तत्रतावद्यथोद्देशनिर्देशेन युद्धनीतिवर्णनावसरेसन्ध्यादिगुणानामुपयोगित्वात्स्वरूपमुच्यते –

विषय के सङ्केत से युद्धनीति के वर्णन के अवसर पर सन्धि आदि गुणों की उपयोगिता होने से उनके स्वरूप का कथन किया जाता है –

सन्धिर्व्यवस्था वैरं च विग्रहः शत्रुसन्मुख-।
गमनं यानमाख्यातमुपेक्षणमथासनम् ।।६।।

(राज्यों में परस्पर) व्यवस्था सन्धि, शत्रुता रखना विग्रह, शत्रु के सामने गमन यान, शत्रु की उपेक्षा कर अपने स्थान में रहना आसन है।

द्विधा कृत्वा बलं स्वीयं स्थाप्यं तद्द्वैधमुच्यते।
बलिष्ठस्यान्यभूपस्याश्रयणं संश्रयः स्मृतः।।७।।

अपनी सेना का दो भागकर स्थापित करना द्वैध कहा जाता है, (शत्रु के भय से) अन्य शक्तिशाली राजा का आश्रय संश्रय कहा गया है।

इत्येते षड्गुणा नित्यं चिन्तनीया[१] महीभुजा।
कालं वीक्ष्य प्रयोक्तव्या यथास्थानं यथाविधि।।८।।

इन छः गुणों (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और संश्रय) का राजा को सदैव चिन्तन करना चाहिए। अवसर देखकर, स्थान एवं विधि के अनुरूप इसका प्रयोग करना चाहिए।

(वृ०) पङ्क्तिचिन्निबन्धनेन परस्परोपकारनियमबन्धव्यवस्था सन्धिः। स द्विविधः सत्यसन्धिः मायासन्धिश्च।

---

१. चिन्तया भ १, चिन्तनाया भ २, चिन्तनया प २।।

कुछ शर्तों के साथ परस्पर उपकार के नियमों की व्यवस्था करना सन्धि है। सन्धि दो प्रकार की है – सत्यसन्धि और माया सन्धि।

यदुक्तम् – जैसा कि कहा गया है –

तत्रैकः सत्यसन्धिः स्याद्यथोक्तं नान्यथा भवेत्।
मायासन्धिर्द्वितीयस्तु मायया यः प्रतन्यते॥१॥

उनमें प्रथम सत्यसन्धि में कथन के अनुरूप व्यवहार होता है, इससे भिन्न नहीं और द्वितीय माया सन्धि में माया का विस्तार होता है। दूसरे शब्दों में सत्यसन्धि जिस रूप में की जाती है उसी रूप में उसका पालन होता है। द्वितीय माया सन्धि प्रपञ्च रूप है।

स्वार्थं मित्रार्थं वा युद्धाद्यपकाराचरणं विग्रहः।२।

अपने लिए अथवा मित्र के लिए युद्ध आदि अपकार करना विग्रह है।

एकाकिनः समित्रस्य वा शत्रुं प्रति साधनार्थगमनं यानम्।३।

शत्रु के दमन हेतु अकेले अथवा मित्र सहित गमन यान है।

दीनबलतया मित्रानुरोधेन वोपेक्षासनम्।४।

निर्बल होने अथवा मित्र के अनुरोध से (शत्रु की) उपेक्षा कर (अपने स्थान पर रहना) आसन है।

शत्रुरोधार्थं सेनानीः कतिपय बलान्वित एकतो दुर्गबहिस्तिष्ठेदन्यतो राजापि कतिचित्सेनाकलितो दुर्गे तिष्ठेत् इति स्वबलस्य द्विधाकरणं द्वैधम्।५।

शत्रु को रोकने के लिए कुछ सेना सहित सेनापति एक ओर दुर्ग के बाहर स्थित रहे, दूसरी ओर राजा भी कुछ सेना के साथ दुर्ग में रहे इस प्रकार अपनी सेना को दो हिस्से में विभाजित करना द्वैध है।

शत्रुसङ्कटे सहायेच्छया साम्प्रतिकायतिकदुःखनिवृत्यर्थं बल-वत्तरान्यभूपाश्रयणं संश्रयः।६।

शत्रु से सङ्कट देख दुःख के निवारण हेतु सहायता प्राप्त करने की इच्छा से अधिक शक्तिशाली राजा का आश्रय संश्रय है।

एते गुणा यथावसरं यथास्थानं प्रयोगार्हाः, तदेव दर्शयति –

उपरोक्त छः गुण अवसरानुकूल और उचितस्थान पर प्रयोग करने के योग्य हैं। उसी का निरूपण किया जाता है –

आत्मनश्चेन्नृपः पश्येदेष्यद्भाविफलं शुभम्।
विसह्याप्यल्पहानिं वै सन्धिं कुर्याद्द्रुतं तदा।।९।।

यदि राजा भविष्य में अपना शुभ परिणाम देखे तो किञ्चित् हानि सहकर भी (शत्रु के साथ) शीघ्रता से सन्धि करनी चाहिये।

बलोपचितमात्मानं तुष्टामात्यादिसंयुतम्।
यदा जानाति भूपालस्तदा कुर्याद्धि विग्रहम्।।१०।।

यदि राजा स्वयं को बढ़ी हुई सैन्य शक्तिवाला, सन्तुष्ट अमात्य आदि (अधिकारियों) से सम्पन्न समझता हो तब शत्रु से विग्रह – शत्रुता या युद्ध करना चाहिये।

विपक्षपक्षदलनोत्साहभृत्सूर्जितं बलम्।
पुष्टं प्रकृष्टं जानीयादरिं यायात्तदा नृपः।।११।।

यदि राजा सेना को शत्रुपक्ष का मर्दन करने के उत्साह से पूर्ण, तेजस्वी, शक्तिशाली और उत्तम समझे तब शत्रु की ओर गमन करना चाहिये।

पूर्वार्जिता यदा शक्तिर्बलहीना प्रजायते।
सामदामभिदोद्युक्तस्तदासीत् प्रयत्नतः।।१२।।

पूर्व की लड़ाई से यदि सेना बलहीन हो गई हो तब राजा साम, दाम, भेद आदि युक्तियों से प्रयत्न करता हुआ स्थिर रहे।

रिपुं बलिष्ठं दुर्धर्षं यदा मन्येत भूधनः।
तदा बलं द्विधा कृता दुर्गे तिष्ठेत्समाहितः।।१३।।

जब राजा शत्रु को अतिशय शक्तिशाली और वश में न आने वाला जाने तब सेना को दो हिस्सों में विभाजित कर दुर्ग में सावधान होकर रहे।

आत्मानं यदि दुर्गोऽपि रक्षितुं न क्षमो भवेत्।
तदा बलिष्ठराजानं धर्मिष्ठं संश्रयेद् द्रुतम्।।१४।।

यदि राजा अपने दुर्ग की भी रक्षा करने में समर्थ न हो तो शीघ्रता से शक्तिशाली तथा अत्यन्त पुण्यात्मा राजा का आश्रय ले।

तत्रापि यदि शङ्का स्यात्सोऽपि त्याज्यो ध्रुवं तदा।
निःशङ्कः समरे स्थित्वा युद्धमेव समाचरेत्।।१५।।

यदि वहाँ (शक्तिशाली तथा अत्यन्त पुण्यात्मा राजा के आश्रय से) भी शङ्का हो तो निश्चित रूप से उस आश्रय का भी त्याग करना चाहिए और निःशङ्क हो रण में रहकर युद्ध ही करना चाहिए।

जये च लभ्यते लक्ष्मीर्मरणे च सुराङ्गना।
क्षणविध्वंसिनः कायश्चिन्ता का मरणे रणे॥१६॥

युद्ध में विजय प्राप्त होने पर लक्ष्मी प्राप्त होती है और मृत्यु प्राप्त होने पर स्वर्ग की अप्सरा (प्राप्त होती है)। क्षणभर में नष्ट हो जाने वाली इस काया के लिए युद्ध में मरने की क्या चिन्ता करना।

(वृ०) अथ सामाद्युपायचतुष्कस्वरूपं वर्ण्यते –

इसके बाद साम आदि चार उपायों का वर्णन किया जाता है –

कार्यसिद्धिः प्रियालापैः साम दानेन दाम च।
भिन्नताकरणं भेदो मिथो राज्याधिकारिषु॥१७॥

प्रिय वचनों से कार्य की सिद्धि करना साम, दान से (कार्य-सिद्धि) दाम, राज्य के अधिकारियों में परस्पर फूट डालकर (कार्य-सिद्धि) भेद है।

दण्डो हि वधपर्यन्तोऽपकारः प्रतिपन्थिनाम्।
स्यादुपायो नरासाध्ये कार्ये कार्योऽन्यथा न च॥१८॥

शत्रुओं का (छोटे से लेकर) वध पर्यन्त अपकार दण्ड है। इसके बाद साम, दाम और भेद से जो कार्य साध्य न हो उसी को दण्ड उपाय से करना चाहिये अन्यथा नहीं करना चाहिये।

(वृ०) सत्कारादरप्रीतिसम्भाषणादिभिः सान्त्वनं साम।
स्वर्णेभवाजिराजतादि दानेन कार्यसाधनं दाम।
द्रव्यादिलोभदर्शनेन वाग्चातुर्येण वामात्यादीनाम्
परस्परचित्तभेद-तापादनं भेदः।
धनहरणवधबन्धनादिरूपोऽपकारो दण्डः।

आदर, सत्कार तथा प्रीतियुक्त वचन आदि से सान्त्वना देना – साम।

सोना, हाथी, घोड़ा, चाँदी आदि द्रव्य के दान से कार्य का सम्पादन – दाम।

द्रव्यादि का लोभ दिखाकर अथवा वाणी के चातुर्य से अमात्य आदि को फोड़ना – भेद।

धन का हरण कर लेना, वध करना, बन्धन आदि रूप अपकार – दण्ड।

अथसामदामभेदसाध्ये युद्धं न विधेयमन्यत्र विधेयमिति दर्शयन्नाह–

इसके पश्चात् साम, दाम और भेद के साध्य होने पर युद्ध नहीं करना चाहिए, इसके अभाव में युद्ध करना चाहिए यह प्ररूपित करते हुए कथन –

साम्ना दाम्ना च भेदेन जेतुं शक्या यदारयः।
तदा युद्धं न कर्त्तव्यं भूपालेन कदाचन॥१९॥

यदि साम, दाम और भेद से शत्रुओं को जीतने में समर्थ हो तो राजा को कभी भी युद्ध नहीं करना चाहिए।

सन्दिग्धो विजयो युद्धेऽसन्दिग्धः पुरुषक्षयः।
सत्स्वन्येष्वित्युपायेषु भूपो युद्धं विवर्ज्जयेत्॥२०॥

युद्ध में विजय सन्दिग्ध है, पुरुषों का नाश निश्चय है, अन्य उपायों के होने पर राजा युद्ध का त्याग करे।

सामादित्रितयासाध्ये त्वनन्यगतिको नृपः।
युद्धे प्रवृत्तिकामः स्याद्यदा तत्कृत्यमुच्यते॥२१॥

यदि सामादि तीनों उपायों से कार्य सिद्ध न हो तो राजा की गति अन्य हो अर्थात् वह अवश्य युद्ध करे। जब युद्ध करने के लिए तत्पर हो जाये तब उसे क्या करना चाहिए, वह कार्य बताया जा रहा है –

पूर्वं सम्प्रेष्यते दूतश्चतुर्मुख उदारधीः।
विपक्षव्यूहधीभावगमागमपरीक्षणे ॥२२॥

शत्रु के सैन्यव्यूह और आने-जाने वाले मार्ग के परीक्षण हेतु पहले उदार बुद्धि वाला, चतुर्मुख दूत शत्रु के पास भेजा जाता है।

सोऽपि गत्वाऽथ मधुरैः पूर्वं वाक्यैर्निवेदयेत्।
तदसिद्धौ पुनर्ब्रूयादाम्लं तिक्तं तथा कटु॥२३॥

इसके बाद वह दूत भी जाकर पहले मधुर वचनों से निवेदन करे। उन (मधुर वचनों के) असफल होने पर वह पुनः आम्ल (कषैला), तिक्त और कटु वचन बोले।

सिद्धासिद्धौ तदाकारैर्भाषणेनेङ्गितेन च।
तदीयचित्ताभिप्रायं बलशक्तिं च सर्वथा॥२४॥

बुद्धिशक्तिं कलाशक्तिं निर्गमं गमनं तथा।
सम्यक् ज्ञात्वा त्वरावृत्य यथावत् स्वामिनं वदेत्॥२५॥

उस (शत्रु पक्ष) के मनोभावों को अभिव्यक्त करने वाली शारीरिक चेष्टा, कथन तथा हाव-भाव से उद्देश्य की सफलता अथवा विफलता, सब प्रकार से शत्रु का विचार, अभिप्राय, सैन्यशक्ति, बुद्धिबल, कलाशक्ति, गमनागमन आदि की यथास्थिति जानकर शीघ्रता से वापस लौटकर दूत को अपने स्वामी से ज्यों का त्यों निवेदन करना चाहिये।

दूतद्वारेण यज्ज्ञातं परोयोद्धुं समीहते।
तदा मन्त्रिवरैः सार्द्धं मन्त्रयित्वा भृशं नृपः॥२६॥

तथा कुर्याद्यथा न स्याद्विग्रहो बहुनाशकृत्।
केनापि नीतिमार्गेण सन्तोष्यः परभूपतिः॥२७॥

दूत द्वारा जो ज्ञात हुआ उसके बाद राजा यदि युद्ध की इच्छा करता है तब श्रेष्ठ मन्त्रियों के साथ बार-बार परामर्श कर राजा को वैसा कदम उठाना चाहिए जिससे युद्ध अत्यधिक विनाशक न हो। किसी भी नीति मार्ग से शत्रु राजा को सन्तुष्ट करने का प्रयास करना चाहिए।

यदि केनाप्युपायेन परस्त्यजति नो रणम्।
तदा वीक्ष्य मिथः साम्यं युद्धायैवोद्यतो भवेत्॥२८॥

यदि किसी भी उपाय से दूसरा राजा युद्ध (रण) का त्याग नहीं करता है तब परस्पर समानता का परीक्षण कर युद्ध के लिए ही तत्पर होना चाहिए।

बलिष्ठेन न योद्धव्यं बलिष्ठाश्रयणं विना।
तद्युद्धेन जयः प्रायः क्षयश्चानुशयः सदा॥२९॥

अपने से बलवान शत्रु से बलवान राजा के आश्रय के बिना युद्ध नहीं करना चाहिए। उस (बलवान) के साथ युद्ध करने पर प्रायः विजय नहीं (प्राप्त होती) सदा नाश तथा पश्चात्ताप (होता है)।

हीनेनापि न योद्धव्यं स्वयं गत्वा च सम्मुखम्।
तज्जये तु यशो न स्यात् किन्तु हानिः पराजये॥३०॥

अपने से हीन राजा के साथ भी स्वयं सामने जाकर युद्ध नहीं करना चाहिये। क्योंकि उसके ऊपर विजय प्राप्त करने पर यश तो नहीं मिलता किन्तु पराजय होने पर हानि होती है।

(वृ०) अत्र स्वयमिति पदेनावश्यके कार्ये सेनान्यं प्रेष्य तज्जयो विधेय इत्यावेदितम्—

यहाँ 'स्वयं' शब्द से आवश्यक कार्य के लिए सेनापति को भेजकर शत्रु पर विजय प्राप्त करनी चाहिए यह कहा गया है —

अथ कदा च यानं विधेयमित्याह —

इसके बाद कब युद्ध हेतु प्रस्थान करना चाहिये, इसका कथन —

स्वराष्ट्रदुर्गरक्षार्हप्रधानं च तथा बलम्।
संस्थाप्य च निजे राज्ये सन्तोष्यात्मीयकान् भृशम्॥३१॥

वाहनायुधवर्मादिसामग्रीं संविधाय च।
देवं गुरुं च सम्पूज्य शान्तिकर्मपुरस्सरम्।।३२।।

सुमुहूर्ते सुशकुने मार्गादौ माससप्तके।
यात्रां कुर्वीत राजेन्द्रो वीक्ष्य कालबलाबलम्।।३३।।

राजा अपने राष्ट्र एवं दुर्ग की सुरक्षा में समर्थ सेनापति तथा सेना स्थापित कर, अपने राज्य में अपने लोगों को अत्यधिक सन्तुष्ट कर, वाहन, आयुध, कवच आदि सामग्री को सज्जित कर और (शान्ति कर्म सहित) देव, गुरु की पूजा कर, उत्तम मुहूर्त और उत्तम शकुन देखकर मार्गशीर्ष मास से लेकर (अगले) सात मासों में समय और सबल तथा निर्बल पक्ष का परीक्षण कर (युद्ध के लिए) प्रस्थान करे।

(वृ०) अत्र मार्गशीर्षादिमाससप्तके युद्धप्रस्थानकाल इति दर्शनेन वर्ज्य-चतुर्मासेषु युद्धनिषेधः सूचितः।

मार्गशीर्ष आदि सात महीनों को युद्ध हेतु प्रस्थान का काल बताकर शेष चार मासों में युद्ध का निषेध सूचित किया गया है।

मुहूर्तशकुनादिविचारस्तु निमित्तशास्त्रात् ज्ञेयः इति।

मुहूर्त शकुनादि का विचार निमित्तशास्त्र से ज्ञात कर लेना चाहिए।

मन्त्रिसामन्तसन्मित्रनैमित्तिकभिषग्वर ।
कोषाध्यक्षादिसंयुक्तश्चतुरङ्गचमूवृतः ।।३४।।

वेषान्तरधरैश्चारैराज्ञातश्च पदे पदे।
गच्छेत्समाहितो मार्गे शोधिते चाग्रगामिभिः।।३५।।

युद्ध हेतु प्रस्थान के समय मन्त्री, सामन्त, सन्मित्र, नैमित्तिक, श्रेष्ठ वैद्य, कोषाध्यक्ष आदि सहित चतुरङ्गिणी सेना से घिरा हुआ, परिवर्तित वेष धारण करने वाले गुप्तचरों द्वारा आगे जाकर मार्ग का शोधन कर कदम-कदम की सूचना प्रदान किये जाने पर आश्वस्त होकर राजा आगे बढ़े।

गतप्रत्यागतभृत्ये गूढभक्तिपरायणे।
मित्रे च न हि विश्वासः कार्यो भूपेन सर्वदा।।३६।।

अत्यधिक भक्तिपरायण, आने-जाने वाले नौकर तथा मित्र पर राजा को सदा विश्वास नहीं करना चाहिए।

सर्वतो भयसत्वे च दण्डव्यूहेन पार्थिवः।
पृष्ठतो हि भयप्राप्तावनोव्यूहेन गच्छति।।३७।।

यदि राजा को शत्रु से चारों दिशाओं से भय हो तो वह सेना को दण्डव्यूह के आकार में लेकर चले, यदि पीछे से भय हो तो सेना का शकटाकार व्यूह बनाकर आगे बढ़े।

ताक्ष्र्यशूकरव्यूहाभ्यां पार्श्वतो भीतिवान् व्रजेत्।
मुखे पश्चाद्भये जाते मकरव्यूहसाधनः।।३८।।

सूचीव्यूहेन भूभर्ता संव्रजेदग्रतो भये।
यतो हि भयशङ्कास्याद्बलं विस्तारयेत्ततः।।३९।।

पद्मव्यूहे निवासे हि सदा तिष्ठेत्स्वयं नृपः।
सेनापतिबलाध्यक्षैः रक्षा कार्या समन्ततः।।४०।।

यदि राजा को शत्रु से दोनों पार्श्व से भय हो तो उसे सेना का ताक्ष्र्य और शूकर व्यूह बनाकर आगे बढ़ना चाहिए। आगे और पीछे से भय उत्पन्न होने पर सेना का मकर व्यूह बनाकर आगे बढ़ना चाहिए। आगे से भय होने पर सेना का शूची व्यूह बनाकर राजा को आगे बढ़ना चाहिए। जहाँ से विशेष भय हो वहाँ सेना को दोनों ओर फैला देना चाहिए। सेना का शिविर लगाना हो तो व्यूह रचना पद्म आकार में करनी चाहिए। राजा व्यूह के मध्य में रहे और सेनापतियों द्वारा चारों ओर से उसकी रक्षा की जानी चाहिए।

(वृ०) मुखे बलाध्यक्षो मध्ये भूपः पृष्ठतः सेनापतिः उभयपार्श्वतश्चेभास्ततो हयास्ततः पदातयश्चेत्येवं दण्डाकाररचनात्मकः सर्वत्र समविस्तारो दण्डव्यूहः।

मुख अर्थात् अग्रभाग में सेनाध्यक्ष, मध्य में राजा, पिछले भाग में सेनापति, दोनों पार्श्वों में हाथी, उसके बाद घोड़े, पुनः पैदल सैनिक – इस प्रकार दण्ड के आकार में सभी स्थानों पर समान विस्तार से युक्त संरचना दण्डव्यूह है।

सम्मुखाग्रे सूक्ष्मः पश्चात् पृथुलः शकटाकारोऽनोव्यूहः।

आगे कम और पीछे विस्तीर्ण आकार वाली सेना की संरचना अनोव्यूह है।

तद्विपरीतो मकरव्यूहः।

इस (अनोव्यूह) के विपरीत अर्थात् आगे विस्तीर्ण और पीछे सङ्कीर्ण आकार वाली सेना की संरचना मकरव्यूह है।

मुक्तामालेव संहततयावस्थापनं गमनं वा सूचीव्यूहः।

सेना को मोतियों की माला की तरह जुड़ी हुई स्थिति में स्थापित करना अथवा गमन करना सूचीव्यूह है।

मध्ये स्थितस्य नृपतेः परितो वलयाकारेण पद्मबलस्थापनं पद्मव्यूहः।

मध्य में स्थित राजा के चारों ओर वलय आकार में (दो-दो पङ्क्तियों में) स्थित सेना की स्थापना को पद्मव्यूह कहते हैं।

एवं सङ्गच्छतस्तस्यानवच्छिन्नप्रयाणतः।
सीमान्तमुपसम्पद्य स्कन्धावारः प्रजायते।।४१।।

इस प्रकार निर्बाध गति से प्रयाण करते हुए सीमान्त में पहुँचकर स्कन्धावार का संयोजन करे।

(वृ०) कुत्र स्कन्धावारो विधेय इत्याह –

सेना का शिविर कहाँ लगाना चाहिए, इसका कथन –

जलाशयाः प्रभूताश्च तृणधान्येन्धनानि च।
सुलभान्युच्चभूमिश्च तत्र सेनां निवेशयेत्।।४२।।

जहाँ पर्याप्त जलाशय, घास, धान्य, इन्धन और उच्च स्थान सुलभ हो वहाँ सेना शिविर बनाये।

(वृ०) ततः किंकार्यमित्याह –

सैन्य शिविर स्थापित करने के बाद क्या करना चाहिये, इसका कथन –

प्रतीपो न समायातोऽभिमुखं चेत्तदा चरः।
प्रेषणीयः पुनस्तस्याभिप्रायं ज्ञातुमत्र वै।।४३।।

यदि शत्रु सम्मुख नहीं आया हो तब उस (शत्रु) का अभिप्राय जानने के लिए गुप्तचर प्रेषित करना चाहिए।

ज्ञायते युद्धसज्जः स चेत्तर्हि रणभूमिका।
शोधनीया यथा सेनागतिरस्खलिता भवेत्।।४४।।

यदि वह (शत्रु) युद्ध के लिए तत्पर दिखाई पड़े तब युद्धभूमि की गवेषणा करनी चाहिए जिससे सेना की गति निर्बाध हो।

गुल्मान्प्रधानपुरुषाधिष्ठितान्निपुणान्युधि ।
स्थाने च कृतसङ्केतानभीरून् संस्थापयेन्नृपः।।४५।।

निर्भय, आयुध (अस्त्र-शस्त्र सञ्चालन) में निपुण, उत्तम पुरुषों से अधिष्ठित गुल्मों (सैन्य दल) के सङ्केत सहित योग्य स्थान पर राजा को स्थापित करे।

(वृ०) गुल्माह। नव गजाः नव रथाः सप्तविंशत्यश्वाः पञ्चचत्वारिंशत्पदातयश्चेत्संख्यान्वितरक्षकसैन्यसमुदायो गुल्मः।

गुल्म (सैन्यदल के विभाग विशेष का) कथन – नौ हाथी, नौ रथ, सत्ताइस अश्व और पैंतालिस पैदल सैनिकों की संख्या से युक्त रक्षक सैन्य समूह गुल्म है।

एतत्कृतशङ्खभेरीपटहशब्दानुसारेणैव सेनाया युद्धे स्थानं ततोऽपसरणं चबोभवीति।

भिन्न स्थानों पर स्थित गुल्मों के शङ्ख, भेरी, पटह आदि शब्दों के अनुसार ही सेना का युद्ध में गमन और वहाँ से हटना होता है।

देवान्गुरूंश्च शस्त्राणि पूजयित्वा महीधनः।
शुभं शकुनमादाय वीरान्सन्तोष्य सर्वथा।।४६।।

प्रणवतूर्यनिस्वानजयध्वन्यूर्जितस्पृहः।
सन्नद्धबद्धकवचः राजचिह्नैरलङ्कृतः।।४७।।

जयकुञ्जरमारूढः धृतशस्त्रचमूवृतः।
पश्येत्परबलं सर्वं किमाकारं व्यवस्थितम्।।४८।।

राजा को देव, गुरु तथा शस्त्रों की पूजा कर, शुभ शकुन लेकर, सब प्रकार से वीरों को सन्तुष्ट कर, प्रणव (ॐ) तथा भेरी के शब्दों की जय ध्वनि से उत्साहित, युद्धातुर, कवच धारण किये हुए, राजचिह्नों से सुशोभित, हाथी पर सवार, शस्त्र धारण किये हुए और सेना से घिरे हुए, समस्त शत्रुबल का निरीक्षण करना चाहिए कि उसकी व्यूह रचना किस प्रकार है।

आहवे सैव प्राची दिक् यतः ....।
तत एवं मुखं कुर्यात् स्वसेनायाः इलापतिः।।४९।।

संग्राम में तेज पूर्व दिशा में अतः राजा अपनी सेना का मुख इस प्रकार करे।

चक्रसागरव्यूहाद्यैर्विविधा व्यूहनिर्मितिः।
यतः परबलं भिन्द्यात् कल्पयेत्ता निजे बले।।५०।।

शत्रु सेना किस प्रकार नष्ट हो यह विचार कर चक्र, सागर आदि अनेक प्रकार की व्यूह रचना से अपनी सेना को व्यवस्थित करे।

स्वल्पान्तसंहतान्कृत्वा योधयेच्च बहून्यथा।
कामं विस्तार्य वज्रेण सूच्या वा योधयेद्भटान्।।५१।।

राजा थोड़ी सेना इकट्ठा कर अत्यधिक सेना के साथ युद्ध करे, वज्र या सूची व्यूह से योद्धाओं को अत्यधिक फैलाकर युद्ध करना चाहिए।

(वृ०) त्रिधावस्थितबलेन वज्रव्यूहेन पूर्वोक्तेन सूचिव्यूहेन वा योधयेत्।

तीन प्रकार के व्यूह में स्थित सेना द्वारा वज्रव्यूह अथवा सूचीव्यूह के द्वारा युद्ध करना चाहिए।

(वृ०) क्षेत्रविशेषे शस्त्रविशेषयुद्धमाह –

क्षेत्र-विशेष में शस्त्र-विशेष के द्वारा युद्ध करने का कथन –

खड्गकुन्तादिशस्त्रैश्च गर्तादिरहितस्थले।
नौभिर्द्विपैरनूपे तु समे च रथवाजिभिः।।५२।।

गड्ढे आदि से रहित (समतल) स्थल पर तलवार, भाला आदि शस्त्रों से, जल में नाव से, हाथियों से तथा समतल भूमि पर रथ और घोड़ों से युद्ध करे।

निकुञ्जे द्रुमसङ्कीर्णे बाणैर्युध्येत भूपतिः।
वैशाखस्थानमाश्रित्य वेध्यवेधनकोविदः।।५३।।

राजा को उपवन में और वृक्षों से घिरे स्थल में बाणों से, वैशाख मुद्रा का आश्रय लेकर लक्ष्य-वेध में निपुण योद्धाओं के द्वारा युद्ध करना चाहिए।

(वृ०) चापयुद्धे वैशाखस्थानस्वरूपं चेत्थम् –

धनुष युद्ध में वैशाखस्थान (बाण चलाने की मुद्रा-विशेष) का स्वरूप इस प्रकार है–

स्थानान्यालीढवैशाखप्रत्यालीढानि मण्डलम्।
समपादं चेति तत्र वैशाखस्थानलक्षणम्।।५४।।

आलीढ, वैशाख, प्रत्यालीढ, मण्डल और समपाद (पाँच) स्थान हैं। वैशाख स्थान का लक्षण इस प्रकार है –

पादौ कार्यौ सविस्तारौ समे हस्तौ तत्प्रमाणतः।
वैशाखस्थानके सद्यः कूटलक्ष्यस्य वेधने।।५५।।

वैशाख स्थान नामक बाण चलाने की विशेष मुद्रा में कठिन लक्ष्य शीघ्र भेदने हेतु दोनों हाथों सहित पैरों को उस लक्ष्य के प्रमाण के अनुसार फैलाना चाहिए।

शौर्याभिमानिनः शूरान् बलिष्ठान् पृतनामुखे।
योजयेद्बन्दिभिर्वीररसेनोत्साहयेद्भटान् ।।५६।।

(अपनी) वीरता पर गर्व करने वाले बलशाली वीरों को सेना के अग्रभाग में रखकर उद्भट वीरों का वीर रस से उत्साहवर्धन के लिए बन्दियों को लगाना चाहिए।

मान्त्रिकेषु च शस्त्रेषु वह्न्यादिषु महीधनः।
तन्निवृत्तिकरास्त्राणि वारुणादीनि निक्षिपेत्।।५७।।

राजा मन्त्रयुक्त और अग्नि आदि शस्त्रों के निवारक वरुण आदि अस्त्रों को प्रक्षेप करे।

हृष्टत्वं च समलीनत्वं सम्यक् तेषां परीक्षयेत्।
तथा सोपधिचेष्टांश्च विपरीतांश्च सङ्गरे।।५८।।

उनके उल्लास तथा मलिनता की सम्यक् प्रकार से परीक्षा करनी चाहिए और उनके कपट व्यवहार तथा विरुद्ध व्यवहार को युद्ध में परखना चाहिए।

नातिरूक्षैर्विषाक्तैर्न नैव कूटायु[१]धैस्तथा।
दृषन्मृदादिभिर्नैव युध्येत नाग्नितापितैः।।५९।।

अत्यन्त रुक्ष, विषसिक्त और कूट शस्त्रों से युद्ध नहीं करना चाहिए। पत्थर, मिट्टी और अग्नि से तपे हुए हथियारों से युद्ध नहीं करना चाहिए।

नीतियुद्धेन योद्धव्यं सर्वैः शस्त्रैश्च वाहनैः।
शत्रोरन्यायनिष्ठे तु कर्त्तव्यं समयोचितम्।।६०।।

सभी शस्त्रों और वाहनों से नीति युद्ध द्वारा युद्ध करना चाहिए (परन्तु) शत्रु यदि अन्याय का आश्रय ले तब समयोचित व्यवहार करना चाहिए।

न हन्यात्तापसं विप्रं त्यक्तशस्त्रं च कातरम्।
नश्यन्तं व्यसनप्राप्तं क्लीबं नग्नं कृताञ्जलिम्।।६१।।

नायुध्यमानं नो सुप्तं रोगार्तशरणागतम्।
मुखदन्ततृणं बालदीक्षेप्सुं च गृहागतम्।।६२।।

तापस, ब्राह्मण, शस्त्र का त्याग करने वाले, भयातुर, युद्धस्थल से पलायन करने वाले, दुर्व्यसनी, नपुंसक, नग्न, हाथ जोड़ने वाले, युद्ध न करने वाले, सोये हुए, रोगी, शरणागत, मुख में तृण धारण करने वाले, बालक, दीक्षार्थी और घर आये हुए का वध नहीं करना चाहिए।

अयुध्यमानं शत्रुं चावेष्ट्यासीतास्यधान्यजले।
इन्धनादीनि सर्वाणि दूषयेत्पीडयेज्जनम्।।६३।।

यदि शत्रु युद्ध नहीं कर रहा हो तो उसे घेरकर उसका धान्य, जल, ईंधन आदि सब दूषित करना चाहिए और लोगों को पीड़ित करना चाहिए।

---

१. ०यूधै० भ १, भ २।।

भिन्द्यात् प्राकारपरिखादुर्गादींश्च तडागकम्।
शक्तिहीनविधायैनं घातयेत्सहचारिणः।।६४।।

शत्रु के द्वारा निर्मित कोट, खाइयों, दुर्ग तथा तालाब का विध्वंस करना चाहिए। शत्रु को शक्तिहीन कर उसके सहयोगियों को मार डालना चाहिए।

भेदयेन्निखिलान्तस्य सचिवादींश्च वंशजान्।
सुमुहूर्ते च भूपालः स्वाज्ञां तत्र प्रवर्तयेत्।।६५।।

शत्रु पक्ष के सभी मन्त्री आदि के वंशजों को फोड़कर अर्थात् अपने पक्ष में मिलाकर शुभ मुहूर्त में राजा अपनी आज्ञा प्रवर्तित करे।

देवान् गुरूंश्च संपूज्य दानं दत्वा बहुवसु।
ख्यापयेदभयं तेषां ये पूर्वनृपसेवकाः।।६६।।

देवों व गुरुओं की सम्यक् पूजा कर, प्रचुर धन दान देकर, पूर्व राजा के सेवकों की सुरक्षा की घोषणा करनी चाहिये।

विदित्वैषां समासेन सर्वेषां तु चिकीर्षितम्।
तद्वंश्यं स्थापयेत्तत्र चेदाज्ञाभक्तितत्परः।।६७।।

पारितोषिकदानेन तं सन्तोष्य भुवःपतिः।
स्वशासनं स्थिरीकुर्यान्नियमादिप्रबन्धतः।।६८।।

सभी इच्छुक व्यक्तियों का सामूहिक रूप से विचार जानकर पूर्व राजा के आज्ञा पालन करने वाले और स्वामिभक्त वंशज को राज्य पर स्थापित करना चाहिये। विजयी राजा नियुक्त राजा को पुरस्कार के द्वारा सन्तुष्ट कर नियम आदि के प्रबन्ध द्वारा अपनी सत्ता को सुदृढ़ करे।

(वृ०) अथ जये जाते पौरुषप्राप्तधनं स्वामिना योधेभ्यः किं देयमित्याह –

इसके अनन्तर विजय प्राप्त होने पर पराक्रम से प्राप्त धन को राजा द्वारा योद्धाओं को किस प्रकार देना चाहिये, इसका कथन –

जये जाते नृपो दद्याद्योद्धृभ्यो नितरां धनम्।
धान्याजागोमहिष्यादि यो यत्प्राप्नोति तस्य तत्।।६९।।

स्यन्दनाश्वगजामोघरत्नकुप्यपशुस्त्रियः।
भटैर्राज्ञेर्पणीयाश्च रणे प्राप्ताः स्वपौरुषात्।।७०।।

एवं पूर्वोक्तविधिना जयं प्राप्य सुविस्तृत-।
यशःसम्पूर्णभूचक्रः राजेन्द्रो भूविश्रुतः।।७१।।

जयवादित्रनिर्घोषबधिरी[१]कृतदिग्मुखः ।
मङ्गलाचारनिरतो हर्षेण स्वपुरीं[२] व्रजेत्।।७२।।
इत्येवं वर्णिता चात्र युद्धनीतिः समासतः।
विशेषस्तु महाशास्त्रात् ज्ञेयः सद्बुद्धिसागरैः।।७३।।

विजय प्राप्त होने पर राजा सैनिकों को अत्यधिक मात्रा में धन प्रदान करे। इसके अतिरिक्त युद्ध के समय अन्न, बकरी, गाय, भैंस आदि जिसको प्राप्त हो उसको मिले। योद्धाओं के द्वारा युद्ध में अपने पराक्रम से प्राप्त रथ, घोड़े, हाथी, बहुमूल्य रत्न, बर्तन, पशु और स्त्रियों को राजा को अर्पित कर देना चाहिये। इस प्रकार ऊपर वर्णित विधि से विजय प्राप्त कर अत्यन्त विशाल कीर्ति से सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल को पूर्ण करने वाला राजा पृथ्वी पर प्रसिद्ध हो जाता है। विजय वाद्य की ध्वनि से सभी दिशाओं के मुख को बधिर बनाने वाले, मङ्गलाचार में संलग्न हर्षपूर्वक अपनी नगरी की ओर प्रस्थान करे। इस प्रकार युद्धनीति का संक्षेप में वर्णन किया गया सद्बुद्धि के सागर अर्थात् बुद्धिमान जनों को विशेष रूप से महा शास्त्र से जानना चाहिये।

।। इति युद्धनीतिप्रकरणम्।।

—o—

---

१. वधरी भ १, बधरी भ २, प २।।
२. पुरा भ १, भ २, प ३।।

द्वितीय अधिकार

२.२

दण्डनीतिप्रकरणम्

अथ क्रमप्राप्तदण्डनीतिप्रकरणमारभ्यते –

इसके बाद क्रमागत दण्डनीतिप्रकरण का आरम्भ किया जाता है –

प्रणम्य परमा[१] भक्त्या सम्भवं श्रुतसम्भवम्।
प्रजानामुपकाराय दण्डनीतिः प्रचक्ष्यते।।१।।

आगम शास्त्र के प्रणेता (तीसरे तीर्थङ्कर) सम्भवनाथ की परम भक्ति पूर्वक वन्दना कर प्रजा के उपकार के लिए दण्डनीति का कथन किया जाता है।

तत्र जैनागमे दण्डनीतयः सप्तधा स्मृताः।
ताः स्युर्हाकारमाकारधिक्काराः परिभाषणम्।।२।।

मण्डले बन्धनं काराक्षेपणं चाङ्गखण्डनम्।
अष्टमो द्रव्यदण्डोऽपि स्वीकृतो नीतिकोविदैः।।३।।

परिभाषणमाक्षेपान् मागा इत्यादि शंसनम्।
सरोध इङ्गिते क्षेत्रे मण्डले बन्ध उच्यते।।४।।

जैन आगम (स्थानाङ्गसूत्र) में दण्डनीति सात प्रकार की कही गयी है, वे (इस प्रकार) हैं – १. हक्कार, २. मक्कार, ३. धिक्कार, ४. निन्दा, ५. मण्डल बन्धन, ६. कारागार में रखना और ७. अङ्ग-भङ्ग। (इसके अतिरिक्त) नीतिवेत्ताओं द्वार आठवाँ अर्थ दण्ड भी स्वीकार किया गया है। निन्दा और झिड़की सहित 'मत जाओ' इत्यादि आदेश और नियत क्षेत्र (मण्डल) में (अपराधकर्त्ता को) रोकना मण्डल बन्ध कहा जाता है।

(वृ०) यदुक्तं स्थानाङ्गसूत्रे –

सत्तविहा दंडनीई पणत्ता तं जहा हक्कारे १ मक्कारे २ धिक्कारे ३ परिभासे

---

१. परया भ १, भ २, प १, प २।।

४ मंडलीबन्धे ५ कारागारे ६ छविच्छेदे य ७ अत्रच्छविच्छेद इति वधाद्युपलक्षणं।

जैसा कि स्थानाङ्गसूत्र में प्ररूपित है – दण्डनीति सात प्रकार की कही गयी है। वे (इस प्रकार) हैं – १. हक्कार, २. मक्कार, ३. धिक्कार, ४. निन्दा, ५. मण्डल बन्धन, ६. कारागार और ७. अङ्ग-भङ्ग। छविच्छेद से अभिप्राय वधादि है।

एताः सत्त्वेऽभियोगस्यासत्त्वे चापि महीभुजा।
प्रयुज्यन्ते[1] प्रजास्थित्यै यथादोषं दुरात्मसु।।५।।

ये (दण्डनीतियाँ आरोपी के विरुद्ध) अभियोग (दोषारोपण) होने पर और न होने पर भी राजा द्वारा प्रजा की रक्षा हेतु दुष्टों के अपराध के अनुसार प्रयोग की जाती हैं।

(वृ०) अतएव प्रत्यर्थ्यभियोगोत्थाः एत्ता वक्ष्यमाणव्यवहाराधिकारे यथावसरं वर्णनीया भविष्यन्त्यत्र तु तदभावेऽपि याः स्वयं नृपेण प्रजादुःखापकरणार्थं प्रयुज्यन्ते ता एवोपक्रम्यन्ते।

इसलिए वादियों द्वारा आनीत वाद के समाधान हेतु प्रयोग में लायी जाने वाली दण्डनीति आगे वर्णन किये जाने वाले व्यवहार अधिकार में अवसरानुकूल वर्णित की जाएगी। यहाँ तो (वादियों द्वारा वाद के) न प्रस्तुत किये जाने पर भी प्रजा के दुःख को दूर करने हेतु स्वयं राजा द्वारा जिन दण्डनीतियों का प्रयोग किया जाता है उनका ही वर्णन किया जाता है –

तत्राद्यं दण्डनीतीनां त्रिकं प्राक् प्रथमार्हतः।
युग्मिनां कालदोषेण कलौ कुलकरैः कृतम्।।६।।

उन (सात दण्डनीतियों) में से पहली तीन (हक्कार, मक्कार, धिक्कार) प्रथम तीर्थङ्कर (ऋषभदेव) के पूर्व युगलियों के (उत्तम) काल के दोष की गणना में कुलकरों द्वारा अपनाई जाती थीं।

पश्चात् प्रवृत्ता अपरा भरतेन कृता अपि।
ततो निश्चीयते दण्डनीतिः कालानुसारिणी।।७।।

उसके पश्चात् अपनाई गई (चक्रवर्ती) भरत द्वारा प्रवर्तित अन्य (चार से) भी समयानुसार दण्डनीति निश्चित की जाती है।

(वृ०) अत एव द्रव्यदण्ड, ज्ञातिदण्ड, ताडनादि दण्डोऽपि सङ्गृह्यते। यथा दोषं यथा कालं प्रयुक्ताः सर्वाअपि साध्यसिद्धिदा एवेति।

---

१. प्रयुज्यते भ १, भ २, प १, प २।।

इसलिए द्रव्यदण्ड, ज्ञातिदण्ड एवं ताडनादि दण्डों का भी यहाँ ग्रहण करना चाहिए। समय एवं दोष के अनुरूप दण्ड का प्रयोग करना सदा सिद्धिदायक होता है।

(वृ०) यदुक्तम् – जैसा कि कहा गया है –

यथापराधं देशं च कालं बलमथापि वा।
व्ययं कर्म च वित्तं च दण्डं दण्ड्येषु पातयेत्॥८॥

अपराध, देश, काल, बल अथवा व्यय, कर्म और वित्त (के अनुसार) अपराधियों को दण्ड देना चाहिए।

तत्र द्विजे मेति दण्डः हेति क्षत्रियवैश्ययोः।
धिक्कारः शूद्रमात्रेषु परे वर्णचतुष्टये॥९॥

उन दण्डों में से ब्राह्मण पर 'मा' दण्ड, क्षत्रिय और वैश्य पर 'हा' (दण्ड) और शूद्र वर्ग पर 'धिक्कार' और अन्य (चार दण्ड) चारों वर्णों पर लागू होते हैं।

(वृ०) अत्रैव विशेषमाह –

जाते महापराधेऽपि नारीविप्रतपस्विनाम्।
नाङ्गच्छेदो वधो नैव कुर्यात्तेषां प्रवासनम्॥१०॥

गम्भीर या बड़ा अपराध करने पर भी स्त्री, ब्राह्मण और तपस्वियों का न तो अङ्गच्छेद और न ही वध करना चाहिए वरन उनका (देश से) निर्वासन करना चाहिए।

वैश्यश्चेत्मांसविक्रेता कूटहेम्नश्च विक्रयी।
प्रागङ्गहीनं तं कृत्वा दण्डयेद् द्रुतमेव च॥११॥

वैश्य यदि मांस विक्रेता और खोटा या नकली सोना बेचने वाला हो तो उसके प्रमुख अङ्ग का छेदन कर उसे शीघ्र दण्डित करना चाहिए।

मनुष्यप्राणहर्ता च चौरवद्दण्डभाग् भवेत्।
ततोऽर्द्धं गोगजोष्ट्रादिबृहज्जन्तुविनाशके॥१२॥

मनुष्य का वध करने वाले को चोर के समान दण्ड देना चाहिए, विशाल प्राणियों गाय, हाथी, उष्ट्र आदि को मारने वाले को उसका आधा दण्ड देना चाहिए।

क्षुद्रजीवविनाशे तु द्विशतं दम उच्यते।
पञ्चाशद्दण्डभागी स्यान्मृगपक्षिविनाशकः॥१३॥

क्षुद्र जीवों के विनाश पर दो सौ द्रम्म (का दण्ड) निर्धारित है। वन्य पशुओं और पक्षियों का विनाश करने वाला पचास मुद्रा (दण्ड) का भागी हो।

पञ्चमाषैस्तु दण्ड्यः स्यादजाविखरघातकः।
माषद्वयेन दण्ड्यश्च श्वशूकरविनाशकृत्।।१४।।

बकरा, भेड़ और गधे को मारने वाला पाँच माशा (माष) सिक्कों के दण्ड का पात्र है, कुत्ता एवं शूकर को मारने वाले को दो माशा से दण्डित करना चाहिए।

अभक्ष्यभक्षके विप्रे दण्ड उत्तमसाहसम्।
क्षत्रिये मध्यमं वैश्येऽन्त्यं शूद्रे त्वर्द्धकं भवेत्।।१५।।

अभक्ष्य पदार्थ का भक्षण करने वाले ब्राह्मण को उत्तम साहस (अपराध करने) का दण्ड, क्षत्रिय को मध्यम (अपराध करने का दण्ड), वैश्य को अन्त्य (अपराध करने का दण्ड) और शूद्र को (वैश्य के दण्ड का) आधा दण्ड देना चाहिए।

नृपस्याक्रोशकर्त्तारं तस्यैवानिष्टभाषिणम्।
भेत्तारं नृपमन्त्रस्य राजकोषापहारकम्।।१६।।
भूपप्रतीपतापन्नं जिह्वां छित्वा प्रवासयेत्।
उत्तमेन च दण्ड्यः स्याद्राजाज्ञालेखकः स्वयम्।।१७।।

राजा की निन्दा करने वाले, उसका अमङ्गल भाषण करने वाले, राजा की मन्त्रणा (के रहस्य) को उजागर करने वाले, राजकोष की चोरी करने वाले और राजा से शत्रुता करने वाले की जिह्वा काटकर (देश से) निर्वासित करना चाहिये। राजाज्ञा के लेखक (राजा के कूट हस्ताक्षर द्वारा) को उत्तम (अपराध के दण्ड) से दण्डित करना चाहिए।

स्वस्त्रीकलङ्कभीत्या च राजदण्डभयेन च।
शतपञ्चकदण्ड्यः स्याज्जारश्चौर इति ब्रुवन्।।१८।।

अपनी पत्नी के कलङ्कित होने और राजा द्वारा दण्ड के भय से (घर में) जार (उपपति) के होने पर (उसे) चोर बताने वाले को पाँच सौ मुद्राओं से दण्डित करना चाहिए।

उपजीव्यधनं लुञ्चन् दण्ड्यश्चाष्टगुणैस्ततः।
उत्तमेन भवेद्दण्ड्यश्चौरं जारं च मुञ्चतः।।१९।।

भृत्यादि का धन हरण करने वाले को (धन का) आठ गुना दण्ड देना चाहिए। चोर और जार को मुक्त करने वाले को उत्तम (अपराध का) दण्ड होता है।

मृताङ्गोत्सृष्ट[1]विक्रेता गुरोस्ताडयिता[2] नरः।
भूपयानासनस्थायी दण्ड्यः स्यादुत्तमेन च।।२०।।

मृतक के शरीर पर से उठाये गये (वस्त्रादि) के विक्रेता और गुरु को मारने वाले पुरुष और राजा के वाहन और आसन पर बैठने वाले को उत्तम (अपराध) से दण्डित करना चाहिए।

नेत्रभेदनकर्त्ता यो दण्ड्यः पञ्चशतेन सः।
जीवतो द्विजरूपेण शूद्रस्याष्टशतो [3]द्रम्मः।।२१।।

(किसी की) आँख फोड़ने वाला व्यक्ति पाँच सौ (मुद्राओं से) और ब्राह्मण वेश द्वारा जीविकार्जन करने वाला शूद्र आठ सौ द्रम्म से दण्डनीय है।

पराजितोऽपि यो मन्ये जेतास्मीत्यभिमानतः।
राजद्वारे तमाकृष्य दण्डयेद् द्विगुणेन च।।२२।।

पराजित होने पर भी जो (मिथ्या) अभिमान से स्वयं को विजयी मानता है उसे राजद्वार पर ले आकर दोगुना दण्ड देना चाहिए।

(वृ०) अन्यायविहितदण्डप्राप्तधनगतिमाह –

अन्यायपूर्वक दण्ड से प्राप्त धन का क्या करना चाहिए, इसका निरूपण –

योऽन्यायेन कृतो दण्डः भूपालेन कथञ्चन।
कृत्वा त्रिंशद्गुणं तं च धर्माय[4] परिकल्पयेत्।।२३।।

राजा द्वारा अन्याय पूर्वक किये गये दण्ड से जो कुछ (धन प्राप्त हो) उसका तीस गुना कर धर्म (-कार्य) के लिये निश्चित करना चाहिये।

(वृ०) दण्डभेदमाह –

दण्ड के भेदों का कथन –

उदरमुपस्थं जिह्वा हस्तौ कर्णौ धनं च देहश्च।
पादौ नासा चक्षुर्दण्डस्थानानि दशधैव।।२४।।

पेट, उपस्थ (शरीर का मध्य भाग, पेड़ू, नितम्ब, स्त्री या पुरुष की जननेन्द्रिय), जिह्वा, हाथ, कान, धन, शरीर, पैर, नाक और आँख दस प्रकार के दण्ड के स्थान हैं।

---

१. मृतागोत्सृष्ट भ १, भ २, प १, प २।।
२. ताडविता प २।।
३. द्रमः भ १, भ २, प १, प २।।
४. धर्म्माय भ १।।

(वृ०) यद्देहावयवजनितोऽपराधस्तत्रैव निग्रहः करणीयः।

शरीर के जिस अङ्ग से अपराध किया गया हो उसी अङ्ग को दण्डित करना चाहिए।

योऽसमर्थो धनं दातुं कारागारे निधाय तम्।
कारयित्वा स्वकं कर्म धनदण्डं विमोचयेत्।।२५।।

जो धन देने में असमर्थ है उसे कारागार में रखकर अपना (राजकीय) कार्य कराकर धनदण्ड छोड़ देना चाहिए।

उत्तमो दण्ड इत्युक्तः सर्वस्वहरणं वधः।
पुरान्निर्वासनं चाङ्गछेदनं चाङ्कनं तथा।।२६।।

उत्तम दण्ड इस प्रकार कहे गये हैं — सर्वस्वहरण, वध, नगर से निर्वासन, अङ्गच्छेदन तथा अङ्कन (शरीर पर दाग)।

(वृ०) अथ विशेषमाह —

दण्ड के विषय में विशेष कथन —

ललाटेऽङ्कोऽ[१]भिशप्तस्य खरे चारोपणं परम्।
सुरापाने पताका स्याद्भगस्तु गुरुतल्पगे।।२७।।
[२]श्वपदाङ्कः स्तैन्यकृत्ये तथाकारानिवेशनम्।
ब्रह्महत्याकारकस्य शिरोमुण्डनमेव च।।२८।।
कारयित्वा च सर्वस्वमपहृत्य खरोपरि।
समारोप्याथ नगरात्प्रवासनमिति स्थितिः।।२९।।

निन्दक के मस्तक को चिह्नित कर बाद में गधे पर बैठाये, मदिरा सेवन करने वाले के (मस्तक पर) पताका का चिह्न, गुरुपत्नी के साथ शय्या पर सोने वाले के (मस्तक पर) योनि-चिह्न, चोरी करने पर (मस्तक पर) कुत्ते का चिह्न तथा कारागार में रखना, ब्राह्मण की हत्या करने वाले का सिर मुण्डन कराकर सर्वस्व अपहृत कर, गधे पर बैठाकर नगर से निष्कासन यह स्थिति है।

सत्यं जल्पति यो लिङ्गं नष्टप्राप्तस्य वस्तुनः।
नृपेण तस्मै तद्देयं नो चेत्तत्समदण्डभाक्।।३०।।

जो (अपनी) खोई हुई वस्तु की पहचान सत्य बताता है राजा द्वारा उसे वह (वस्तु) दे देनी चाहिए। यदि (सत्य) नहीं बताता है तो दण्ड का पात्र है।

---

१. ०भिशस्तस्य भ १, भ २, प १, प २।।
२. वयदाङ्क भ १, वपदाङ्क भ २, प १, प २।।

वृद्धं बहुश्रुतं बालं ब्राह्मणं गुर्विर्णीं गुरुम्।
मातरं पितरं चैव प्रवक्तारं तपस्विनम्।।३१।।
[१]आचार्यं पाठकं चापि गां च घ्नन्तं हि घातयेत्।
न हि स बहुदोषी स्याद्दण्डार्होऽपि च नो भवेत्।।३२।।

वृद्ध, विज्ञ पुरुष, शिशु, ब्राह्मण, गुरुपत्नी, गुरु, माता-पिता, उपदेशक, तपस्वी, आचार्य, पाठक तथा गाय का वध करने वाले का निश्चय ही वध करना चाहिये। ऐसा करने वाला वह बहुत दोषी नहीं होता और दण्ड के योग्य भी नहीं होता।

धनापहः शस्त्रपाणिः वह्निदो विषदस्तथा।
भार्यातिक्रमकारी च क्षेत्रहृद्दारहृत्तथा।।३३।।
पिशुनो रन्ध्रदर्शी च प्रोद्यतास्त्रश्च [२]गर्भापहा।
[३]घातेऽप्येषां न दण्डःस्यादेते स्युराततायिनः।।३४।।
इत्येवं दण्डनीतीनां विचारस्त्वत्र वर्णितः।
विशेषतोऽपि यथास्थानं वर्णयिष्ये यथाश्रुतम्।।३५।।

धन का हरण करने वाले, हाथ में शस्त्र लेकर (वध करने के लिए तत्पर), आग लगाने वाले, विष देने वाले, पत्नी की उपेक्षा करने वाले, खेत तथा स्त्री का हरण करने वाले, पिशुन (भेदिया या द्रोही), (शत्रु को) कमजोरी बताने वाले, अस्त्र चमकाने वाले और गर्भ नष्ट करने वाले आततायी कहे जाते हैं – इनका वध करने वाले को दण्ड नहीं देना चाहिए। इस प्रकार दण्डनीति का विचार यहाँ निरूपित किया गया। श्रुत के अनुसार विशेष रूप से इसका यथास्थान वर्णन करूँगा।

इत्याचार्य श्रीहेमचन्द्रविरचिते चौलुक्यवंशभूषणकुमारपालशुश्रूषिते लघ्वर्हन्नीतिशास्त्रे युद्धनीतिदण्डनीतिवर्णनो नाम द्वितीयोऽधिकारः।२।

यह आचार्य श्री हेमचन्द्र द्वारा विरचित चौलुक्यवंश के भूषण राजा कुमारपाल द्वारा सेवित लघु-अर्हन्नीति नामक शास्त्र में युद्धनीति- दण्डनीतिवर्णन शीर्षक द्वितीय अधिकार है।

।। इति दण्डनीतिप्रकरणम्।।

—o—

१. ०पाद्वकं भ १, ०पाठकं भ २, प २।।
२. गर्भव्हा भ १, भ २, प १, गर्भहा प २।।
३. पातेयेषां भ १, भ २, प १, प २।।

तृतीय अधिकार

३.१

व्यवहारविधिप्रकरणम्

विशदशारदसोमसमाननः कमलकोमलचारुविलोचनः।
शुचिगुणः सुतरामभिनन्दनो जयतु भक्तजनेप्सितसिद्धिदः।।१।।

स्वच्छ शरद ऋतु के चन्द्र के समान मुख वाले, कमल के समान कोमल और सुन्दर नेत्र वाले, अत्यधिक पवित्र गुण वाले, भक्तजनों को वाञ्छित सिद्धि प्रदान करने वाले (चौथे तीर्थङ्कर) अभिनन्दन की जय हो।

हेमपीठसमासीनः सभ्यमन्त्रियुतो नृपः।
व्यवहारपरामर्शं कुर्याद्विद्वज्जनैः सह।।२।।

स्वर्ण आसन पर विराजमान, सभासदों और मन्त्रियों सहित राजा द्वारा विद्वान् पुरुषों के साथ व्यवहार नीति सम्बन्धी मन्त्रणा करनी चाहिये।

(वृ०) तत्रव्यवहारो नाम एकस्मिन् वस्तुनि परस्परविरुद्धधर्मयोरेक-धर्मव्यवच्छेदेन स्वीकृततदन्यधर्मावछिन्नस्वपक्षसाधकव्यवस्थापनार्थं साधनदूषणवचनं व्यवहारः।

एक वस्तु में परस्पर विरोधी (साधक एवं बाधक) धर्मों में से एक धर्म के खण्डन तथा स्वविहित विशिष्ट गुणों द्वारा दूसरी सब वस्तुओं से पृथक् (अविच्छिन्न) अन्य स्वीकृत धर्म के पक्ष को सिद्ध करने वाले तथा बाधित करने वाले वचनों का नाम व्यवहार है।

ननु उभयधर्माधारभूतैकवस्तुनि अन्यधर्मनिरासेन तदन्यधर्मान्तरं व्यवस्थापयितुं वादिना साधनमुच्यते तत्रैव दूषणोद्भावनेन प्रतिवादिनां वादिसाधितपक्षविपक्षीभूतं स्वोक्तिसमर्थनैकहेतुभूतं वचनं कथं सङ्गच्छते मिथो व्याघातादिति।

(शङ्का) साधक तथा बाधक दोनों विरोधी धर्मों के आधारभूत एक वस्तु में अन्य (बाधक) धर्म के निराकरण से दूसरे (साधक) धर्म को व्यवस्थापित करने

के लिए वादी के द्वारा साधन का कथन किया जाता है वहाँ ही वादी के साधित पक्ष का खण्डन कर अपनी बाधक उक्तियों के समर्थन में प्रतिवादी द्वारा प्रयुक्त एकहेतुभूत वचनों की सङ्गति परस्पर विरोधी (व्याघात) होने से कैसे बैठ सकती है।

शङ्कासमाधानम्

चेन्न स्वस्वाभिप्रायानुसारेणैकस्मिन्वस्तुनि वादिप्रतिवादिनिरूपित-साधनदूषणप्रतिपादकवचनकथने विरोधाभावात्। यथा वादी स्वाभिप्रायेण साधनमभिधत्ते पश्चात् प्रतिवाद्यपि स्वाभिप्रायेण तत्रैव दूषणं प्रणिगदति न चात्रैकवस्तुनि साधनं दूषणं च तात्त्विकमस्ति किन्तु स्वाभिप्रायकल्पित-मेवेत्यलम्।

ऐसा नहीं है (अर्थात् वादी और प्रतिवादी के साधक और बाधक वचनों में परस्पर व्याघात नहीं होता है) अपने-अपने अभिप्राय के अनुसार एक वस्तु में वादी और प्रतिवादी द्वारा निरूपित (क्रमशः) साधन और दूषण के प्रतिपादक वचनों के कथन में विरोध का अभाव होने से। जैसे वादी अपने अभिप्राय से साधन का कथन करता है पश्चात् प्रतिवादी भी अपने अभिप्राय से उसी में दूषण का कथन करता है, वस्तुतः यह एक ही पदार्थ में साधन का दूषण नहीं है अपितु स्वाभिप्राय (अर्थात् वादी तथा प्रतिवादी के अभिप्राय) के अनुसार है।

व्यवहारभाष्ये तु –

अत्थी पच्चत्थीणं, हाउं एगस्स ववति बितियस्स।
एतेण उ ववहारो, अधिगारो एत्थ उ विहीए।।

एक से अर्थात् प्रत्यर्थी से हरण कर दूसरे को अर्थात् अर्थी में वपन कर देना व्यवहार है। इसमें हरण और वपन दोनों क्रियाएं होती हैं इसलिए इसे व्यवहार कहा जाता है। (व्यवहार विधि पूर्वक भी होता है और अविधिपूर्वक भी)।

स द्विविधः लोकोत्तरो लौकिकश्च। तत्राद्यो व्यवहारसूत्रादिषु वर्णितत्वादत्र नोक्तः

वह व्यवहार लोकोत्तर और लौकिक दो प्रकार का होता है। व्यवहारसूत्र आदि ग्रन्थों में प्रथम अर्थात् लोकोत्तर व्यवहार का वर्णन होने से (उसका यहाँ वर्णन) नहीं किया गया है।

इह राजकर्मणि लौकिकस्यैवाधिकारः, स तु द्विविधः।

(इस स्थल में वर्ण्यविषय) राजकर्म होने से लौकिक व्यवहार का अधिकार है। लौकिक व्यवहार दो प्रकार का है।

व्यवहारो द्विधा प्रोक्तः सन्देहतत्त्वयोगतः।
आद्यः सत्सङ्गतो ज्ञेयो लोप्तृदर्शनतः परः॥३॥

व्यवहार दो प्रकार का कहा गया है – सन्देहात्मक और तत्त्वात्मक। प्रथम (सन्देहात्मक) व्यवहार सत्सङ्गति से ज्ञेय है और दूसरा तत्त्वात्मक व्यवहार चिह्न से ज्ञेय है।

(वृ०) लोप्त्रं लिङ्गं तत्र सन्देहाभियोगः सत्सङ्गाद्भवति तत्त्वाभियोगस्तु चिह्नदर्शनात् स च विधिनिषेधाभ्यां द्विविधः यथा मदीयक्षेत्रमपहरति। तथायं मत्तो रजतान् गृहीत्वा न ददातीति प्रतिषेधात्मकः।

चुराई हुई वस्तु का चिह्न होने पर सन्देहात्मक अभियोग और उसका साहचर्य होने पर तत्त्वात्मक अभियोग होता है। चिह्नदर्शन होने से वह विधि और निषेधपूर्वक दो प्रकार का होता है, जैसे मेरे खेत का अपहरण करता है (यह विधेयात्मक) और यह मेरे रुपयों को लेकर नहीं देता है यह प्रतिषेधात्मक है।

यो न्यायं नेच्छते कर्तुमन्यायं च करोति यः।
व्यवहारविलोपी च श्वभ्रं याति न [1]संशयः॥४॥

जो न्याय करने की इच्छा नहीं करता और अन्याय करता है वह व्यवहार को नष्ट करने वाला मनुष्य नरक में जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है।

(वृ०) अत्र न्यायं कर्तुं नेच्छति अन्यायं च कर्तुं ईहते इति प्राड्विवाकापेक्षयापि विधिनिषेधात्मकत्वं स पुनरष्टादशविधस्तथाहि।

न्याय करने की इच्छा नहीं करता है और अन्याय करने की इच्छा करता है। यह विधि-निषेधात्मक व्यवहार अधिकारी की अपेक्षा से अठारह प्रकार का होता है –

ऋणादानं च सम्भूयोत्थानं देयविधिस्तथा।
दायः सीमाविवादश्च वेतनादानमेव च॥५॥

क्रयेतरानुसन्तापो विवादः स्वामिभृत्ययोः।
निक्षेपः प्राप्तवित्तस्य विक्रयः स्वामिनं विना॥६॥

वाक्पारुष्यं च समयव्यतिक्रान्तिः स्त्रियाग्रहः।
द्यूतं स्तैन्यं साहसं च दण्डपारुष्यमेव च॥७॥

स्त्रीपुंधर्मविभागश्चेत्येते भेदाः प्रकीर्तिताः।
व्यावहारिकमार्गेऽस्मिन्नष्टाग्रदशसंख्यया ॥८॥

---

१. शंसयः भ १, प १, प २॥

१. ऋणादान – ऋण-ग्रहण, २. सम्भूयोत्थान – सामुदायिक कृत्य, ३. देय विधि, ४. दाय भाग, ५. सीमा विवाद, ६. वतेनादान – वेतन-ग्रहण, ७. क्रयेतरानुसन्ताप – क्रय-विक्रय विवाद, ८. स्वामि-भृत्य विवाद, ९. प्राप्त वित्त का निक्षेप, १०. अस्वामि विक्रय – स्वामी के बिना वस्तु का विक्रय, ११. वाक्पारुष्य – वाणी में कर्कशता, १२. मर्यादाव्यतिक्रम, १३. परस्त्री-ग्रहण, १४. द्यूत-विवाद, १५. चोरी विवाद, १६. साहस, १७. दण्ड पारुष्य और १८ स्त्री-पुरुषधर्म – इस प्रकार व्यवहार मार्ग के अठारह भेद बताये गये हैं –

(वृ०) ऋणग्रहणं ऋणादानं १ बहुभिर्मिलित्वा कृत्यापादनं २ दातुं योग्यस्य-विधिः ३ दायभागः ४ सीमायाः विवादः ५ वेतनादानं ६ क्रयविक्रयपश्चात्तापः ७ स्वामिभृत्ययोर्विवादः ८ प्राप्तवस्तुनः उत्तमे पुरुषे स्थापनं निक्षेपः ९ स्वामिनं विना तद्वस्तुविक्रयः १० वाक्पारुष्यं ११ मर्यादाव्यतिक्रमः १२ परस्त्रीग्रहणं १३ द्यूताभियोगः १४ स्तैन्यवादः १५ साहसपारुष्यं १६ दण्डपारुष्यं १७ स्त्रीपुरुषधर्मः १८ इति अष्टादश भेदा अस्मिन्व्यवहारमार्गे स्मृताः।

१. ऋणादान अर्थात् ऋणग्रहण, २. अनेक व्यक्तियों द्वारा मिलकर कार्य करना सम्भूयोत्थान, ३. देने योग्य विधि देयविधि, ४. दायभाग, ५. सीमा-विवाद, ६. वेतनादान, ७. क्रय-विक्रय पश्चात्ताप, ८. स्वामि- भृत्यविवाद, ९. प्राप्त वस्तु का उत्तम पुरुष में स्थापन निक्षेप, १०. स्वामी के विना उसकी वस्तु का विक्रय, ११. वाक्पारुष्य, १२. मर्यादा-व्यतिक्रम, १३. परस्त्रीग्रहण, १४. द्यूताभियोग, १५. स्तैन्यवाद, १६. साहसपारुष्य, १७. दण्डपारुष्य और स्त्री-पुरुष धर्म – ये अठारह भेद इस व्यवहार मार्ग में कहे गये हैं।

एवमन्येपि भेदाः स्युः शतमष्टोत्तरं पुनः।
क्रियाभेदान्मनुष्याणां बहुशाखो भवेत् ध्रुवम्।।९।।

इस प्रकार (व्यवहार के) दूसरे भी एक सौ आठ भेद हैं। मनुष्यों की (अलग-अलग) क्रियाओं के भेद से निश्चय ही (व्यवहार के) अनेक भेद होते हैं।

(वृ०) यथा बहुवादिनां बहूनां बहुप्रतिवादिभिर्विरोधः १, बहूनामेकेन सह विरोधः २, एकस्य बहुभिर्विरोधः ३, एकस्यैकेन सह विरोधः ४, एवमष्टादशानां चतुर्भिगुणने द्विसप्ततिभेदाः भवन्ति।

जैसे कई वादियों का कई प्रतिवादियों के साथ विरोध, बहुत से वादियों का एक प्रतिवादी के साथ विरोध, एक वादी के साथ बहुत से प्रतिवादियों का विरोध, एक वादी के साथ एक प्रतिवादी का विरोध, इस प्रकार अठारह भेदों के साथ चार का गुणा करने से व्यवहार मार्ग के बहत्तर भेद होते हैं।

यथा अनेन मत्त एतावद्रजतानि एतन्मिषेण तुर्यमासनियमतया गृहीतानि। अद्य नियतकालव्यतिक्रमे मया अधमर्णो याचितोऽपि न ददाति। प्रत्युतो योद्धुं प्रवृत्त इति।

उदाहरणस्वरूप, अमुक ने मुझसे इतने रुपये इस ब्याज से चार मास में वापस करने का नियम कर लिया था। वह अवधि व्यतीत हो जाने पर मैंने कर्जदार से यह राशि माँगी थी परन्तु वह वापस न कर प्रत्युत् लड़ाई करने के लिए तैयार है।

इति विज्ञप्तिं श्रुत्वा निर्णीय मद्द्रव्यं
मामधनर्णिकाद्दापयितव्यमिति प्रतिज्ञा।१।

यह विज्ञप्ति सुनकर निर्णयकर मेरा धन उस कर्जदार के पास से दिलवाना चाहिए– यह प्रतिज्ञा है।

अर्थ्युक्तपक्षसाधनबाधकरूपं यत्प्रत्यर्थिनोक्तं तदुत्तरम्।२।

वादी द्वारा कथित पक्ष के साधन को बाधित-खण्डित करने वाले प्रतिवादी का कथन उत्तर है।

द्वयोरुक्तिं श्रुत्वा प्राड्विवाकस्य चित्तं दोलायते इदं साधनं सत्यं वेदमिति संशयः एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धनानाधर्मविशिष्टज्ञानं वा संशयः।३।

दोनों (वादी और प्रतिवादी) का कथन सुनकर न्यायाधीश का चित्त दोलायमान – अनिर्णय की स्थिति में हो जाता है। वादी का साधन (रूप वचन) सत्य है अथवा प्रतिवादी का निषेधरूप वचन (मन की यह दुविधा) संशय है। एक वस्तु में विरुद्ध विविध गुण विषयक ज्ञान संशयः है।

अर्थिप्रत्यर्थिनियुक्तसाधनदूषणसमर्थनकारणं हेतुः।४।

वादी और प्रतिवादी के द्वारा (क्रमशः) साधन और दूषण के समर्थन में प्रयुक्त कारण हेतु है।

हेतुद्वयमध्ये कः कस्य साधक इति विचारः परामर्शः।५।

दोनों हेतुओं के मध्य में कौन किसका साधक है यह विचार परामर्श है।

साक्ष्यादिभिर्यस्य वाक्यस्य बलप्रतीतिः तत् प्रमाणम्।६।

साक्षी, (लेख) इत्यादि के द्वारा जिस वाक्य की बल प्रतीति हो वह प्रमाण है।

भूपोमन्त्रिसभ्यैश्च सह सर्वमाद्यन्तलेख्यादीन् वाचयित्वा श्रुत्वा वोभयोर्जयपराजयसाधकनिदानज्ञानोत्तरं सर्वानुमत्या चाज्ञां देयादितिनिर्णयः।७।

मन्त्री तथा सभासदों के साथ आदि से अन्त तक सभी लेखों को पढ़कर, साक्षियों को सुनकर सबकी सहमति से राजा जो आज्ञा दे वह निर्णय है।

पुनस्तदनुसारेणाधिकार्युभयोराज्ञां श्रावयित्वा तत्प्रवृत्तिकरणं प्रयोजनम्।८।

पुनः निर्णय के अनुसार न्यायाधीश द्वारा दोनों (वादी और प्रतिवादी) को आज्ञा सुनाकर उसे क्रियान्वित करना प्रयोजन है।

इत्यष्टप्रकारैर्वादनिर्णयः कार्यः, तत्र कथं व्यवहारो विधेयः, इत्याह –

इस प्रकार उपरोक्त आठ प्रकार से वाद का निर्णय करना चाहिए। वाद के समय किस प्रकार व्यवहार का सञ्चालन करना चाहिए, इसका कथन –

भूपः सदसि संवेगभावमाश्रित्य निस्पृहः।
राज्यकार्यं करोत्येव गृहीत्वा सभ्यसंमतिम्॥१०॥

समदः प्रेक्षमाणोऽसौ नोक्तिं कस्यापि मानयेत्।
राज्यकृत्ये यथानीति यदीप्सुः सुखमक्षयम्॥११॥

राजा सभा में प्रचण्ड भाव का आश्रय लेकर इच्छारहित होकर सभासदों की सम्मति लेकर ही राज्य-कार्य करता है। यदि राजा को अक्षय सुख की इच्छा हो तो वह सगर्व देखता हुआ नीतिपूर्वक राज्य कार्य में किसी के कथन को स्वीकार न करे (किसी से प्रभावित न हो)।

(वृ०) एवं भूपे राज्यकर्मणि प्रवृत्ते कस्मिंश्चित् अर्थिन्यागते चरस्तस्माद्विज्ञप्तिपत्रं गृहीत्वा मन्त्रिणं देयात्। मन्त्री च तत्पत्रं भूपं निवेद्य श्रव्येतरनिर्णयानन्तरं पत्रोपरि चाज्ञां लिखेत्।

राजा के राज्यकार्य में प्रवृत्त होने पर वादी के आवेदन हेतु आने पर दूत आवेदन पत्र लेकर मन्त्री को सौंपे। मन्त्री उस आवेदन पत्र को राजा को सूचितकर कि यह सुनने योग्य है कि नहीं, इस निर्णय के बाद, पत्र पर आज्ञा लिखे।

(वृ०) का तत्रयोग्यतायोग्यता वेत्याह–

आवेदन की योग्यता अथवा अयोग्यता के विषय में कथन –

सार्थकं च समग्रार्थं साध्यधर्मेण संयुतम्।
स्फुटं संक्षिप्तसच्छद्ममात्मप्रत्यर्थिनामयुक्॥१२॥

साध्यप्रमाणसंख्यावद्देशभूपाभिधान्वितम्।
यन्निवेदयते राज्ञे तद्योग्यमिति कथ्यते॥१३॥

राजा को प्रस्तुत आवेदन यदि उद्देश्यपूर्ण, समस्त दावों से युक्त, समाधान

योग्य प्रकृति वाला, स्पष्ट, संक्षिप्त, उत्तम शब्द, अपने एवं प्रतिवादी के नाम, दावा सिद्ध करने योग्य प्रमाणों की संख्या, देश और राजा के नाम से युक्त हो तो वह योग्य (आवेदन) कहा जाता है।

(वृ०) स्फुटोऽर्थः। जङ्गमविषयिकव्यवहारे त्वियं रीतिः, स्थावरविषयाभियोगे तु –

अर्थ स्पष्ट है। चल सम्पत्ति विषयक व्यवहार में आवेदन की यह (उपरोक्त) पद्धति है। अचल सम्पत्ति विषयक व्यवहार में आवेदन की यह (अधोलिखित) पद्धति है –

देशस्थानाख्यजातिस्वसन्निवेशप्रमाणयुक् ।
पितामहस्वपितानुजज्येष्ठाद्यभिधान्वितम् ।।१४।।

राजमुद्राङ्कितं पत्रं स्थावरे श्राव्यमुच्यते।
अन्यथा तु वादिविज्ञप्तिर्न श्रोतव्याधिकारिणा।।१५।।

देश, ग्राम, जाति, अपने सन्निवेश (वास स्थान का नाम, कुटीर) के प्रमाण सहित, अपने पितामह, अपने पिता, कनिष्ठ भाई, ज्येष्ठ भाई आदि के नाम से युक्त, राजा की मुद्रा (मुहर) से अङ्कित आवेदन अचल सम्पत्ति के वाद में (अधिकारियों) द्वारा) सुनने योग्य है, नहीं तो वादी का आवेदन अधिकारियों द्वारा सुनने योग्य नहीं है।

(वृ०) तत्र देशो मध्यदेशो वा द्रविडाङ्गबङ्गादयः, स्थानं वाराणस्यादि, जातिः क्षत्रियादयः, सन्निवेशः पूर्वापरदक्षिणोत्तरविभागावच्छिन्नः, प्रमाणं दशरज्जुमितमायतं बाणरज्जुमितविस्तृतं, पितृपितामहादिनामयुतं, क्षेत्रं यवक्षेत्रं वा शालिक्षेत्रं, इत्येतद्रीत्या लिखिता विज्ञप्तिः श्रोतव्या अन्यथा न पक्षाभासत्वात्–

देश अर्थात् मध्यदेश या द्रविड़, अङ्ग, बङ्ग आदि देश, स्थान वाराणसी आदि, जाति क्षत्रिय आदि, सन्निवेश पूरब-पश्चिम, दक्षिण-उत्तर दिशा की मर्यादा, प्रमाण दस रज्जु लम्बा, पाँच रज्जु चौड़ा, पिता, पितामह आदि के नाम से युक्त, क्षेत्र यव आदि का क्षेत्र अथवा शालि का क्षेत्र, इस रीति से लिखित विज्ञप्ति सुननी चाहिये, इससे भिन्न पक्षाभास होने के कारण नहीं सुननी चाहिए।

(वृ०) के पक्षाभास इत्याह –

पक्षाभास क्या है इसका कथन –

असाध्यमप्रसिद्धं च विरुद्धं निष्प्रयोजनम्।
निरर्थकं निराबाधं पक्षाभासं विवर्जयेत्।।१६।।

असाध्य (जिस वाद का समाधान न हो सके), अप्रसिद्ध (अस्तित्व विहीन) वस्तु से सम्बन्धित वाद विरुद्ध, निष्प्रयोजन, निरर्थक, निराबाध – इस प्रकार के वाद पक्षाभास हैं (अधिकारियों द्वारा) इनके श्रवण का त्याग करना चाहिए।

(वृ०) यथा अनेन मां दृष्ट्वा निष्ठीवनं कृतमित्यसाध्यम्।

जैसे मुझे देखकर इसने थूका यह असाध्य वाद है।

मद्गृहस्थं खपुष्पं गृहीत्वायमगमत्तदहं याचयामि परं नो ददातीत्यप्रसिद्धम्।

मेरे घर में स्थित आकाश-पुष्प लेकर चला गया उसे मैं माँगता हूँ पर वह नहीं देता है, यह अप्रसिद्ध वाद है।

अनेनाहं शप्त इतिविरुद्धम्।

इसके द्वारा मेरा सौगन्ध लिया गया यह विरुद्ध है।

मत्पित्रा पूर्वमस्याधिकारः कृतोऽस्ति भूयो मां न ददाति इति निष्प्रयोजनम्।

मेरे पिता द्वारा पूर्व में इसके अधिकार में किया गया पुनः मुझे नहीं देता है यह निष्प्रयोजन है।

यथा तथा प्रलपनं निरर्थकम्।[१]

जैसा-तैसा प्रलाप निरर्थक है।

मद्गृहस्थदीपप्रकाशेनायं स्वगृहकार्यं करोति इति निराबाधम्।

मेरे घर के दीपक के प्रकाश से यह अपने घर का कार्य करता है, यह निराबाध है।

एतादृशं पक्षाभासं वर्जयेत् न श्रृणुयादित्यार्थः।

इन पक्षाभासों का त्याग करना चाहिए, नहीं सुनना चाहिए यह अभिप्राय है।

तथा चानेकव्यवहार विषयगर्भिता विज्ञप्तिरपि न श्रोतव्या।

अनेक विषयों से युक्त आवेदन की भी सुनवाई नहीं करनी चाहिए।

किन्तु प्रत्येकविषयगर्भिता इत्याह –

किन्तु अलग-अलग विषयों से सम्बन्धित (आवेदन की सुनवाई करनी चाहिए), इसका कथन –

विज्ञप्तिर्नहि श्रोतव्या क्रियाभेदसमन्विता।
अनेकविषयाकीर्णा श्रूये[२]ताथाधिकारिभिः।।१७।।

१. प्रतिकरणम् भ १, भ २, प १, प २।।
२. ०नाथा० भ १, भ २, प १, प २।।

भिन्न-भिन्न क्रियाओं वाले आवेदन को (अधिकारियों को) नहीं सुनना चाहिए। (परन्तु कभी-कभी) अनेक (वादों को) विषय बनाने वाले आवेदन को भी अधिकारियों द्वारा सुनना चाहिए।

(वृ०) कस्मिंश्चित् काले भिन्नविषयभूतैकविज्ञप्तिरपि श्रोतव्या भवतीत्याह–

कभी-कभी भिन्न-भिन्न विषयभूत एक आवेदन भी अधिकारियों को सुनना पड़ता है, इसका कथन –

एकैकविषयासक्तोऽनेकक्रियसमन्वितः ।
श्राव्यो वाद्यभियोगश्चान्यद्ग्रामजनहेतुकः।।१८।।

यदि वादी का अभियोग दूसरे गाँव के लोगों के हेतु वाला हो तो अनेक क्रियाओं और अलग-अलग विषयों से युक्त होने पर भी आवेदन अधिकारियों को सुनना चाहिए।

साक्ष्यादिहेतुभिः सिद्धं तद्विमृश्याधिकारिभिः।
शीघ्रमाज्ञा प्रदेया हि जयपराजययोरिति।।१९।।

साक्षी इत्यादि हेतुओं से सिद्ध उस वाद पर विमर्श करके (वादी के) जय अथवा पराजय की आज्ञा अधिकारियों द्वारा शीघ्र प्रदान की जानी चाहिए।

(वृ०) यद्यपि व्यवहाराभियोगे न्यायेन एकविषयैकक्रियायुता विज्ञप्तिरेवैककाले च देया इत्युक्ता परन्तु केनचिदन्यपत्तनीयानेकपुरुषैर्नियोगे तद्विज्ञप्तिरवश्यं श्रोतव्या भवत्येव इति श्रोतव्यं चेत् पराह्वानाय समुद्राज्ञाछदं दूतद्वाराप्रत्यर्थिसमीपे प्रेषयेदन्यथा तु तत्पत्रं राज्यपत्रकोषे क्षिपेत्। तथाहि –

यद्यपि व्यवहार सम्बन्धी आरोपपत्र न्याय के अनुसार एक विषय और एक क्रिया से युक्त दिया जाना चाहिए, यह कहा गया है परन्तु वाद किसी अन्य नगरवासी अनेक पुरुषों से सम्बन्धित हो तो उसका आवेदन अवश्य सुनना चाहिए। क्योंकि –

श्रोतव्या यदि विज्ञप्तिस्तस्यामाज्ञां लिखेत्परा-
ह्वानाद्यर्थे समुद्रां चाधिकारी तां प्रवर्तयेत्।।२०।।

नृपाज्ञापत्रं तत्रैव गच्छेद्दूतो ह्यनाकुलम्।
योग्यतायोग्यते दृष्ट्वा नेतुं योग्यं तमानयेत्।।२१।।

यदि अधिकारी द्वारा वह विज्ञप्ति सुनी गई है तो प्रतिवादी को बुलाने आदि के लिए लिखित राजाज्ञा पत्र राजा की मुद्रा सहित भेजनी चाहिए। दूत शीघ्रता से

उस राजाज्ञा पत्र को लेकर वहाँ (प्रतिवादी) के पास जाय और उसकी योग्यता और अयोग्यता देखकर लाने के योग्य होने पर उसे लेकर आये।

(वृ०) के अनाहूया इत्याह –

कौन बुलाने योग्य नहीं है, इसका कथन–

अशक्ताः स्थविरा बाला कुलजा हीनपक्षकाः।
अज्ञातस्वामिनो क्रूरा राज्यकार्यसमाकुलाः।।२२।।

आवश्यकक्रियोद्युक्ता उन्मत्ता भूतडाकिनी।
गृहीता वातपित्तोग्रा अनाहूयाः स्मृता बुधैः।।२३।।

देशकालानुसारेण कृत्यसाधनदूषणे।
ज्ञात्वा यानैरशक्तादीन् बला[१]दाह्वाययेन्नृपः।।२४।।

अशक्त, वृद्ध, बाल, कुलीन, विकलाङ्ग, जिनका कोई स्वामी न हो, क्रूर, राज्यकार्य में व्यस्त, आवश्यक कार्य में संलग्न, उन्मत्त, भूत-डाकिनी आदि से पीड़ित, उग्र वायु-पित्त रोग से पीड़ित को विद्वानों द्वारा न बुलाने योग्य कहा गया है। देश और काल के अनुसार न्याय कार्य के सम्पादन में दोष को जानकर अशक्त आदि को राजा वाहन आदि के द्वारा बलपूर्वक बुलवाये।

(वृ०) एतद्रीत्या दूतेन प्रत्यर्थिन्यानीते किं तत्पितृभ्रात्रादयोऽपि तत्र वक्तुं शक्नुवन्ति न वेत्याह –

उपर्युक्त रीति से दूत द्वारा प्रतिवादियों को (बुलाकर) लाने पर उसके पिता, भाई आदि भी वहाँ बोलने में समर्थ हैं या नहीं इसके विषय में कथन–

पिता भ्राता न पौत्रो वा न सुतो न नियोगकृत्।
व्यवहारेषु शक्तः स्याद्वक्तुं दण्ड्यो हि विब्रुवन्।।२५।।

व्यवहार (वाद की सुनवाई) में न पिता, न भाई, न पौत्र अथवा न ही पुत्र एवं न मुक्तारनामा से युक्त व्यक्ति बोलने में समर्थ है। निश्चित रूप से बोलने पर दण्डित करने योग्य है।

(वृ०) स्वाम्यभावे तु दत्तपूर्णाधिकारत्वेन सर्वे वक्तुं शक्नुवन्ति इति स्थितिः। ततोऽधिकारी अर्थिदत्तं प्रतिज्ञापत्रमुत्तरं गृहीतुं प्रत्यर्थिने दर्शयेत् तदभिप्रायं निवेदयेच्च –

स्वामी की अनुपस्थिति में (स्वामी द्वारा) दिये गये पूर्ण अधिकार से सभी बोल सकते हैं – यह स्थिति है। तत्पश्चात् अधिकारी उत्तर प्राप्त करने के लिए

---

१. ०दाह्वानयेन्नृपः भ १, भ २, प १, प २।।

वादी द्वारा प्रदत्त वादपत्र को प्रतिवादी को दिखाये। प्रतिवादी को उस वादपत्र का अभिप्राय भी बताये।

कुलजातिवयोवर्षमासपक्षदिनान्वितम् ।
अर्थिनावेदितं यच्च तत्सर्वं हि निवेदयेत्।।२६।।

कुल, जाति, अवस्था, वर्ष, मास, पक्ष, दिन सहित वादी द्वारा जो भी निवेदित किया गया है वह सब निवेदित करना चाहिए।

(वृ०) स च तत्पत्रं सुतरामालोच्य शोधनार्थमवधिं याचेत शोधनं च यावदुत्तरदर्शनं ततः प्राड्विवाको यथाकृत्यमवधिं देयात्।

और वह प्रतिवादी उस वादपत्र को भलीभाँति देखकर संशोधन हेतु समय की माँग करे। न्यायाधीश कार्य के अनुसार शोधन से लेकर उत्तर देने हेतु समय की निश्चित अवधि प्रदान करे।

ऋणाद्युत्तरदाने चावधौ देयादिनत्रयम्।
भूयो विशेषकृत्ये तु पक्षं नातःपरं दिशेत्।।२७।।

ऋण आदि सम्बन्धी विवाद में उत्तर देने के लिए (प्रतिवादी को) तीन दिन की अवधि देनी चाहिए। राजा विशेष वाद में एक पक्ष (पन्द्रह दिन) का समय दे इससे अधिक समय न दे।

गोर्वधे ताडने स्तेये पारुष्ये साहसेऽपि वा।
स्त्रीचरित्रे न कालोऽस्ति गृह्णीयादुत्तरं लघु।।२८।।

गोवध, मारपीट, चोरी, वाग्युद्ध अथवा जघन्य अपराध, स्त्री के चरित्र सम्बन्धी वाद में (उत्तर देने के लिए) समय नहीं दिया जाना चाहिए, शीघ्र उत्तर लिया जाना चाहिए।

शोधयेद्वादिपत्रं च यावन्नोत्तरलेखनम्।
लिखिते तु यथानीति निवृत्तं शोधनं भवेत्।।२९।।

जब तक प्रतिवादी द्वारा उत्तर नहीं लिखा गया है तब तक वह वादी के पत्र का निरीक्षण कर सकता है परन्तु उत्तर लिख लिये जाने पर नीति के अनुसार निरीक्षण से विरत हो जाय।

(वृ०) ऋणादिव्यवहारे उत्तमर्णनिरूपितविषयशोधनपूर्वकोत्तरदानार्थं प्राड्विवाको दिनत्रयावधिं देयात्। विशेषकृत्ये तु भूपः पक्षैकमितावधिं देयात्। अतः परं न दिशेत्। गोर्वधे मारणे ताडने यष्ट्यादिप्रहारे स्तेये चौर्ये पारुष्ये क्रोधेन कटुवाक्यादिकथने साहसे विषशस्त्रादि- कृतप्राणघाते स्त्रिया दुश्चरिते

एतद्विषयाभियोगे उत्तरदानार्थं प्रतिवादिनं प्रत्यवधिं न देयात्। तत्क्षण एवोत्तरं गृह्णीयात्। अन्यथा असत्यसाक्ष्यादिना कृत्यविपर्ययः।

ऋणादिव्यवहार में उत्तम ऋण निरूपित विषय का शोधन कर उत्तर देने हेतु न्याया-धीश तीन दिन की अवधि प्रदान करे। विशेष मामलों (आपराधिक वादों) में राजा पन्द्रह दिन (एक पक्ष) की मर्यादा प्रदान करे। इसके पश्चात् समय न दे। गोवध, मार-पीट, लाठी आदि से प्रहार, स्तेय–चोरी, पारुष्य–क्रोध से कठोर वाक्य का कथन, साहस अर्थात् विष और शास्त्र आदि से प्राणघात, स्त्री का दुश्चारित्र्य इत्यादि विषयों के अभियोग में उत्तर देने के लिए प्रतिवादी को अतिरिक्त समय न दे तत्क्षण ही उत्तर माँग ले। अन्यथा असत्य साक्षी आदि द्वारा वाद में छेड़छाड़ की सम्भावना है।

प्रत्यर्थी वादिपत्रं यावदुत्तरलेखनं शोधयेत् लिखिते तु शोधनं निवृत्तं भवेत् अतो गृहीतावधौ प्रतिज्ञापत्रं विविच्य यथातथमुत्तरं देयात्।

प्रतिवादी वादी के पत्र का उत्तर जबतक लिख रहा हो तबतक वह संशोधन कर सकता है परन्तु लेखन से विरत होने के पश्चात् उसमें परिवर्तन नहीं कर सकता है। अतः ग्रहण की गई अवधि में प्रतिज्ञापत्र का विवेचन कर तथ्य के अनुसार उत्तर देना चाहिए।

यदि रागाद् द्वेषाल्लोभाद्वान्यथोत्तरं देयात्स दण्ड्यः।

यदि राग-द्वेष और लोभ के वश तथ्य से परे उत्तर दे तो उसे दण्डित करना चाहिए।

तदुत्तरं द्विविधं श्राव्यमश्राव्यं चेति।

प्रतिवादी द्वारा प्रदत्त उत्तर दो प्रकार का होता है – श्राव्य और अश्राव्य।

तत्र श्राव्यं तु –

उसमें सुनने योग्य उत्तर तो (इस प्रकार हैं) –

अर्थिप्रतिज्ञां दृष्ट्वैव प्रत्यर्थी चोत्तरं लिखेत्।
तद्वै चतुर्विधं सत्यं प्रतिभु व्यापकं तथा।।३०।।

असन्दिग्धमिति प्रोक्तं सूत्तरं निर्णये बुधैः।
येन प्रकृतसाध्यार्थसिद्धिः प्रत्यर्थिनः स्फुटम्।।३१।।

वादी की प्रतिज्ञा (आवेदन) देखकर ही प्रतिवादी द्वारा उत्तर लिखना चाहिये। वह उत्तर सत्य, प्रतिभु, व्यापक एवं असन्दिग्ध चार प्रकार का होता है। विद्वानों द्वारा (वाद के) निर्णय में उसे उत्तम उत्तर कहा गया है जिससे स्पष्ट रूप से प्रस्तुत वाद में प्रतिवादी के साध्य अर्थ की सिद्धि हो।

(वृ०) यथा शतमुद्रा एतस्माद्याचयामीत्यर्थिनोक्ते सत्यं दातव्याः सन्तीति सत्योत्तरं

उदाहरणस्वरूप वादी द्वारा यह कहने पर कि इससे सौ रुपये माँगता हूँ (प्रतिवादी कहे कि) सत्य है मेरे द्वारा दिये जाने हैं – यह सत्य उत्तर है।

अर्थिलेखकं दृष्ट्वा तद्विरुद्धधर्महेतुप्रतिपादनं प्रतिभूः ग्रामादिनामयुतं व्यापकं।

वादी द्वारा लिखित आवेदन को देखकर उसके विरुद्ध धर्महेतु का प्रतिपादन प्रतिभू है।

सत्यमेतावन्मुद्रैतस्य दातव्या परं मयैतस्यैतत्कृत्यं कृतमस्तीत्यसन्दिग्धम्।

सत्य है वादी के इतने रुपये देय हैं पर मेरे द्वारा इसका यह कार्य किया गया है – यह असन्दिग्ध उत्तर है।

अश्राव्यं च पञ्चविधम् –

अश्राव्य उत्तर के पाँच प्रकार –

सन्दिग्धं प्रकृताद्भिन्नमत्यल्पमतिभूरि च।
पक्षैकदेशव्याप्यं यच्छ्राव्यं नैवोत्तरं हि तत्।।३२।।

सन्दिग्ध, वास्तविक से भिन्न, अत्यल्प, अत्यधिक और पक्ष के एक देश में व्याप्त (ये पाँच प्रकार के उत्तर अश्राव्य हैं) अतः अधिकारियों द्वारा सुनने योग्य नहीं हैं।

(वृ०) यथा शतमुद्रा अनेन गृहीता इत्युक्ते सति शतमुद्रा वा शतपणा इति सन्दिग्धम्।

उदाहरणस्वरूप इसने सौ मुद्राएं ग्रहण की हैं वादी के यह कहने पर प्रतिवादी का कहना कि सौ मुद्रा अथवा सौ रुपया, यह सन्दिग्ध उत्तर है।

सुवर्णशताभियोगे पणशतं धारयामीतिप्रकृताद्भिन्नम्।

सौ स्वर्णमुद्राओं का वाद होने पर मैंने तो सौ रुपये लिया है प्रतिवादी का उत्तर भिन्न है।

सुवर्णशताभियोगे पञ्चैव धारयामीति अत्यल्पम्।

सौ स्वर्णमुद्राओं का वाद होने पर मैंने तो पाँच ही लिया है प्रतिवादी का उत्तर अत्यल्प है।

सुवर्णशताभियोगे सहस्रं धारयामीति अतिभूरि।

सौ स्वर्णमुद्राओं का वाद होने पर मैंने तो हजार मुद्राएं ग्रहण की हैं प्रतिवादी का उत्तर अतिभूरि है।

भूषणवस्त्राद्यभियोगे वस्त्राणि गृहीतानि न भूषणानि इति पक्षैकदेशव्यापि।

वादी द्वारा आभूषण और वस्त्र-ग्रहण का आरोप लगाये जाने पर प्रतिवादी का उत्तर कि वस्त्र ग्रहण किया है आभूषण नहीं एकदेशव्यापी उत्तर है।

एतादृशं प्रत्यर्थिलिखितुत्तरं प्राड्विवाको न श्रृणुयादित्यर्थः।

प्रतिवादी द्वारा लिखित इसप्रकार के उत्तर न्यायाधीश न सुने।

ततश्च –

इसके पश्चात् –

प्रत्यर्थ्युत्तरमादाय तदालोच्याधिकारभृत्।
पुनरावेदयेल्लातुमर्थिनं च तदुत्तरम्।।३३।।

प्रतिवादी का उत्तर लेकर उसका निरीक्षण करने के पश्चात् अधिकारी उस उत्तर का प्रत्युत्तर लाने के लिए वादी से कहे।

तदालोच्य पुनश्चार्थी ऋणिलेखाभिघातकृत्।
देयादुत्तरमेता[1]वद्यत्कार्ये पुष्टिदं भवेत्।।३४।।

उस (प्रतिवादी से प्राप्त उत्तर) का निरीक्षण कर वादी पुनः प्रतिवादी के उत्तर का खण्डन करने वाला प्रत्युत्तर दे तब यह उत्तर उसके वाद का पोषक होता है।

विरुद्धमन्यथा पूर्वापरत्वेन स्मृतं ततः।
प्रतिज्ञाभङ्गहीनत्वे स्यातां कृत्यार्थहानिदे।।३५।।

तत्पश्चात् यदि वादी के पूर्व (प्रतिज्ञा) और पश्चात् (प्रतिवादी के उत्तर के प्रत्युत्तर में) विरोध न हो नहीं तो प्रतिज्ञा भङ्ग होती है, पक्ष कमजोर होता है और वाद के प्रयोजन की हानि होती है।

(वृ०) वादिना प्रतिज्ञापत्रे पूर्वं यल्लिखितं तथैव सविस्तरं प्रतिवाद्युक्तोत्तरदानकाले पुनर्लेख्यं अन्यथा पूर्वापरविरुद्धत्वेन प्रतिज्ञाभङ्गः पक्षहीनता च।

वादी के द्वारा प्रतिज्ञापत्र में जो पहले लिखा गया है वही विस्तार सहित प्रतिवादी द्वारा कथित उत्तर का प्रत्युत्तर देते समय पुनः लिखना चाहिए नहीं तो पूर्व और पश्चात् के विरुद्ध होने से प्रतिज्ञा भङ्ग और पक्षहीनता होती है।

---

१. ०दात्का० भ १, भ २, प १, प २।।

हीनता पञ्चधा स्यात् तथा हि –

हीनता पाँच प्रकार की होती है, उदाहरणार्थ –

निरुत्तरः क्रियाद्विष्टो नोपस्थातान्यदुत्तरः।
आहूतः प्रपलायेत भवेद्धीनस्तु पञ्चधा।।३६।।

१. निरुत्तर २. क्रियाद्विष्ट, ३. नोपस्थाता, ४. अन्यदुत्तर और ५. आहूत पलायन – ये पाँच प्रकार के हीन होते हैं।

पृष्टे सति किञ्चिदपि न वदति स निरुत्तरः।

पूछने पर कुछ भी उत्तर न दे वह निरुत्तर है।

लेखनक्रिया चातुर्येणान्यथा लिखन् क्रियाद्विष्टः।

लेखनक्रिया में चतुराई से तथ्य के विपरीत लिखना क्रियाद्विष्ट है।

उत्तरे पृष्टे प्रकृताच्चलेत् स नोपस्थाता।

उत्तर पूछने पर तथ्य से हट जाना नोपस्थाता है।

पृष्टे सत्यन्यथा वदेत् सोन्यदुत्तरः।

पूछने पर तथ्य के विरुद्ध बोलना अन्यदुत्तर है।

आहूते सति पलायेत् स पञ्चमः।

बुलाने पर भाग जाना आहूत पलायन पञ्चम प्रकार की पक्षहीनता है।

पुनश्चाधिकारी तल्लेखं प्रत्यर्थिने निवेदयेत्।
प्रत्यर्थ्यपि च तल्लेखं वाचयित्वोत्तरं लिखेत्।
सत्यं चेत्सिद्धिमाप्नोति विपरीतमथोऽन्यथा।।३७।।

पुनः अधिकारी उस लेख (वादी के प्रत्युत्तर) को प्रतिवादी को निवेदन करे। तत्पश्चात् प्रतिवादी भी उस लेख को पढ़कर उत्तर लिखे। यदि सत्य हो तो सिद्धि प्राप्त होती है। (वादी का समाधान निकल आता है, विपरीत होने पर वाद खोटा सिद्ध हो जाता है।

(वृ०) ततोऽधिकारी पत्रचतुष्टयं गृहीत्वा प्राड्विवाकाग्रे स्थापयेत् स च सभ्यैः सह विविच्य उभौ प्रति साक्ष्यादिसाधननिर्देशं कुर्यात्।

तत्पश्चात् अधिकारी चारों पत्रों को लेकर न्यायाधीश के समक्ष रखे और वह सभासदों के साथ विवेचन कर वादी-प्रतिवादी दोनों पक्षों के प्रति साक्ष्यादि साधनों का निर्देश करे।

तत्र सभ्याः कीदृशाः कियन्तो भवन्ति इत्याह –

सभा में सभ्य किस प्रकार के और कितने होते हैं, इसका कथन –

शत्रौ[1] मित्रे समाः शान्ताः निस्पृहाः सत्यवादिनः।
श्रुताध्ययनसम्पन्नाः परलोकभयान्विताः।।३८।।

निःक्रोधाश्च निरालस्या धर्मज्ञाः कुलजाः सतः।
पञ्चसप्ताथ भूपेन शुद्धाः कार्याः सभासदः।।३९।।

शत्रु और मित्र में सम (भाव रखने वाला), शान्त, निस्पृह, सत्यवादी, शास्त्रज्ञ, परलोक से भय रखने वाला, क्रोधरहित, आलस्य रहित, धर्मज्ञ और कुलीन पाँच और सात व्यक्तियों को राजा द्वारा सभासद बनाना चाहिए।

(वृ०) एते सभ्याश्चेल्लोभादिहेतुभिः कृतमन्यथा कुर्वन्ति तदा दण्ड्याः स्युरित्याह–

ये सभासद यदि लोभ आदि कारणों से अन्याय करते हैं तो दण्डनीय हैं, इसका कथन –

लोभाद्द्वेषाद्बृहन्मित्रकथनेन क्रुधान्यथा।
कृतिं कुर्वन्ति ये सभ्या दण्ड्या भूपेन ते सदा।।४०।।

(राजा द्वारा नामित) जो सभासद लोभ, द्वेष, बड़े मित्र के कथन या क्रोध के कारण अन्याय करते हैं वे राजा के द्वारा सदा दण्ड के योग्य हैं।

(वृ०) लोभादिहेतोरन्यथावादिभ्य एव दण्डग्रहणमुचितं न पुनरज्ञानाद्विरुद्धवादिभ्यस्ते त्वयोग्यत्वेन सभातो निर्वास्या एवेति।

लोभ आदि कारणों से अन्याय करने वाले सभासद ही दण्डनीय हैं पुनः अज्ञानादि के कारण तथ्य के विरुद्ध बोलने वालों को अयोग्य होने से सभा से निष्कासित कर देना चाहिए।

ततस्तौ स्वस्वसाक्षिनामानि लिख्य भूपसदसि प्रवेशयेत् इत्याह–

पूर्व आज्ञा के अनुसार वादी और प्रतिवादी दोनों अपने-अपने साक्षियों का नाम लिखकर राजसभा में प्रवेश करें, इसका कथन –

श्रुत्वोभौ साधनाज्ञां तां स्वस्वपक्षसमर्थक।
साक्षिनामानि [2]संलिख्य स्थापयेत्तां पुरं प्रभोः।।४१।।

इस प्रकार दोनों (वादी और प्रतिवादी) के द्वारा साधन की आज्ञाओं को सुनकर अपने-अपने पक्ष के समर्थक साक्षियों के नाम लिखकर उसे प्रभु (न्यायाधीश) के समक्ष रखना चाहिये।

---

१. सत्रौ भ १, भ २, प २।।
२. संलेख्य भ १, भ २, प १, प २।।

उभयोः साक्षिणो ग्राह्या निस्पृहाः शुद्धवंशजाः।
देशकालविचारज्ञा अपौगण्डा निरन्वयाः।।४२।।

दोनों पक्ष के ऐसे साक्षी ग्रहण किये जाने चाहिए जो निस्पृह हों, जिनका वंश शुद्ध हो, जो देश और काल के विचार को जानने वाले हों, परिपक्व आयु वाले और तटस्थ हों।

(वृ०) ते स्वग्रामजा भिन्नग्रामजा वा।

या तो वे अपने ग्राम में उत्पन्न हों अथवा अन्य ग्राम में उत्पन्न हों।

प्राड्विवाक एतेभ्यो यावन्निर्णयं वेतनं साक्ष्यैश्वर्यानुसारेणोभाभ्यां दापयेदिति।

न्यायाधीश वादी और प्रतिवादी से साक्ष्य और ऐश्वर्य के अनुसार पूर्व निर्धारित वेतन साक्षियों को दिलवाये।

अथ तत्कृत्यमुच्यते –

इसके पश्चात् साक्षियों का कृत्य कहा जाता है –

आगत्य साक्षिणो ब्रूयुः साक्ष्यतां कृत्यसाधने।
धर्मेण स्वस्वपक्षे च यथानीति द्वयोरपि।।४३।।

(वृ०) साक्षिण आगत्य पक्षद्वये साक्ष्यतां वक्तुमुद्युक्ता भवन्ति तदाप्राड्विवाको राज्य-प्रबन्धतया तान् भिन्नान् स्थापयित्वा स्वेष्ट-शपथादिनियमं च कारयित्वा साक्ष्यं गृह्णीयात्।

जब दोनों पक्षों के साक्षी आकर साक्ष्य देने के लिए तैयार होते हैं तब न्यायाधीश राजकीय प्रबन्ध के अनुसार उनको अलग-अलग बैठाकर अपने इष्ट का शपथ आदि नियम कराकर साक्ष्य ग्रहण करे।

आहूतान् साक्षिणः सर्वान्स्थापयेच्च पृथक् पृथक्।
सभान्तोविदिताचारान्मंत्रीयाज्ञार्थ[1]साधकान् ।।४४।।

कृतस्नानार्चनान्पूर्वं नियम्य शपथैर्नृपः।
पृच्छेत्सत्कृत्य सम्बन्धं तत्कृत्ये च यथाविधि।।४५।।

(वादी तथा प्रतिवादी) दोनों पक्ष के साक्षी आकर कार्य के साधन में अपने-अपने पक्ष में धर्म और नीति के अनुसार साक्ष्य कहें। बुलाये गये (दोनों पक्षों के) सभी साक्षियों को अलग-अलग स्थापित करना चाहिए। (वे साक्षीगण) सभा में किये जाने वाले आचरण के ज्ञाता हों और मन्त्री की आज्ञा का (सही)

१. मन्त्रीयज्ञार्थ भ १, भ २, मन्त्रीयज्ञार्ष्य प १, मन्त्रीयज्ञार्ष्य भ २, प २।।

अर्थ में पालन करने वाले हों। (साक्षीगण के) पहले स्नान एवं पूजा कर लेने के पश्चात् राजा (उनको) शपथ दिलाकर, सत्कार कर, विधि के अनुसार उस वाद के सम्बन्ध में पूछे।

विप्रं यज्ञोपवीतेन क्षत्रियं च कृपाणतः।
गोदेवब्राह्मणैर्वैश्यं शपेच्छूद्रं तु पातकैः।।४६।।

विप्र को यज्ञोपवीत की और क्षत्रिय को कृपाण की, वैश्य को गो, देव और ब्राह्मण की तथा शूद्र को 'पाप लगने' की सौगन्ध दिलानी चाहिए।

स्त्रीबालगर्भघाते यज्जीवानामग्निपातने।
पापं तत्सर्वमाप्नोति यः साक्ष्यमनृतं वदेत्।।४७।।

स्त्री-हत्या, शिशु-हत्या, भ्रूण-हत्या और प्राणियों को अग्नि में गिराने का जो पान है असत्य साक्ष्य देने वाला उस सम्पूर्ण पाप को प्राप्त करता है।

दानपूजादिजं पुण्यमसत्येन विनश्यति।
ज्ञात्वेति साधनं ब्रूयुः साक्षिणस्ते यथायथम्।।४८।।

दान और पूजा से उत्पन्न पुण्य असत्य के कारण नष्ट हो जाता है – यह जानकर साक्षियों को साधन (वाद के सम्बन्ध में) तथ्य के अनुरूप कथन करना चाहिये।

(वृ०) कीदृशाः साक्षिणो मान्या भवन्तीत्याह –

कैसे साक्षी स्वीकार करने योग्य हैं, इसका कथन –

यथार्थवादी निर्लोभः क्षमाधर्मपरायणः।
निर्मोहो निर्भयस्त्यागी साक्षी मान्य उदाहृतः।।४९।।

यथार्थ भाषी, लोभ रहित, क्षमाधर्म के पालन में निपुण, निर्मोही, निर्भय और त्यागी साक्षी स्वीकार करने योग्य हैं।

लोभी गद्गदवाग् दुष्टो रुद्धकण्ठो विरुद्धवाक्।
क्रोधी व्यसनसेवी च साक्ष्यमान्यः स्मृतो बुधैः।।५०।।

लोभी, गद्गद (अस्पष्ट) वाणी बोलने वाले, दुष्ट, रुद्ध कण्ठ वाले, विरुद्ध भाषी, क्रोधी, व्यसनी आदि (कुलक्षण युक्त व्यक्ति), विद्वानों द्वारा साक्षी रूप में अस्वीकार्य कहे गये हैं।

(वृ०) वादिसाक्ष्यभवनान्तरं प्रत्यर्थिसाक्षिणो ब्रुयुरित्याह–

वादी के साक्षियों का साक्ष्य होने के बाद प्रतिवादियों का साक्ष्य हो, इसका कथन–

एकपक्षस्वरूपामिं साक्ष्यं स्यात्पूर्ववादिनः।
तन्निवृत्तौ पुनर्बूयात्साक्षी प्रत्यर्थिनः स्फुटम्।।५१।।

एक पक्ष का स्वरूप जानने के लिए पहले वादी का साक्ष्य हो, उसका साक्ष्य पूरा हो जाने पर फिर प्रतिवादी के साक्षी को स्पष्ट वचन कहना चाहिये।

(वृ०) एतद्रीत्या प्राड्विवाकेन पूर्ववादिसाक्ष्यादाने प्रारब्धे प्रत्यर्थी तत्साक्षिनिमित्तं तदनुचरत्वादिदोषप्रतिपादनपूर्वकत्वेनाप्रमाणत्वं वदेत्त-दाधिकारी किं कुर्यादित्याह –

इस (पूर्वोक्त) रीति से न्यायाधीश के द्वारा पहले वादी के साक्षियों का साक्ष्य ग्रहण करने पर प्रतिवादी उस साक्षी के निमित्त वादी के सेवक आदि से दोष-प्रतिपादन के द्वारा उस साक्षी की अप्रामाणिकता कहे तब अधिकारी क्या करे, इसका कथन –

अर्थिनोऽनुचरो मित्रं सहवासी कुटुम्बजः।
ऋणार्त्तश्चेति तत्साक्ष्यं गृह्णीयाद्दिव्यपूर्वकम्।।
दिव्ये गृहीतेऽसत्यत्वं साक्षिणां च स्फुटं भवेत्।
दण्ड्याः पृथक् द्रम्मैर्यथादोषं च धर्मतः।।५२।।

यदि साक्षी के रूप में वादी का सेवक, मित्र, पड़ोसी, कुटुम्बी जन और कर्जदार साक्ष्य देने आया हो तो उससे शपथ पूर्वक साक्ष्य ग्रहण करना चाहिए। शपथ लेने पर भी यदि साक्षियों का झूठ प्रकट हो जाता है तो उनको उनके दोष के अनुसार भिन्न-भिन्न द्रम्मों (सिक्कों) से धर्म के अनुसार दण्डित करना चाहिए।

(वृ०) एवं वादिसाक्ष्यभवनान्ते प्रतिवादिसाक्षिणोऽपि साक्ष्यं ददति ततः प्राड्विवाक उभयसाक्षिणां साक्ष्यं गृहीत्वा पुनः किं कुर्यादित्याह–

इसी प्रकार वादी का साक्ष्य होने के बाद प्रतिवादी के साक्षी भी साक्ष्य दे देते हैं इसके बाद न्यायाधीश दोनों पक्षों के साक्षियों का साक्ष्य लेकर पुनः क्या करे, इसका कथन –

साक्ष्युक्तं प्राड्विवाकश्च विमृश्य सुतरां द्वयोः।
कस्य वाक्यस्य प्रामाण्यमिति सभ्यैर्विवेचयेत्।।५३।।

दोनों पक्षों के साक्षियों द्वारा (दिये गये) वक्तव्य का भलीभाँति विमर्श कर किस (साक्षी) का वाक्य प्रमाण है – ऐसा सभासदों द्वारा विवेचित किया जाना चाहिए।

(वृ०) यद्यर्थी साक्ष्यादिभिः स्वोक्ति समर्थनं कर्त्तुम् न शक्नुयात्तदा दण्ड्यः।

यदि वादी साक्ष्य आदि से अपने दावे का समर्थन करने में समर्थ न हो पाये तो तब वह दण्डनीय है।

न शक्नोति नियोगं स्वमर्थी साक्ष्यादिहेतुभिः।
समर्थयितुमेषः स्याद्राज्यदण्ड्यश्च प्रत्युत॥५४॥

मिथ्याभियोगी पक्षार्थं निह्नुते चेदमुं भयात्।
तदपि दण्ड्यतामायात् नियोगद्विगुणैर्धनैः॥५५॥

यदि अपने साक्ष्य आदि हेतुओं से वादी अपने नियोग (दावे) को प्रमाणित न कर सके तो बदले में वह राज्य द्वारा दण्डनीय है। यदि मिथ्या अभियोगी अथवा वादी भयवश छिपाता है तो वे दावे की दुगुनी राशि के दण्ड के पात्र हैं।

(वृ०) यदि नियमिताः साक्षिणोऽपि अनृतं वदन्ति तदा किं स्यादित्याह –

यदि शपथ-ग्रहण के पश्चात् भी साक्षी झूठ बोलते हैं तब क्या होना चाहिये, इसका कथन –

वादिनः साक्षिणोऽसत्यं वदेयुश्चेन्नृपाग्रतः।
दण्ड्याः पृथक् पृथक् रूप्यैर्यथाशक्ति यथाकुलम्॥५६॥

वादी के साक्षीगण यदि राजा के समक्ष असत्य बोलें तो उनको उनके कुल तथा शक्ति के अनुसार अलग-अलग राशि से दण्डित करना चाहिए।

(वृ०) प्रत्यर्थिसाक्षिणोऽपि असत्याः स्युस्तदा किं करोति मन्त्री तदाह–

यदि प्रतिवादी के साक्षी भी झूठे हों तो मन्त्री क्या करे, उसका कथन–

साक्षिणो वादिनः सत्या असत्याः प्रतिवादिनः।
इषुवेदाग्नि समिषं सव्ययं स्वं नृपोऽर्थिने॥५७॥

दापयेदृणिना द्रव्यं साक्षिणस्ते पृथक् पृथक्।
दण्डनीयाः पुनर्नैवादेयाः स्युः साक्षिकर्मणि॥५८॥

वादी के साक्षी सत्य और प्रतिवादी के साक्षी असत्य बोलने वाले हों तो वादी को पाँच, चार तथा तीन प्रतिशत ब्याज सहित दी जाने वाली राशि और साथ में (वाद का) व्यय भी ऋणी द्वारा दिया जाना चाहिए और उन साक्षियों को भी अलग-अलग दण्डित करना चाहिए। उन झूठे साक्षियों को पुनः साक्ष्य के काम में नहीं लेना चाहिए।

(वृ०) कश्चित्साक्षी कृत्यस्वरूपं जानन्नपि मूको भवेत्तदा किंकार्यमित्याह–

कोई साक्षी कृत्य – घटना के स्वरूप को जानता हुआ भी मूक रह जाता है तो क्या करना चाहिए, यह बताया –

यो नरः कूटसद्भावं जानन्नपि वदेन्न वै।
सः कूटसाक्षिवद्दण्ड्यो नृपेण शतरौप्यकैः॥५९॥

जो व्यक्ति (वाद का) खोटापन या यथार्थस्वरूप जानते हुए भी तथ्य नहीं बताता है राजा द्वारा उसे नकली साक्षी की भाँति सौ रुपये से दण्डित किया जाना चाहिए।

(वृ०) उभयसाक्षिणामसत्यत्वे नृपेण किंकार्यमित्याह –

वादी और प्रतिवादी दोनों के साक्षियों के झूठे हो जाने पर राजा को क्या करना चाहिए, इसका कथन –

उभयोः साक्षिणोऽसत्याश्चेदन्यैर्गुणवत्तमैः।
नृपेण निर्णयः कार्यः स्वाहूतैः साक्षिभिस्तदा॥६०॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशः कृत्येऽसत्यं वदन्ति चेत्।
दण्डयित्वा प्रवास्याश्च न शूद्रे साक्ष्ययोग्यता॥६१॥

यदि दोनों पक्ष के साक्षी झूठे हों तो राजा द्वारा स्वयं अन्य बुलाये गये उत्तम गुण वाले साक्षियों के द्वारा (वाद का) निर्णय करना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यदि साक्ष्य कार्य में असत्य बोलते हैं तो उन्हें दण्डित कर देश से निर्वासित कर देना चाहिए, शूद्र में साक्ष्य की योग्यता नहीं है।

(वृ०) अन्यसाक्षिणामभावे नृपेण किंकार्यमित्याह –

अन्य साक्षियों के न होने पर राजा को क्या करना चाहिए –

उभानुमतिमादाय कार्यः साक्षी स्वधर्मभृत्।
एक एव हि शुद्धस्तु गुणवान् सत्यवाक् शमी॥६२॥

वादी तथा प्रतिवादी दोनों का अभिप्राय लेकर न्यायाधीश पवित्र, गुणवान, सत्यभाषी, शान्त और कर्त्तव्यनिष्ठ एक साक्षी करे।

(वृ०) ननु सीमावादादिविषयेषु भूपस्वस्थापितसाक्षिभिर्निर्णयं कर्त्तुं शक्नोति अन्येषु च ऋणादानादिव्यवहारेषु साक्ष्यभावे लेखपत्राद्याभावे च कथं निर्णयं कुर्यादित्याह–

निश्चित रूप से सीमाविवाद आदि विषयों में राजा अपने स्थापित साक्षियों के द्वारा निर्णय करने में समर्थ है और दूसरे ऋणादान आदि व्यवहारों में साक्षी के अभाव में और पत्रादि के अभाव में कैसे निर्णय करे, यह बताया –

अर्थिप्रत्यर्थिनोः स्यातां साक्षिणौ चेन्न भूपतिः।
कृत्यतत्त्वमजानानः शपथं तत्र कारयेत्॥६३॥

तद्देववह्नियात्रापोगुरूणां नियमात्क्रमात्।
द्विजक्षत्रियवैश्येभ्यः शपथं कारयेत्ततः।।६४।।

यदि वादी तथा प्रतिवादी दोनों पक्ष के साक्षी न हों तो उन दोनों पक्षों के तत्त्व को न जानता हुआ राजा शपथ कराये। ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों से नियम से क्रमशः उनके देव, अग्नि, यात्रा, जल और गुरु की शपथ ग्रहण करनी चाहिए।

मासपक्षावधिं कृत्वा कारयेच्छपथं नृपः।
तज्जाधिव्याधिवह्न्यापोमरणं जायते न चेत्।।६५।।

लोकाधिकारिभिर्दिव्यं प्रमाणमिति मन्यते।
सत्यमंतर्भवेत्कष्टं तच्चेद्भवति चान्यथा।।६६।।

मास अथवा पक्ष की मर्यादा कर राजा शपथ दिलवाये, उस अवधि में शपथकर्त्ता को आधि, व्याधि, अग्नि और जल सम्बन्धी (पीड़ा) अथवा मरण यदि न हो तो अधिकारियों को उसे (पीड़ा को) दिव्य प्रमाण रूप मानना चाहिए। सत्ययुक्त हो तो ठीक है अन्यथा (झूठ होने पर) उसे अवश्य ही कष्ट होता है।

महीपालस्ततः सम्यक् परीक्ष्योभयसत्यताम्।
सभ्यसंमतिमादाय वदेज्जयपराजयौ।।६७।।

तत्पश्चात् राजा दोनों पक्षों की सत्यता का सम्यक् परीक्षण कर सदस्यों की सम्मति लेकर जय और पराजय के विषय में निर्णय दे।

इत्थं समासतः प्रोक्तो व्यवहारविधिक्रमः।
यस्य स्मरणमात्रेण मानवो वञ्च्यते न कैः।।६८।।

इस प्रकार संक्षिप्त रूप से व्यवहार विधि का क्रम कहा गया जिसके स्मरणमात्र से मनुष्य किसी के द्वारा ठगा नहीं जा सकता है।

।। इति व्यवहारकृतिप्रकरणम्।।

—o—

तृतीय अधिकार

३.२

ऋणादानप्रकरणम्

सुवर्णवर्णोऽभ्रनरेन्द्रसूनुः क्रौञ्चाङ्कितः[1] श्रीसुमतिर्जिनेन्द्रः।
ऋणप्रदानग्रहणाधिकारं प्रवक्तुकामं सुमतिं प्रदेयात्॥१॥

स्वर्ण सदृश वर्ण वाले, क्रौञ्च (पक्षी) के लाञ्छन वाले अभ्र राजा के पुत्र पाँचवें तीर्थङ्कर श्री सुमति ऋण देने और लेने (सम्बन्धी) अधिकार का प्ररूपण की इच्छा वाले मुझे सद्बुद्धि प्रदान करें।

(वृ०) तत्र किं नाम ऋणम् –

ऋण से क्या अभिप्राय है –

याचितेन धनिनाथ केनचित् दीयते सनियमं पराय यत्।
तदृणं निगदितं बुधैर्मिषलोभतः प्रतिदिनं सुवृद्धिकृत्॥२॥

माँगे जाने पर किसी धनवान द्वारा जो (धन) दूसरे को नियम सहित ब्याज के लोभ से एवं प्रतिदिन (धन में) वृद्धि के लिए दिया जाता है, विद्वानों द्वारा उसे ऋण कहा गया है।

तत्केन कदा ग्राह्यं तदाह –

ऋण किससे कब ग्रहण करना चाहिए, वह बताया –

[2]कुटुम्बावन[3]धर्मापन्मित्रा[4]द्यावश्यककर्मणि ।
निर्द्धने नान्यथावाप्तौ ऋणं ग्राह्यं च ऋक्थिनः॥३॥

परिवार के भरण-पोषण रूप धर्म में आपत्ति आने पर, मित्रादि का आवश्यक

---

१. क्रोञ्चाङ्कितम् भ १, क्रोञ्चकितम् भ २, क्रोञ्चाकितम् प २॥
२. कुटुंवावन भ १, कुटुंबाबन भ २, कुटंवावन प १, प २॥
३. धर्मावन भ १, प १॥
४. ०द्यावश्यकर्मणि भ १, प १, प २, ०द्यवश्यकर्मणि भ २॥

कार्य पड़ने पर, अन्य किसी प्रकार से धन न प्राप्त होने पर ऋणदाता से ऋण ग्रहण करना चाहिए।

प्रतिमासं मिषं दद्यात् वृद्धौ दुःखं महद्भवेत्।
पुनश्च नियते काले देयात्स्वं सोऽधमर्णकः।।४।।

ऋण लेने के पश्चात् प्रत्येक महीने ब्याज देना चाहिए, (ब्याज न देने से उसमें) वृद्धि होने पर महान् दुःख होता है और पुनः निश्चित किये गये समय में उस मूल धन को ऋण दाता को लौटा देना चाहिए।

काले व्यतीते नियते ह्युत्तमर्णेन याचितो।
अपि नो दद्यात्तदा ऋक्थी राजानं स्वं निवेदयेत्।।५।।

नियत काल व्यतीत हो जाने पर ऋणदाता द्वारा माँगने पर भी यदि (ऋणी) धन वापस नहीं दे तब ऋणदाता धन के लिए राजा से निवेदन करे।

(वृ०) धनी कया रीत्या द्रव्यं देयात् –

धनी किस रीति से धन दे –

अर्थी स्वनामयुक्लेखपत्रं प्रत्यर्थिनः पुरा।
स्वसाक्षिपितृपैतामहादिनामयुतं स्फुटम्।।६।।

लेखयित्वा धनी देयाद्रजतानि यथाविधि।
समिषं सप्रतिज्ञं च मिषं भिन्नं च वर्णशः।।७।।

वादी (धनवान् पुरुष) अपने नाम के लेख से युक्त पत्र में प्रतिवादी (ऋण लेने वाले के समक्ष) साक्षी, पिता, पितामह आदि के नाम स्पष्ट लिखवाकर विधि के अनुसार ब्याज सहित रजत मुद्रायें (धन उधार) दे। वर्ण के अनुसार ब्याज की दर भिन्न होती है।

तथाहि–

ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्रान् शुल्कलोभेन चेद्धनी।
देयाद्रौप्यान् लेखरीत्या द्वित्रिवेदेषु सम्मितम्।।८।।

मिषं वृद्धितया ग्राह्यं प्रतिमासं प्रतिज्ञया।
पुनश्चतुर्विधा प्रोक्ता सा वृद्धिः शक्त्यपेक्षया।।९।।

चक्रवृद्धिः स्मृता चाद्या कालिका कारिता तथा।
कायिका चेति विज्ञेया सर्वसंपत्प्रवर्द्धनी।।१०।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को धनवान् ब्याज के लोभ से क्रमशः दो,

तीन, चार और पाँच प्रतिशत ब्याज पर उपरोक्त रीति के अनुसार ऋण प्रदान करे। निर्धारित ब्याज प्रत्येक माह वृद्धि के साथ ग्रहण करना चाहिए। वह ब्याज-वृद्धि (कर्ज लेने वाले की) क्षमता के अनुसार चार प्रकार की कही गई हैं – प्रथमा चक्रवृद्धि, द्वितीया कालिका, तृतीया कारिता और चौथी कायिका कही गई है। इन चारों को सब प्रकार से सम्पत्ति में वृद्धि करने वाली जानना चाहिए।

आप्रतिज्ञान्तमेकापि न दत्ता चेद्वराटिका।
तदैकीकृत्य तां वृद्धिं तद्वृद्धिः प्रथमा मता।।११।।

नियत अवधि तक यदि (ब्याज राशि की) एक कौड़ी भी चुकाई नहीं गई हो तो उस (ब्याजराशि और मूल राशि) को जोड़कर उस (राशि) का ब्याज और पुनः ब्याज के ब्याज की गणना (प्रथम वृद्धि अर्थात् चक्रवृद्धि) कहा जाता है।

मासपक्षदिनेष्वेतद्व्रजतानामिमामहम् ।
वृद्धिं दास्यामि नियतां कालिका सा स्मृता बुधैः।।१२।।

नियत मास, पक्ष और दिनों में अमुक निश्चित धनराशि ब्याज के रूप में दूँगा, यह वृद्धि विद्वानों द्वारा कालिका वृद्धि कही गयी है।

[१]मासकृतप्रतिज्ञायां नो चेद्दास्यामि किञ्चन।
दास्यामि द्विगुणान् रौप्यानिति वृद्धिस्तु कारिता।।१३।।

नियत की गई मासावधि में यदि कभी राशि नहीं दूँगा तो उस मूल राशि का दुगुना दूँगा - इस प्रकार की वृद्धि कारिता कही जायेगी।

[२]कृतमासप्रतिज्ञोऽपि मिषं दातुमशक्नुयात्।
देहेन सेवां धनिनो वृद्धिः सा कायिका मता।।१४।।

मासावधि नियत करने के पश्चात् भी ब्याज देने में समर्थ न हो पाने पर ऋणी द्वारा धनी की शरीर से सेवा रूप वृद्धि कायिका कही गई है।

(वृ०) यदृणं गृहीत्वा देशान्तरं गच्छेत्तद्रीतिमाह –

कोई ऋण लेकर विदेश चला जाय तो क्या करना चाहिए, इसका कथन –

गृहीत्वार्णं[३] ऋणी गच्छेद्देशाद्देशान्तरं तदा।
आगतेऽब्दे मासवृद्धिरस्य द्विगुणा स्यादितिस्थितिः।।१५।।

यदि ऋण लेने वाला ऋण लेकर इस देश से दूसरे देश चला जाय तब

१. माषकृत भ १, भ २, प १, प २।।
२. कृतमाष० भ १, भ २, प १, प २।।
३. गृहीत्वार्णं प १, प २।।

(वापस) आने पर वर्ष में जो मास-वृद्धि हो उसका दुगुना ब्याज प्रत्येक मास ग्रहण करे ऐसी स्थिति हो।

(वृ०) स्वदेशस्थोऽपि ऋणी धनिना याच्यमानो धनं न देयाच्चेत्किं कुर्याद्धनीत्याह–

स्वदेश में होने पर भी धनी द्वारा माँगे जाने पर ऋणी धन वापस न दे तो धनी को क्या करना चाहिए, इसका कथन –

गत्वाभिप्रायसर्वस्वं राजानं प्रतिबोधयेत्।
तद्विवेच्य नृपः सभ्यैरुभावप्याह्वयेत्ततः।।१६।।

आदानाह्नो नियोगाहःपर्यन्त[१]मिषयुक् धनम्।
दापयेद्धनिने भूपः सव्ययं चाधमर्णकात्।।१७।।

देश में रहते हुए भी ऋणी द्वारा कर्ज न लौटाने की दशा में ऋणदाता सम्पूर्ण वृत्तान्त राजा से निवेदित करे, राजा सभासदों से उस पर विचार कर तत्पश्चात् (वादी और प्रतिवादी) दोनों को बुलवाये। प्रतिवादी द्वारा उधार लिये गये दिन से वाद के दिन पर्यन्त ब्याज सहित (मूल) धन एवं वाद के व्यय के साथ (समस्त राशि) धनवान को दिलवाये।

(वृ०) आधिभेदेन वृद्धिभेदानाह –

आधि के भेद से ब्याज में वृद्धि का कथन –

हिरण्यधान्यवस्त्राणां द्वित्रितुर्यगुणा स्मृता।
धीवृद्धिर्धनिना सर्वं वस्तुरक्ष्यं प्रयत्नतः।।१८।।

स्वर्ण, धान्य और वस्त्र की स्थापना में क्रमशः दो गुना, तीन गुना और चार गुना ब्याज लेना चाहिए और धनवान द्वारा सभी वस्तुओं की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।

यो शक्तो पालितुं नैव मानवो गोधनं स्त्रियम्।
[२]चाधिं रक्षेद्यदातौ च वृद्धिं दास्यत्यनेकशः।।१९।।

जो मनुष्य, गोधन और स्त्री का पालन करने में असमर्थ हो और कोई (अन्य) उसकी रक्षा करे तो अनेक गुना ब्याज दे।

(वृ०) हिरण्याद्याधौ क्रमशो द्विगुणा त्रिगुणा तुर्यगुणा वृद्धिर्दातव्या धनिना सर्वं धनं यत्नतो रक्षणीयं गो महिष्यादिकं स्त्रियं वा पालितुमशक्तः सन्

---

१. माषयुक् प १, प २।।
२. चाधिरक्षे० प १, प २।।

कस्यचिदाधिं रक्षेत्तदानेकधा मिषं देयं इत्यर्थायत्तमोचनकाले मूलद्रव्यं दत्वा गवाद्याधिं मोचयेत् तदा तद्वृद्धिं मिषतया देयात् स्त्रीसन्ततिवृद्धौ तु पुत्रं देयात् न कन्यां मूल्यं दत्वा मोचयेत् स्त्रियं कायेन धनोऽनुचर्या कृत्वा स्वात्मानं मिषदानतो मोचयेत्।

सुवर्ण आदि आधि पर दोगुना, तीनगुना, चारगुना ब्याज देना चाहिए। धनी द्वारा सम्पूर्ण धन का यत्नपूर्वक रक्षण करना चाहिए। गाय, भैंस आदि अथवा स्त्री को पालने में असमर्थ होते हुए किसी आधि की रक्षा करे तब अनेक गुना ब्याज देना चाहिए। जो स्थापना मुक्त कराते समय मूल धन देकर गाय आदि की स्थापना मुक्त करावे तो ब्याज के रूप में यह वृद्धि दे। स्त्री की सन्तति के सम्बन्ध में वृद्धि के रूप में पुत्र देना चाहिए कन्या नहीं। मूल्य देकर स्त्री को मुक्त कराना चाहिए। शरीर से धनी की सेवा कर ब्याज देकर स्वयं को मुक्त कराना चाहिए।

नन्वाधिद्रव्यं चौरैर्हृतं चेद्भूपो निश्चित्य चौरेभ्यस्तद्धनं दापयेत्।

यदि आधि द्रव्य चोरों द्वारा चुरा लिया गया है तो राजा निश्चय कर चोरों से वह धन दिलाये।

यद्यशक्तस्तदा स्वकोषाद्दापयेत् –

यदि राजा चोरों से धन दिलाने में असमर्थ है तो अपने कोष से दिलवाये –

प्रत्याहर्त्तुमशक्तश्चेच्चौराद्भूपो हि यद्धनम्।
स्वकोषात्तन्मितं द्रव्यं युक्तं दातुं च ऋक्थिनः॥२०॥

यदि राजा चुराया गया धन चोर से वापस लेने में असमर्थ हो जाये तो उसके बराबर धन अपने कोष से ऋण लेने वाले को देना उचित है।

(वृ०) प्रीतिदत्तर्णस्य वृद्धिर्न भवति इत्याह –

परस्पर सुहृत् सम्बन्धों में प्रदत्त ऋण की वृद्धि न हो, इसका कथन–

प्रीत्या दत्तं तु यद्द्रव्यं वर्द्धते नैव तत्कदा।
याचिते वर्द्धते दत्तं प्रतिमासं मिषक्रमात्॥२१॥

प्रीति वश दिये गये धन पर कभी ब्याज नहीं होता, लेकिन यदि धन माँगने पर दिया गया है तो प्रत्येक माह ब्याज के क्रम से धन में वृद्धि होती है।

(वृ०) पितृऋणम् पुत्रैर्देयमिति नियततया क्लीबत्वादिदोषयुक्तानामपि ऋणदातृत्वप्रसङ्गे तद्वारणायाह –

पिता का ऋण पुत्र को देना चाहिए – यह नियम होने से नपुंसक आदि दोष से युक्त पुत्रों के ऋण देने के प्रसङ्ग में उनका निवारण करने हेतु कहा –

सत्सु पुत्रेषु तेनैव ऋणं देयं सुतेन च।
येन पितृवसु प्राप्तं क्लीबान्धबधिरादिषु।।२२।।

कई पुत्रों के होने पर उन्हीं पुत्रों द्वारा ऋण देय है जिससे नपुंसक, अन्धे, बधिर आदि भाइयों में पिता का धन प्राप्त हो।

(वृ०) अविभक्तभ्रातृभिर्दम्पत्या पितृपुत्राभ्यां वावश्यककृत्यार्थमृणं सर्वानुमत्यैव ग्राह्यं विभक्तेभ्यस्तु धनी प्रातिभाव्यतयैव देयात् तदाह –

अविभाजित भाइयों, दम्पति (स्त्री-पुरुष) अथवा पिता-पुत्र आदि को आवश्यक कार्य हेतु ऋण सबकी अनुमति से ग्रहण करना चाहिए और विभक्त होने पर धनी को ऋणी की (धन वापस कराने की जमानत पर) धन देना चाहिए, इसका कथन–

भ्रातृणामाविभक्तानां दम्पत्योः पितृपुत्रयोः।
ऋणलाभस्त्वेकमत्या विभक्ते प्रातिभाव्यतः।।२३।।

भाइयों में विभाजन न होने पर पति, पत्नी और पिता-पुत्र को सहमति से ऋण लेना चाहिए और यदि विभाजन हो चुका हो तो प्रतिभूति (धरोहर) रूप में रखकर ऋण प्राप्त करना चाहिए।

(वृ०) अविभक्तानां ऋणलाभः सर्वानुमत्या स्यात् विभक्तानां तु प्रातिभाव्यतः। दीनत्वादिति लाभः, इति दानस्याप्युपलक्षणम् –

(परस्पर विभाजन न हुआ हो ऐसे) अविभक्तजनों को ऋण सबकी अनुमति से लेना चाहिए जबकि विभक्त होने पर धरोहर के अनुसार ऋण लेना चाहिए। निर्धनता के कारण दिये गये धन को लाभ की संज्ञा दी गई है, इस प्रकार यह दान का भी उपलक्षण है –

किं नाम प्रातिभाव्यमित्याह –

प्रातिभाव्य या जमानतदार क्या है –

प्रतिभूः सदृशस्तस्य भावस्तद्धर्मशक्तिता।
प्रातिभाव्यं त्रिधा प्रोक्तं दृष्टिप्रत्ययदानतः।।२४।।

प्रतिभू के सदृश उसका भाव, धर्म और शक्ति, प्रतिभूति दृष्टि, प्रत्यय और दान रूप तीन प्रकार की कही गई है।

दर्शने यथा यस्मिन् काले त्वमेनं याचयिष्यसि तदेवैनं दर्शयिष्यामि इति।

प्रतिभूति या जमानत लेने वाला (यह विश्वास दिलाये) जिस समय तुम ऋणी को माँगोगे उसी समय ऋणी को दिखा (समक्ष प्रस्तुत कर) दूँगा ऐसा दृष्टि प्रतिभू है।

प्रत्यये यथा अयमेतत्पुत्रः सपुत्रः कुलीनोऽस्तीति मत्प्रत्ययेनास्मै यथायाञ्चां द्रव्यं प्रयच्छायं त्वां कदापि न वञ्चयिष्यत इति।

प्रत्यय प्रतिभू (प्रतिभू का वह प्रकार है) जैसे यह इस (अमुक व्यक्ति) का पुत्र है, यह पुत्रवान है, उत्तम परिवार का है मेरे विश्वास पर इसे माँग के अनुसार द्रव्य दें, यह तुम्हें कभी ठगेगा नहीं इस प्रकार आश्वासन देना।

दाने यथा त्वमेनं प्रति किञ्चिद्याचसे अयं दास्यति शीघ्रमेव अन्यथैतत्कालेऽहं दास्यामि इति।

दान प्रतिभू जैसे तुम इस (ऋणी) से कुछ माँगते हो तो यह शीघ्र देगा अन्यथा इस समय तक मैं स्वयं दूँगा (इस प्रकार कहने वाला) दान प्रतिभू है।

किञ्च –

गृहीतद्रव्यो निःस्वश्चेत् प्रतिभूर्धनवान्सदा।
मूलं दत्वैव सर्वं तत्कुर्यात्तं निर्ऋणं तथा।।२५।।

यदि ऋण लेने वाला निर्धन हो प्रतिभू धनवान् हो तो समस्त मूलधन देकर ही ऋण लेने वाले को ऋणमुक्त करना चाहिए।

ऋणी यदि निःस्वः प्रतिभूः धनवान्तदा सर्वमूलं दत्वैव तं ऋणिनं निर्ऋणं कुर्यादिति भावः।

ऋणी यदि निर्धन और प्रतिभू धनवान हो तो सम्पूर्ण मूलधन लौटाकर ही उस ऋणी को मुक्त कर देना चाहिए – यह अभिप्राय है।

यदि एकस्मिन् कृत्ये बहवः प्रतिभुवस्तदा स्वस्वांशानुसारेण द्रव्यमेकीकृत्य धनिनं दद्युः।

यदि एक कृत्य (ऋण) के बहुत से जमानत वाले हैं तब अपने-अपने अंश के अनुसार धन एकत्र कर ऋणदाता को दें।

एककृत्ये प्रतिभुवः बहवः स्युः परस्परम्।
स्वस्वशक्त्यनुसारेण धनिने दद्युरेकशः।।२६।।

यदि कार्य (ऋण) एक हो और प्रतिभूतियाँ बहुत हों तो आपस में मिलकर अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार ऋणदाता को धन एकबार में वापस कर देना चाहिए।

(वृ०) दर्शनप्रतिभूर्धनितृप्तये कृतकालावधेर्ऋणिनो देशान्तरगतत्वात्तदन्ते तं दर्शयितुमशक्तश्चेद्धनी तस्माद्रजतानि गृह्णीयात्तद्युक्तं परं न्यायरीत्या पक्षत्रयावधिं पुनर्दद्यात्तदवधौ प्रतिभूस्तं दर्शयेत्तदा प्रातिभाव्यत्वेन मुक्तो भवेत् अन्यथा रजतानि देयादेव।

दर्शनप्रतिभू ऋणी के देश से बाहर चले जाने पर ऋणदाता की सन्तुष्टि के लिए ऋण वापस करने की अवधि पूरी होने पर प्रतिभू द्वारा उसे प्रस्तुत करने में असमर्थ होने पर प्रतिभू से रजतमुद्रा (धन ग्रहण करे)। परन्तु न्यायपूर्वक तीन पक्ष की अवधि पुनः दे और इस अवधि में प्रतिभू यदि ऋणी को दिखा दे (प्रस्तुत कर दे) तो प्रातिभाव्य से मुक्त हो जाय नहीं तो प्रतिभू को धन देना ही पड़ेगा।

तथाहि –

प्रतिभूरधमर्णार्थं गृह्यात्पक्षत्रयं प्रभोः।
दर्शयित्वा स्वयं काले मुक्तः स्वोक्तेर्भवेदलम्।।२७।।

यदि प्रतिभू ने ऋणी को दिखलाने (प्रस्तुत करने) के लिए तीन पक्ष का समय माँगा हो निश्चित अवधि में उस (ऋणी) को दिखलाकर अपने वचन से पूर्णतया मुक्त हो जाए।

आधिविषयमुच्यते

विश्रम्भाय प्रभोर्वस्तु दत्वा गृह्णाति रौप्यक्यान्।
स आधिर्द्विविधः प्रोक्तो नियतेतरभेदतः।।२८।।

गोप्यभोग्यतया सोऽपि द्विविधः सम्प्रकीर्तितः।
वर्द्धिष्णिवतरभेदाभ्यां पुनः सो द्विविधः स्मृतः।।२९।।

(आधि का वर्णन) ऋणदाता के विश्वास के लिए (ऋण के बदले) वस्तु प्रदान कर ऋण ग्रहण करता है इसे आधि कहा जाता है, यह नियत और अन्य दो प्रकार की होती है। रक्षा योग्य और भोग्य होने से भी वह दो प्रकार की होती है। वृद्धि को प्राप्त होने वाली और उससे भिन्न की दृष्टि से भी वह दो प्रकार की होती है।

(वृ०) प्रभोर्विश्वासार्थे यद्वस्तु धनिनिकटे स्थाप्यते स आधिर्नियतोऽनियतश्चेति द्विविधोऽपि गोप्यभोग्यभेदेन द्विविधः यथायमाधिर्वैशाखशुक्लसप्तम्यां रजतान् दत्वा मोचयिष्यतेऽन्यथा तवैवेति नियतः। स्वेच्छयैव गृह्यते सोऽनियत एव। गोप्यस्तु हैमरजत रत्नादिको भोगानर्हो नियतकालान्ते प्रणश्येत् भोग्यः।। क्षेत्रारामादिर्न नश्यति तस्य त्रिंशद्वर्षावधित्वात् –

प्रभु – ऋणदाता के विश्वास के लिए उसके समीप जो वस्तु स्थापित की जाती है वह आधि नियत या अनियत दो प्रकार की कही जाती है। गोप्य और अभोग्य के भेद से भी यह दो प्रकार की होती है। उदाहरणस्वरूप वैशाख शुक्ला सप्तमी तक रुपये देकर यह आधि मुक्त कराऊँगा अथवा आपकी ही हो जायगी, यह नियत आधि है। ऋणदाता स्वेच्छा से आधि ग्रहण करे यह अनियत आधि है।

स्वर्ण, रजत और रत्नादि गोप्य आधि है जो भोग्य योग्य नही पर रक्षणीय है। जो आधि निश्चित अवधि में नष्ट हो जाती है वह भोग्य आधि है। खेत, उपवन आदि नष्ट नहीं होते हैं उसकी भोग की अवधि तीस वर्ष की होती है।

आधिस्तु नैव भोक्तव्यो भुक्ते तु वृद्धिहानिता।
गोप्यस्य नियते कालेऽतीते स्वामी धनी भवेत्।।३०।।

नष्टे तु मूल्यं देयं स्याद्दैवभूपापदं विना।
भोग्यस्यावधिपूर्तौ च ऋक्थी स्वामी न जायते।।३१।।

ऋण दाता को आधि में प्राप्त वस्तु का भोग नहीं करना चाहिए। (आधि का) भोग करने पर ब्याज की हानि होती है। गोप्य का नियत अवधि व्यतीत हो जाने पर धनवान् (उस वस्तु) का स्वामी हो जाता है। आधि के रूप में प्राप्त वस्तु के नष्ट हो जाने पर धनवान् को उसका मूल्य ऋण लेने वाले को वापस करना चाहिए बशर्ते कि वह दैविक और राजकीय कारणों से आकस्मिक रूप से नष्ट न हुई हो। भोग की अवधि पूर्ण हुए बिना धनवान् व्यक्ति उस वस्तु का स्वामी नहीं बन सकता।

(वृ०) आधिवस्तुनि भुज्यमाने ऋणिना दृष्टे वृद्धिहानिः।

आधि (के रूप में प्राप्त) वस्तु का उपभोग करते हुये ऋणी द्वारा देखे जाने पर ब्याज की हानि होती है।

तन्नाशे तु तन्मूल्यं धनिना देयमेव।

उस (आधि के रूप में प्राप्त वस्तु) के नष्ट हो जाने पर उसका मूल्य धनवान द्वारा (ऋण लेने वाले को) अवश्य ही देय है।

यदि तन्नाशे दैवभूवपापत्कारणं न स्यात्।

यदि उस (वस्तु) के नष्ट होने में देव और राजा कारण न हो।

गोप्यस्य हेमरजताद्यर्थस्य नियतकालव्यतिक्रान्तौ धनी स्वामीः स्यात्।

गोप्य अर्थात् आधि रूप में निक्षिप्त स्वर्ण-रजत आदि सम्पत्ति का (ऋण वापसी की) नियत अवधि समाप्त हो जाने पर धनवान् स्वामी हो।

भोग्याधेः स्थावरधनस्य त्ववधिसमाप्तावपि धनी स्वामी न भवति जंगमस्य तु भवत्येवेति विशेषः। यदि केनचिदृणिना क्षेत्रमाधिं कृत्वा धनिनो रजतानि गृहीतानि पुनर्दैवयोगेन तत्क्षेत्रं नद्याद्यपहृतं तदा ऋणिनान्य आधिः स्थापनीयोऽन्यथा रजतानि देयादित्याह।

नद्या भूपेन वा क्षेत्रं हृतं चेदृणिना पुनः।
आधिरन्यः प्रदेयो वा दीनत्वे धनिने धनम्।।३२।।

स्वक्षेत्रविषये वादो न कार्यः ऋणिना कदा।
धनिनो नापराधोऽत्र स्वकर्मफलमेव तत्।।३३।।

(आधि के रूप में धनवान् को प्रदत्त) खेत यदि नदी द्वारा हर लिया जाय अर्थात् खेत, नदी की धारा में विलीन हो जाय अथवा राजा द्वारा अधिग्रहण कर लिया जाय तो (ऋण लेने वाला) दूसरा (खेत) प्रदान करे अथवा गरीब होने पर (खेत न होने पर) धनी को धन देना चाहिए। (नदी के कारण अथवा राजा के कारण खेत नष्ट होने पर) अपने खेत के विषय में ऋणी को कभी वाद नहीं करना चाहिए, इसमें धनी का अपराध नहीं है, अपने कर्म का ही फल है।

अन्यच्च –

पुराणतीर्थयात्रादिबन्धकान्तमृणी धनम्।
प्रतिमासं मिषं दत्वा काले द्रव्यं समर्पयेत्।।३४।।

यदि ऋणी पुराण (श्रवण), तीर्थयात्रा आदि (समाप्त होने पर ऋण लौटाने हेतु वचन) बद्ध है तो प्रत्येक महीने ब्याज देकर समय पर मूलधन (ऋणदाता को) वापस कर देना चाहिए।

(वृ०) पुराणतीर्थयात्रादिबन्धकगृहीतधनं ऋणी समिषं देयादेव। यदि कश्चित् प्रपञ्चे नाधिं गृहीत्वा रजतनियुक्तलेखं च कारयित्वा रौप्यान्न ददाति तदा ऋणी किं कुर्यादित्याह –

यदि ऋणदाता ऋणी से छलपूर्वक आधि को ग्रहण कर ले और शपथपत्र भी लिखवा ले परन्तु ऋण न दे तो ऐसी स्थिति में ऋणी को क्या करना चाहिए, इसका कथन –

ज्ञापयित्वा तदुदन्तमृणी भूपाधिकारिणम्।
गृह्णीयादाधिलेखं स्वं सो दण्ड्यः शतरौप्यकैः।।३५।।

उस समय ऋणी को चाहिए कि वह राज्याधिकारियों को सूचित कर अपना आधि और लेख प्राप्त कर ले। वह धनी सौ रुपये के दण्ड का पात्र है।

(वृ०) ऋणविषये मिषग्रहणप्रकारमाह–

रजतशते दत्ते खलु रौप्ययुगं ग्राह्यमेव मिषवृद्धौ।
प्रतिमासं दत्तं चेन्मिषं तदा मूलमवधौ च।।३६।।

ऋणी को सौ रुपया देने पर प्रत्येक मास ब्याज वृद्धि के रूप में दो रुपया ग्रहण करना चाहिए। यदि ब्याज प्रतिमास दिया हुआ है तो निश्चित समय पर मूलधन वापस करना चाहिए।

(वृ०) आधिविषये कथं मिषं ग्राह्यमित्याह –

सौवर्णं राजतं चाधिं लात्वा चेद्रौप्यमुत्सृजेत्।
राजतेऽर्द्धांशमादेयं सौवर्णे तुर्यमंशकम्।।३७।।

यदि स्वर्ण और चाँदी का आधि लेकर रुपया दिया हो तो चाँदी का (आधि रहने पर) आधा रुपया और सोना का (आधि रहने पर) चौथाई रुपया ब्याज लेना चाहिए।

(वृ०) अधमर्ण आवश्यककार्यवशेन मुद्राद्वयं दत्वा शतमुद्रा गृह्णाति तत्कृत्ये राज्यगते उक्तमिषमेव दास्यति तथाहि –

अधमर्णः स्वयं लाति मिषमुक्ता ततोऽधिकम्।
नृपान्तिकं गतवादे तूत्तमर्णनिरूपणात्।।३८।।
नृपो लेखं निरीक्ष्यैव [1]विवेच्य सहसाकृतिम्।
न्यायादुक्तमिषं चैव दापयेदधमर्णकात्।।३९।।
गोऽजाविमहिषीदासाश्चाधिं कृत्वा गृहीतर्णः।
पुनर्दातुमशक्तश्चेन्न याचेताधिमृक्थिनः।।४०।।

ऋणी (यदि) स्वयं उस उपरोक्त नियत से अधिक ब्याज कहकर धन लाता है तो राजा के पास वाद के पहुँचने पर राजा लेख का निरीक्षण और कृत्य का विवेचन कर न्यायपूर्वक कथित ब्याज को ही ऋणी से दिलवाये। गाय, बकरी, अवि, भैंस और दास को आधि देकर ऋणी रुपया ले और पुनः (ऋण) वापस करने असमर्थ हो जाय तो ऋणदाता से आधि न माँगे।

गवाद्याधिविक्रयमाह –

पूर्णेऽवधौ पुनः प्राप्ते वित्ते गृह्णाति ऋक्थिनो।
अधमर्णस्थापितं यावत्तावद्गृह्णाति सर्वशः।।४१।।
धनी नो दद्याद् वृद्धिं तु ऋणी गृह्णाति नैव ताम्।
भक्ष्यमूल्ये प्रदत्तेऽपि नैव दद्याद्धनी तकाम्।।४२।।

जब अवधि पूर्ण हो जाने पर पुनः ऋणी के पास धन हो जाने पर धनवान धन ग्रहण करता है तब ऋणी अपनी स्थापित सब आधि ग्रहण कर लेता है। धनवान् यदि वृद्धि (अर्थात् आधि रूप गाय, भैंस के बछड़े आदि सहित) ऋणी को न दे तो वह उसे ग्रहण न करे। साथ ही यदि ऋणी ने चारे आदि का मूल्य दिया हो तो वह धनी को न दे।

---

१. विवेच्य भ १, भ २, प १, प २।।

सप्रतिज्ञं धृतं यच्चेत् गोमहिष्यादिकं वसु।
रौप्यान्दत्वा गृहीष्यामि पूर्णे काले तवैव तत्।।४३।।

यदि ऋणी इस प्रतिज्ञा के साथ गाय, भैंस आदि धन (आधि रूप में) स्थापित करता है कि अवधि पूर्ण होने पर रुपया देकर ही उसे ग्रहण करूँगा।

यदि ऋण्याधिश्चौरैर्ह्रियते तदा धनी तन्मौल्यं ऋणिनो देयात् तदाह –

मध्ये तत्र हृते चौरैर्गोधनस्तूत्तमर्णिकः।
तन्मौल्यं सकलं दत्वा स्वमादत्तेऽधमर्णकात्।।४४।।

अवधि के मध्य में ही (आधि रूप) स्थापित गोधन का चोरी हो जाने पर धनी व्यक्ति उसका सम्पूर्ण मूल्य चुकाकर ऋणी से अपना धन ग्रहण कर लेता है।

वस्त्राधिविषयमाह –

न भोक्तव्योंऽशुकाद्याधिर्धनिना सुखमिच्छता।
अन्यथा मौल्यं प्रदेयं स्यान्मिषहानिर्भवेत्पुनः।।४५।।

ऋक्थी वासांसि भूषांश्च भुङ्क्ते चेदाधिरूपतो।
दृष्ट्वा ऋणी न वक्तीति न तदा मौल्यामाप्नुयात्।।४६।।

धनवान सुख की इच्छा से (आधि रूप स्थापित) वस्त्रादि का उपभोग न करे अन्यथा उसका मूल्य देय होगा और पुनः ब्याज में भी हानि होगी। धनी द्वारा वस्त्रों, आभूषणों आदि का उपभोग करने पर यदि सामने देखकर ऋणी कुछ नहीं बोलता है तब वह मूल्य न ले।

क्षेत्रग्रामतडागादि बालस्वं दासदासिका।
भुज्यमाना नश्यन्ति तद्वृद्धिर्धनिनः स्मृता।।४७।।

खेत, ग्राम, तालाब आदि, वाड़ी रूप धन, दास, दासी उपयोग में लाने पर नष्ट नहीं होते हैं उनकी वृद्धि धनी की वृद्धि कही गई है।

धान्याविषयमाह –

प्रतिमासं धान्यवृद्धिः प्रस्थयुग्मं मणं प्रति।
प्रतिज्ञान्ते न शक्नोति दातुं वृद्धिमृणं च चेत्।।४८।।

पुनर्वृद्धेश्च वृद्धिः स्यान्मध्ये किञ्चिद्ददाति नो।
सार्द्धवर्षे व्यतीते तु तद्धान्यं द्विगुणं भवेत्।।४९।।

(ऋण के रूप में लिए हुए) धान्य पर दो प्रस्थ प्रतिमास प्रत्येक मन पर ब्याज लेना चाहिए। प्रतिज्ञा के अनुसार यदि ऋणी ब्याज देने में समर्थ न हो और मध्य

में कुछ न दिया हो तो पुनः वृद्धि की वृद्धि हो और डेढ़ वर्ष बीत जाने ऋण लिया हुआ धन दो गुना हो जाता है।

(वृ०) मृते स्वामिनि तत्पुत्र ऋणं देयादित्याह –

स्वामी की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र ऋण का भुगतान करे, इसका कथन –

मृते स्वामिनि तत्पुत्रो लेखं दृष्ट्वाधमर्णकः।
स्वतातकरमुद्राङ्कं द्रव्यमृक्थिनमर्पयेत्।।५०।।

स्वामी के मरने पर उसका पुत्र पिता के हाथ के मुद्राङ्कित लेख को देखकर धनवान को धन वापस करे।

(वृ०) मद्यादिकृतर्णं पुत्रैर्न देयमित्याह –

पिता द्वारा मद्यपान हेतु ग्रहण किये गये ऋण को पुत्र द्वारा नहीं वापस करना चाहिए–

सुराकैतवद्यूतार्थं परस्त्रीहेतुकं तथा।
ऋणं पितृकृतं पुत्रो देयान्नैव कदाचन।।५१।।

आर्तातिवृद्धबालास्वाधीनोन्मत्तकमद्यपैः ।
याच्यते ऋणं नैव धनी दद्यात्कदापि तान्।।५२।।

मद्य (पान), ठगाई (एवं), द्यूत के लिए तथा परायी स्त्री के लिए पिता द्वारा किया गया ऋण पुत्र को कभी नहीं वापस करना चाहिए। रोगी, अतिवृद्ध, बालक, पराधीन, उन्मत्त, मद्यपान करने वालों के द्वारा यदि ऋण माँगा जाता है तो कभी धनी उनको ऋण न दे।

(वृ०) कुटुम्बपालननिमित्तं पितृकृतमृणं तन्मृतौ पुत्रैरेव देयमित्याह–

परन्तु कुटुम्ब पालन हेतु पिता द्वारा लिया गया ऋण पुत्रों के द्वारा देय है, इसका कथन–

कुटुम्बार्थं कृतं पित्रा ज्येष्ठभ्रात्रा ऋणं यदि।
तयोर्मृत्यौ समत्वेन दद्युस्ते सर्वबान्धवाः।।५३।।

यदि पिता या ज्येष्ठ भ्राता द्वारा परिवार के लिए ऋण लिया गया है तो उन (दोनों की) मृत्यु होने पर सभी भाई बराबर हिस्से में ऋण चुकायें।

(वृ०) विभक्ता वा अविभक्ता वा इति शेषः।

चाहे विभाजन हुआ हो अथवा नहीं हुआ हो।

स्वाम्यसत्वे दासकृतं ऋणं स्वामी देयादित्याह –

स्वामी की अनुपस्थिति में दास द्वारा किये गये ऋण को स्वामी वापस करे, इसका कथन –

प्रभ्वसत्वे कुटुम्बार्थमृणं दासेन यत्कृतम्।
तत्स्वामी वितरेत्सर्वं समिषं च ससाक्षिकम्॥५४॥

स्वामी की अनुपस्थिति में कुटुम्ब के लिए दास द्वारा जो ऋण लिया गया है उसे स्वामी ब्याज सहित और साक्षी के सम्मुख वापस करे।

(वृ०) बलेन कारितं लेखं व्यर्थमित्याह –

बलपूर्वक कराया गया लेख व्यर्थ है, यह कथन –

ऋक्थिनो[१] स्वगृहे कस्माद्गुप्तं लेखं न कारयेत्।
भूम्याद्याधियुतं दत्तं सर्वं तच्च वृथा भवेत्॥५५॥

धनवान अपने घर में कोई गुप्त लेख न कराये भूमि आदि आधि से युक्त जो कुछ भी दिया गया वह व्यर्थ हो जाता है।

(वृ०) योग्यं त्यक्त्वायोग्यं गृह्णन् भूपो निन्द्यो भवतीत्याह –

योग्य का त्यागकर अयोग्य का ग्रहण करने वाला राजा निन्दनीय होता है – यह बताया –

न गृह्णीयादनादेयं क्षीणशक्तिरपि प्रभुः।
समृद्धोऽपि न चादेयमल्पमप्यर्थमुत्सृजेत्॥५६॥

ग्राह्यस्याग्रहणाद्भूयोऽग्राह्यस्य ग्रहणादपि।
लोके निन्दामवाप्नोति प्रत्युतो निर्धनो भवेत्॥५७॥

शक्तिहीन होने पर भी स्वामी अदेय (ग्रहण न करने योग्य) वस्तु ग्रहण न करे और समृद्ध होने पर भी अदेय थोड़ी भी वस्तु का त्याग न करे। ग्रहण करने योग्य वस्तु के ग्रहण न करने और ग्रहण न करने योग्य वस्तु के ग्रहण करने से संसार में निन्दा होती है और उल्टे निर्धन होता है।

(वृ०) स्थानमार्गविषयमाह –

स्थान-मार्ग के विषय में कथन –

द्वारमार्गविवादेषु जलश्रेणिप्रवृत्तिषु।
भुक्तिरेव हि गुर्वी स्यान्न दिव्यं न च साक्षिता॥५८॥

सर्वार्थाभिनियोगे च बलिष्ठा पूर्वजा क्रिया।
आधौ प्रतिग्रहे कुप्ये साक्षिणां च प्रधानता॥५९॥

---

१. ऋक्थीनो प १॥

द्वार एवं मार्ग सम्बन्धी विवाद और जल निकासी के सम्बन्ध में भोग ही सशक्त पक्ष है शपथ आदि या साक्ष्य नहीं। सभी प्रकार की सम्पत्तियों के विवाद के निर्णय में पूर्वजों के समय से चली आ रही क्रिया बलवती होती है जबकि आधि, प्रतिग्रह और कूप्य के निर्णय में साक्षी को प्रधानता दी जाती है।

(वृ०) यथा केनचिदेकं क्षेत्रं कस्यचित्पार्श्वे आधिं कृत्वा द्रव्यं गृहीतं पुनरन्यत्र तदेवाधिः कृतः पुनः कालान्तरे कारणवशाद्विग्रहोत्पत्तौ जातेऽभियोगे भूपः साक्ष्यादिभिः पूर्वापरनिर्णयं कृत्वा पूर्वस्य एव द्रव्यं दापयेत् भुक्तिप्रामाण्याऽवसरे तु यथाशास्त्रं विधेय- मित्याह –

जिस प्रकार कोई एक क्षेत्र किसी के पास आधि रखकर धन ग्रहण कर लिया फिर वही क्षेत्र अन्यत्र आधि के रूप में रख दिया। पुनः कालान्तर में कारणवश कलह उत्पन्न होने पर वाद समक्ष आने पर राजा साक्ष्य आदि द्वारा पहले और पश्चात् का निर्णय कर पहले वाले को ही द्रव्य दिलवाये। आधि के भोग (उपयोग) के प्रमाण की स्थिति में शास्त्र के अनुरूप न्याय करना चाहिए, इसका कथन –

परेण भुज्यमाने ज्यां पश्यन्यो न निषेधते।
विंशत्यब्देषु पूर्णेषु ऋणी प्राप्नोति नैव ताम्॥६०॥

अन्य के द्वारा अपनी भूमि का उपयोग देखते हुए भी जो नहीं रोकता है बीस वर्ष पूर्ण हो जाने पर ऋणी उसे नहीं पाता है।

हस्त्यश्वादिधनस्यापि मर्यादा दशवार्षिकी।
ततः परं न शक्तः स्यादवाप्तुं तद्धनं प्रभुः॥६१॥

हाथी, घोड़े आदि धन की भी मर्यादा दस वर्ष की होती है उसके पश्चात् उस धन को प्राप्त करने में स्वामी समर्थ नहीं होता॥

(वृ०) आधिनिह्नवकर्त्ता मौल्यदो दण्ड्यश्चेत्याह –

आधि को छिपाने वाले को मूल देना पड़ेगा और दण्ड भी देना पड़ेगा, यह कथन–

आध्यादिद्रव्यं यो लोभान्निह्नुते साक्षिनिर्णये।
ऋणिने दापयित्वा तन्मौल्यं दण्डयेन्नृपः॥६२॥

प्रतिभूति रूप धन को यदि धनवान छिपाता है तो साक्षी के निर्णय से धन ऋणी को दिलवाकर राजा (धन के मूल्य के बराबर) उसे (धनवान को) दण्डित करना चाहिये।

(वृ०) पैतामहार्जितवस्तुविषयमाह – पितामह द्वारा अर्जित वस्तु (सम्पत्ति) के विषय में कथन –

पैतामहार्जिते वसौ साम्यं वै पितृपुत्रयोः।
राज्ये नियोगे पितरं वारयेत्तत्कृतौ सुतः।।६३।।

पितामह द्वारा अर्जित धन में पिता और पुत्र दोनों का बराबर अधिकार है राज्य में नियोग करते पिता को पुत्र रोक सकता है।

इति संक्षेपतः प्रोक्तः ऋणादानक्रमो ह्ययम्।
विस्तारो बृहदर्हन्नीतिशास्त्रे वर्णितो भृशम्।।६४।।

इस प्रकार संक्षेप में यह ऋण ग्रहण क्रम वर्णित किया गया। बृहदर्हन्नीति शास्त्र में यह अत्यन्त विस्तार से वर्णित है।

।। इति ऋणादानप्रकरणम्।।

—o—

तृतीय अधिकार

३.३

सम्भूयोत्थानप्रकरणम्

पूर्वप्रकरणे ऋणादानं प्रपञ्चितं तल्लब्धधनाश्चानेकेप्येकीभूय व्यवहाराद्यपि कुर्वन्ति इति सम्भूयोत्थानं विरच्यते –

पूर्व प्रकरण में ऋणादान के विषय में कहा गया ऋण से उपलब्ध धन का अनेक लोग मिलकर व्यवहार आदि करते हैं, अतः सम्भूयोत्थान की रचना की जाती है –

पद्मप्रभं जिनं नत्वा पद्माभं पद्मलाञ्छनम्।
सम्भूय च समुत्थानक्रमं वक्ष्ये समासतः।।१।।

कमल सदृश कान्ति वाले और कमल के लाञ्छन से युक्त, तीर्थङ्कर पद्मप्रभ की वन्दना कर एकत्रित होकर (समूह बनाकर) कार्य करने वालों के व्यवहार का संक्षेप से कथन करूँगा।

सर्वैर्मिलित्वा लाभार्थं वणिजो [1]नृत्यकारिभिः।
क्रियते वृत्तिरन्योऽन्यसंमत्या सद्भिरुच्यते।।२।।

सभी नर्तक आदि द्वारा मिलकर लाभ के लिए किये जाने वाले व्यापार को सज्जन परस्पर सम्मति से की जाने वाली आजीविका कहते हैं।

समवायस्तत्र मुख्यो [2]वणिग्गौणा नटादयः।
यो भक्ष्यवस्त्र[3]धान्यादीन् दत्ते सो मुख्यतां भजेत्।।३।।

समवाय अथवा समूह उसमें मुख्य है। नट आदि वणिग् उसमें गौण हैं। इस समूह या मण्डली को लोग जो खाद्य सामग्री, वस्त्र, धान्य आदि देते हैं उसका मुख्य (मण्डली) के अनुसार गणना होती है।

---

1. भृत्यकादिभिः भ १, प २।।
2. वणिऔणानपदयः भ १, भ २, प १, प २।।
3. धान्यादीदत्ते प १, प २।।

(वृ०) सर्वैर्वणिग्भिर्हिरण्यरजताहिफेनकार्पासधान्यघृततैलगुडादीनां क्रयो विक्रयो वा क्रियते।

सभी वणिकों द्वारा सोना, चाँदी, अफीम, कपास, धान्य, घी, तेल, गुड़ आदि का क्रय अथवा विक्रय किया जाता है।

तज्जलाभालाभौ यथाद्रव्यं गृह्णन्ति। यदि तेषु द्रव्यदातैकोऽन्ये निर्धनाश्चेत्तदा सर्वे धनिद्रव्यमिषांशं स्वस्वद्रव्यान्निस्सार्यावशेषं यथाप्रतिज्ञं विभजेरन् तत्र विसंवादे उत्पन्नेऽभियोगे च राज्ञा दिव्यादिक्रियया विसंवादनिवृत्तिः क्रियते अतएवायं व्यवहारे गणितोऽस्तीति। एवं नटादिभिरामक्रीडाकारकनर्तकादिभिश्चापिसंभूयवृत्तिः क्रियते। तैरपि यथाप्रतिज्ञं यथाव्ययं लब्धद्रव्यं विभज्यते।

वे उस (सम्मिलित) धन से हुए लाभ और हानि में अपने द्रव्य के अनुसार अंश ग्रहण करते हैं। यदि उन वणिकों में एक धनवान् और अन्य निर्धन हैं तो सभी अपने-अपने धन से धनी के मूलधन और ब्याज का अंश निकालकर शेष धन को प्रतिज्ञा के अनुसार विभाजित करें। उसमें विवाद उत्पन्न होने पर राजा द्वारा शपथ आदि क्रिया से विवाद को समाप्त किया जाता है इसलिये ही यह व्यवहार में गिना जाता है। उसी रूप में नट आदि सुन्दर मनोरञ्जन करने वाले नर्तक आदि भी समूह बनाकर जीविकोपार्जन करते हैं। उनके द्वारा भी प्रतिज्ञा के अनुसार खर्च के अनुपात में प्राप्त धन को विभाजित किया जाता है।

राजाज्ञातो विरुद्धं यत्कृत्यं मुद्राङ्कनादिकम्।
परद्रव्यापहरणमेतेष्वेकः करोति चेत्।।४।।

जाते विवादे दण्ड्याः स्युः सर्वेऽनुमतिदानतः।
यथाद्रव्यं यथैश्वर्यं भूपेन न्यायवर्तिना।।५।।

यदि उनमें से एक राजा की आज्ञा के विरुद्ध मुद्राङ्कन आदि और दूसरों के धन के हरण द्वारा कार्य करता है तो विवाद उत्पन्न होने पर वे सभी उस (अपराध) की स्वीकृति देने के कारण प्रत्येक की भागीदारी तथा सत्ता के अनुपात में न्यायप्रिय राजा के द्वारा दण्डनीय हैं।

यद्वा अपुत्रे निधनं प्राप्तेऽनेकैस्तज्जातिजैर्नरैः।
रक्ष्यते तद्धनं धर्म[१]वत्सरावधि यत्नतः।।६।।

(इस व्यापार मण्डली में से किसी एक व्यापारी के) पुत्रहीन मृत्यु हो जाने पर उसके धन का अनेक स्वजातीय लोगों द्वारा दस वर्ष की अवधि तक यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।

---

१. वत्सरावधि भ १, प १, वत्सएवाधि भ २, प २।।

ततः परमनायाते तत्सबन्धिनि मानुषैः।
कृत्वाभियोगं सर्वे ते भागं [१]कुर्वीत दण्डचताम्।।७।।

प्राप्नुवन्ति तदा सर्वे यथाभागं नृपः पुनः।
पत्रं प्रचारयेदेकाब्दं तत्स्वामिगवेषणे।।८।।

नायाति कोऽपि चेद्धूयो भूपस्तज्जातिभोजने।
प्रतिष्ठादिविधौ सर्वद्रव्यं संयोजयेत्तदा।।९।।

उसके बाद पुनः (मृतक मनुष्य के सम्बन्धी के) न आने पर सभी भागीदार दावा रहित धन को विभाजित कर लेते हैं तो (वे अपने-अपने भाग के अनुपात में दण्ड के पात्र होंगे। राजा पुनः सभी (सदस्यों से उनके) अंश के अनुसार (धन) प्राप्त करते हैं। उस धन के स्वामी की गवेषणा के लिए एक वर्ष की अवधि तक पत्र द्वारा घोषणा करनी चाहिए। इसके पश्चात् भी किसी के न आने पर राजा उसके जातियों के भोजन तथा प्रतिष्ठा आदि विधि में समस्त धन को लगाये।

आगतश्चेत्कोऽपिभूपो निश्चित्य सकलं धनम्।
दापयेद्रक्षकेभ्यश्च चतुर्थांशं प्रदाप्य वै।।१०।।

यदि कोई भी (उत्तराधिकारी) आया हुआ हो तो राजा निश्चय कर सम्पूर्ण धन का चतुर्थ भाग (धन) रक्षक को देकर (शेष) उसको सौंप दे।

गौर्वत्समिव भूपोऽपि प्रीत्या स्वाः पालयेत्प्रजाः।
अन्यायेन च द्रव्यार्थं चित्ते नो [२]लोभमाचरेत्।।११।।

सम्भूयोत्थानमेतश्च संक्षेपादत्र वर्णितम्।
यतः सर्वैः प्रतिज्ञातकार्ये रीतिर्नलंघ्यते।।१२।।

जिस प्रकार गाय अपने बछड़े का पालन करती है उसी प्रकार प्रीतिपूर्वक राजा को भी अपनी प्रजा का पालन करना चाहिए। अन्याय से धन प्राप्त करने के लिए मन में लोभ का आचरण नहीं करना चाहिये।

यहाँ समूह अथवा मण्डल व्यापार संक्षेप में निरूपित किया गया क्योंकि सभी प्रतिज्ञा संविदा के अनुसार कार्य करें और रीति बाधित न हो।

।। इति सम्भूयोत्थानप्रकरणम्।।

—o—

१. कुर्वेनिदण्डचताम् भ १, भ २, कुर्वनिदण्डचताम्।।
२. लोभसमाचरेत् भ १, भ २, प १, प २।।

तृतीय अधिकार

३.४

देयविधिप्रकरणम्

श्रीसुपार्श्वजिनं नत्वा सप्तमं तीर्थनायकम्।
देयादेयविधिं सम्यग् विवृणोमि समासतः।।१।।

सप्तम तीर्थङ्कर श्री सुपार्श्वनाथ जिन का वन्दन कर देय-अदेय विधि का संक्षेप में भली प्रकार वर्णन करता हूँ।

पूर्वप्रकरणे सम्भूयोत्थानं प्रतिपादितं तत्र कश्चित्तत् साधारणद्रव्याद्दानमपि करोति अतो देयादेयव्यवस्थानिरूपणाय देयविधिरधुना व्याख्यायते।

पूर्व प्रकरण में सम्भूयोत्थान प्रतिपादित किया गया है। इसमें कोई साधारण द्रव्य का दान भी करता है इसलिए देयादेयव्यवस्था का निरूपण करने के लिए अब देयविधि की व्याख्या की जाती है।

व्यवहारविधौ देयविधिः सो द्विविधः स्मृतः।
दत्ताप्रदानिकं नाम दत्तस्यानपकर्म च।।२।।

व्यवहार विधि में देय विधि दो प्रकार की कही गई है – दत्ताप्रदानिक और दत्तानपकर्म।

द्रव्यं दत्वा च यो सम्यगादातुं पुनरिच्छति।
दत्ताप्रदानिकाख्यः विकल्पः प्रथमो मतः।।३।।

भली-भाँति धन देकर जो पुनः लेना चाहता है वह दत्ताप्रदानिक नाम का प्रथम भेद माना गया है।

सम्यग् दत्तं च यद्द्रव्यमाहर्तुं तन्न शक्यते।
व्यवहारपदं दत्तानपकर्मेति नामतः।।४।।

भली-भाँति दिये गये जिस धन को वापस लेने में (दाता) समर्थ न हो व्यवहार की दृष्टि से उसे दत्तानपकर्म नाम से जाना जाता है।

पुनश्चचतुर्विधं दानं प्रोक्तं दत्तं तथेतरम्।
अदेयदेयमिति च व्यवहारे विचक्षणैः।।५।।

पुनः व्यवहार में कुशल पुरुषों द्वारा दान चार प्रकार का कहा गया है—१. अप्रत्याहरणीय दत्त, २. व्यावर्तनीय अदत्त, ३. परकीय साधारण अदेय और ४. स्वकीय असाधारण देय।

(वृ०) तत्राप्रत्याहरणीयं दत्तम्।

जो पुनः वापस नहीं लिया जा सकता है वह दत्त है।

व्यावर्त्तनीयमदत्तम्।

जो पुनः वापस लिया जा सकता है वह अदत्त है।

परकीयं साधारणं च द्रव्यमदेयम्।

परकीय और साधारण द्रव्य अदेय है।

स्वकीयमसाधारणं च द्रव्यं देयम्।

स्वकीय और असाधारण द्रव्य देय है।

तत्र दत्तं षड्विधं तथाहि –

उसमें दत्त दान छः प्रकार का है जैसाकि –

क्रीतमूल्यवेतनं च [१]प्रीत्या दानं च कीर्त्तये।
धर्मे प्रत्युपकारे च दानं दत्तं हि षड्विधम्।।६।।

दत्त दान निश्चित रूप से छः प्रकार का है – १. क्रय की गई (वस्तु) का मूल्य, २. कार्य हेतु वेतन, ३. प्रीतिपूर्वक दान, ४. यश हेतु दान, ५. धर्मार्थ दान और ६. प्रत्युपकार दान।

अदत्तं षोडशविधं –

अदत्त दान सोलह प्रकार का है—

भयात् क्रोधेन शोकेनोत्कोचेन परिहासतः।
बलाद्व्यत्यासतश्चैव मत्तोन्मतार्त्तबालकैः।।७।।

परतन्त्रेण मन्देन प्रतिलाभेच्छया पुनः।
कुपात्रे पात्रबुद्ध्या च कुधर्मे धर्मबुद्धितः।।८।।

दत्तं द्रव्यं च यत्तद्वै वस्तुतोऽदत्तमेव च।
कथ्यतेऽत्र कलामानमिदं व्यवहृतौ सदा।।९।।

१. प्रासादानं भ १, प्रीसादानं भ २, प १, प २।।

१. भयपूर्वक, २. क्रोधपूर्वक, ३. शोकपूर्वक, ४. रिश्वत (के रूप में), ५. परिहास में, ६. बलपूर्वक, ७. भ्रमवश, ८. मत्त (अवस्था में), ९. उन्मत्त (अवस्था में), १०. रोगी (अवस्था में), ११. बाल (बुद्धि से) १२. पराधीन (अवस्था में), १३. मन्द (अवस्था में), १४. पुनः लाभ की प्रत्याशा में, १५. कुपात्र को पात्र जानकर और १६. कुधर्म में धर्म बुद्धि से दिया गया दान वस्तुतः न दिये गये के समान है। ये कलाओं (की संख्या) के समान (सोलह प्रकार के दान) सदा व्यवहार में कहे गये हैं।

(वृ०) अत्रार्तदत्तमदत्तं धर्मार्थमन्तरा बोध्यं धर्मार्थदत्तं तु तन्मृतावपि तत्पुत्रेणावश्यं दानीयं।

सोलह प्रकार के अदत्त दान में रोगी को दिया गया दान अदत्त है। उसमें अपवाद यह है कि रोगी को धर्मार्थ दिया गया दान दत्त है। धर्मार्थ दिया गया दान मृतक की मृत्यु होने पर भी उसके पुत्र के द्वारा अवश्य दान करना चाहिए।

यदुक्तं बृहदर्हन्नीतौ –

जैसा कि बृहदर्हन्नीति में कहा गया है –

रोगाउरेण दिण्णं जं दाणं मुक्खधम्मकज्जस्स।
तस्स य मरणेवि सुओ जुग्गोच्चियं तं धणं दाउं।।

अदेयं नवविधं तद्यथा

अदेय दान नौ प्रकार का है जैसे –

साधारणं च निक्षेपः पुत्रदाराश्च याचितम्।
आधिरन्वाहितं चैवान्वये सर्वस्वमेव च।।१०।।

प्रतिज्ञातं तथान्यस्मै एतन्नवविधं नृभिः।
महापद्यपि नो देयमदेयमिति शासनम्।।११।।

साधारण (द्रव्य), न्यासकृत (द्रव्य), पुत्र का, पत्नी का, याचित (द्रव्य), आधि, अन्वाहित, कुटुम्ब का सर्वस्व (द्रव्य) तथा दूसरे को (देने हेतु) वचनबद्ध धन –ऐसे नव प्रकार के धन मनुष्यों द्वारा महान आपत्ति काल में भी देय नहीं हैं (अपितु) अदेय हैं – इस प्रकार शास्त्र (कथन) है।

(वृ०) यत्केनचिद्वस्त्राभरणादि विवाहादौ याचित्वानीतमन्यहस्ते निहितं तेनाप्यन्यहस्ते स्वामिनमन्तरान्यस्मै न देयमित्यर्थः।

किसी मनुष्य के द्वारा विवाह आदि में माँगकर लाया गया वस्त्राभूषण आदि दूसरे के हाथ में रख दिया गया। उसके द्वारा भी दूसरे के हाथ में रख दिया गया, वह अन्वाहित धन मूल स्वामी के अतिरिक्त अन्य को देय नहीं यह अर्थ है।

तथा पुत्रपौत्राद्यन्वये सति सर्वस्वं न देयं किन्तु तद्भरण- पोषणावशिष्टं देयमित्यर्थः।

उस प्रकार वंश में पुत्र-पौत्र आदि वंश के होने पर सम्पूर्ण धन दान में नहीं देना चाहिए किन्तु उसके भरण-पोषण से अवशिष्ट धन दान में देना चाहिए।

तद्वृत्तिकल्पनाया आवश्यकत्वात्।

कुटुम्ब की आजीविका की कल्पना से (धन) आवश्यक होने के कारण।

तथा चोक्तं –

और कहा गया है –

मातापितरौ वृद्धौ पुत्रो बालः प्रतिव्रता पत्नी।
एते सर्वे पोष्याः नित्यं[1] यत्नेन निश्चयतः॥१२॥

वृद्ध माता-पिता, शिशु, पुत्र, पतिव्रता पत्नी ये सभी निश्चित रूप से सदा यत्नपूर्वक पालन योग्य हैं।

अथ देयमाह–

इसके बाद देय का कथन–

देयं तदेव विज्ञेयं यस्यापहरणं नहि।
यत्रात्मीयविरोधो न दत्तवत्सप्तभेदयुक्॥१३॥

यस्मै प्रतिश्रुतं यच्च तत्तस्मै देयमेव च।
धर्मार्थं यदि सो धर्मात्प्रच्युतो नहि जायते॥१४॥

प्रतिग्रहो ह्यदेयस्य सप्रकाशो विशेषतः।
स्थावरस्य तथा वादी यथा वैफल्यमश्नुते॥१५॥

भाव्युपाध्याधिदानप्रतिग्रहक्षेपविक्रयाः ।
कृता यस्य तदन्ते तत्सर्वं च विनिवर्तयेत्॥१६॥

देय दान उसी को जानना चाहिये जिसको पुनः वापस नहीं लिया जा सके, जिस धन को देने में कुटुम्बियों से विरोध न हो यह दान देने की विधि से सात प्रकार का है। जो वस्तु जिसको धर्मार्थ देने के लिये कहा था यदि वह व्यक्ति धर्म से च्युत न हो तो वह उसे देनी चाहिये। अदेय वस्तु यदि ग्रहण करे तो प्रकट रूप में ग्रहण करे विशेषतः यदि वह अचल सम्पत्ति हो तो विशेष रूप से प्रकट में ग्रहण करे जिससे (उस सम्पत्ति के विषय में विवाद की स्थिति में) वादी–अभियोगी

---

१. नित्ययत्नेन भ १, भ २, प २॥

असफल हो जाय। भविष्यकालीन प्रयोजन, प्रतिभूति, दान, वापस ग्रहण, धरोहर, विक्रय आदि किया हो तो उन सभी शर्तों को अन्त में रद्द करना चाहिये।

(वृ०) अथ योऽदत्तं गृह्णाति यश्चादेयं प्रयच्छति तद्दण्डमाह –

इसके पश्चात् जो अदत्त ग्रहण करता है और जो अदत्त देता है उसके दण्ड का कथन–

अदत्तग्राहको लोभात्तथादेयस्य दायकः।
एतावुभौ दण्डनीयौ यथादोषं महीभुजा॥१७॥
एवं देयविधिः प्रोक्तः सभेदो विस्तरेण वै।
महार्हन्नीतिशास्त्राच्च ज्ञेयस्तदभिलाषिभिः॥१८॥

लोभवश अदत्त दान को ग्रहण करने वाले तथा अदेय को देने वाले – इन दोनों को राजा द्वारा उनके दोष के अनुसार दण्डित किया जाना चाहिये। इस प्रकार देयविधि का भेद सहित (संक्षेप) में वर्णन किया गया जिज्ञासुओं को विस्तार से महा अर्हन्नीति शास्त्र से जानना चाहिये।

॥ इति देयविधि प्रकरणम्॥

—o—

तृतीय अधिकार

३.५

दायभागप्रकरणम्

लक्ष्मणातनयं नत्वा द्युसदेन्द्रादिसेवितम्।
गेयामेयगुणाविष्टं दायभागः प्ररूप्यते॥१॥

देव तथा इन्द्र आदि से सेवित, अपरिमित कीर्तन योग्य गुणों से सम्पन्न लक्ष्मणा के पुत्र (तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ स्वामी) की वन्दना कर दायभाग अर्थात् पैतृक सम्पत्ति के उत्तराधिकारियों में विभाजन की प्ररूपणा की जाती है।

(वृ०) पूर्वप्रकरणे देयविधिः प्रकाशितस्तत्रादेयसाधारणद्रव्य-व्ययीकरणकारणोद्भूतकलहे भ्रातृणां परस्परं दायभागः स्यात् अतस्तद्विचारः सम्प्रति विधीयते –

पूर्वप्रकरण में देयविधि का कथन किया गया उसमें अदेय साधारण द्रव्य के व्यय के कारण उत्पन्न कलह में भाइयों का परस्पर दाय भाग हो इसलिए अब उसका विचार किया जाता है –

स्वस्वत्वापादनं दायः स तु द्वैविधमश्नुते।
आद्यः सप्रतिबन्धश्च द्वितीयोऽप्रतिबन्धकः॥२॥

अपने स्वामित्व का प्रतिपादन करना दाय है। वह (दाय) दो प्रकार का कहा जाता है – प्रथम प्रतिबन्ध सहित और दूसरा प्रतिबन्ध रहित।

(वृ०) दायोनाम मातृपितृपितामहादिवस्तूनां स्वस्वत्वापादनं येन तद्व्ययादौ कोऽपि निषेद्धुं न शक्नोति, स द्विविधः सप्रतिबन्धकोऽप्रति-बन्धकश्च तत्रपितृव्यभ्रातृजादीनां-पुत्रादिप्रतिबन्धकभावेन यत्स्वत्वं स सप्रतिबन्धकः। तत्र पुत्रादीनां प्रतिबन्धकत्वात्। पुत्रपौत्रादीनां त्वप्रतिबन्धकः पुत्रत्वेन तत्स्वामित्वे नहि कोऽपि प्रतिबन्धकोऽस्तीति।

माता-पिता, पितामह आदि द्वारा अर्जित वस्तुओं का स्वामित्व- प्रतिपादन करना चाहिए ताकि उसके व्यय आदि को कोई निषिद्ध न कर सके। वह पैतृक

'धन दो प्रकार का है – सप्रतिबन्धक और अप्रतिबन्धक। इसमें चाचा, भतीजा आदि के पुत्र आदि पर प्रतिबन्धस्वरूप जो स्वामित्व है वह सप्रतिबन्धक है क्योंकि वह चाचा आदि के पुत्रों पर प्रतिबन्ध है।

दायो भवति द्रव्याणां तद्द्रव्यं द्विविधं स्मृतम्।
स्थावरं जङ्गमं चैव स्थितिमत् स्थावरं मतम्।।३।।

दाय–पैतृक सम्पत्ति का उत्तराधिकारियों में विभाजन– द्रव्यों का होता है, वह द्रव्य दो प्रकार का कहा गया है – अचल और चल, जो स्थिर है वह स्थावर कहा गया है।

गृहारामादिवस्तूनि स्थावराणि भवन्ति च।
जङ्गमं स्वर्णरौप्यादि यत्प्रयोगेण गच्छति।।४।।

भवन, उपवन आदि वस्तुएं स्थावर होती हैं और स्वर्ण, चाँदी आदि जो प्रयोग के कारण (अन्यत्र) जाता है चल है।

न विभाज्यं न विक्रेयं स्थावरं च कदापि हि।
प्रतिष्ठाजनकं लोके आपदाकालमन्तरा।।५।।

निश्चित रूप से लोक में प्रतिष्ठा उत्पन्न करने वाले स्थावर द्रव्य का आपत्तिकाल के बिना न तो कभी भी विभाजन करना चाहिए और न विक्रय करना चाहिए।

सर्वेषां द्रव्यजातानां पिता स्वामी निगद्यते।
स्थावरस्य तु सर्वस्य न पिता न पितामहः।।६।।

पिता सभी धनों का स्वामी कहा जाता है परन्तु समस्त स्थावर सम्पत्ति का न पिता स्वामी होता है न पितामह।

जीवत्पितामहे तातो दातुं नो स्थावरक्षमः।
तथा पुत्रस्य सद्भावे पितामहमृतावपि।।७।।

पितामह के जीवित होने पर स्थावर सम्पत्ति को देने (विक्रय) करने में पिता सक्षम नहीं है। पुत्र के रहने पर पितामह की मृत्यु हो जाने पर भी (पिता स्थावर सम्पत्ति का विक्रय करने का अधिकारी नहीं है)।

(वृ०) अत्र दातुमिति विक्रयस्याप्युपलक्षणम्।

उपरोक्त श्लोक में वर्णित 'दातुं' शब्द विक्रय का भी उपलक्षण है।

पिता स्वीयार्जितं द्रव्यं स्थावरं द्विपदं तथा।
दातुं शक्तो न विक्रेतुं गर्भस्थेऽपि स्तनन्धये[1]।।८।।

---

१. सतनन्धये भ १, भ २, प २।।

पिता स्वयं उपार्जित द्रव्य, अचल तथा द्विपद रूप सम्पत्ति को पुत्र के गर्भस्थ होने तथा स्तनपान करने वाला होने पर भी न (दूसरे को) दे सकता है और न विक्रय कर सकता है।

वाला जातास्तद्वाजाता अज्ञानाश्च शवा अपि।
सर्वे स्वजीविकार्थं हि तस्मिन्नंशहराः स्मृताः।।९।।

पुत्र शिशु हो, उत्पन्न हुआ हो अथवा गर्भस्थ हो, अबोध हो या निर्माल्य – देवता को समर्पित हो – ये सभी अपनी जीविका के लिए उसमें (पिता के द्रव्य में) अंशहर अर्थात् हिस्सा धारण करने वाले कहे गये हैं।

आप्राप्तव्यवहारेषु तेषु माता पितापि वा।
कार्ये त्वावश्यके कुर्यात्तस्य दानं च विक्रयम्।।१०।।

यदि पुत्र व्यवहार (व्यापार) में संलग्न हों तो उनके माता अथवा पिता भी आवश्यक कार्य होने पर उसका दान और विक्रय कर सकते हैं।

(वृ०) धर्मज्ञातिकुटुम्बकार्यार्थमापन्निवृत्यर्थं च मातापि पितापि च स्थावरधनस्य दानं विक्रयं च कर्तुं शक्नोति। अत्र मातृपितृशब्दस्योपलक्षणत्वेन भ्राताप्येकोऽनुमतिदानसमर्थेषु शेषबालभ्रातृष्वावश्यककार्ये दानादि कर्तुं समर्थ एव बोध्यम्।

धर्म, जाति तथा परिवार के कार्य और सङ्कट के निवारण के लिए माता और पिता भी अचल सम्पत्ति का दान तथा विक्रय कर सकते हैं। यहाँ माता-पिता शब्द के उपलक्षण से एक ज्येष्ठ भाई भी अनुमति देने में सक्षम है। शेष बालक रूप भाई (अनुमति देने में सक्षम नहीं किन्तु) आवश्यक कार्य दानादि करने में उन्हें समर्थ जानना चाहिए।

दुःखागारे हि संसारे पुत्रो विश्रामदायकः।
यस्माद्दते मनुष्याणां गार्हस्थं च निरर्थकम्।।११।।

दुःख के निवास रूप संसार में पुत्र विश्राम देने वाले हैं, जिस पुत्र के बिना मनुष्यों का गृहस्थ जीवन निरर्थक है।

यस्य पुण्यं बलिष्ठं स्यात्तस्य पुत्राः अनेकशः।
सम्भूयैकत्र तिष्ठन्ति पित्रोः सेवासु[१] तत्पराः।।१२।।

जिसका पुण्य बलवान है उसके अनेक पुत्र होते हैं और वे एकसाथ रहकर माता-पिता की सेवा में तत्पर होते हैं।

---

१. शेवासु भ १, भ २, प १, प २।।

लोभादिकारणाज्जाते कलौ तेषां परस्परम्।
न्यायानुसारिभिः कार्या दायभागविचारणा।।१३।।

लोभादि के कारण उनमें परस्पर कलह उत्पन्न होने पर न्याय के अनुसार दायभाग का विचार करना चाहिए।

(वृ०) सा चेत्थम् –

और वह (दायभाग की विचारणा) इस (निम्नलिखित) प्रकार है –

ननु पुत्राणां कथं दायभागः स्यादत आह –

पुत्रों का दायभाग किस प्रकार हो, उसका कथन –

पित्रोरूर्ध्वं तु पुत्राणां भागः सम उदाहृतः।
तयोरन्यतमे नूनं भवेद्भागस्तदिच्छया।।१४।।

माता-पिता के दिवङ्गत हो जाने पर तो सम्पति में पुत्रों का हिस्सा बराबर कहा गया है। उन दोनों (माता-पिता) में से एक के (जीवित रहने पर) निश्चय ही उसकी इच्छा से हिस्सा हो।

(वृ०) मातृपित्रोर्मरणानन्तरं पुत्राणां समो भागं भवति।

माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् (सम्पत्ति) में पुत्रों का बराबर का हिस्सा होता है।

तयोरन्यतमेऽपि सति द्वयोर्वा सतोस्तदिच्छयैव भागः स्यात्।

उन दोनों (माता-पिता) में से एक के जीवित होने पर अथवा दोनों के जीवित होने पर उनकी इच्छानुसार ही सम्पत्ति का विभाजन होता है।

ध्यात्व न्यत्र जेष्ठाय द्विगुणं दद्यादित्यादिविषमभागकल्पना पित्रेच्छानुसारिण्युक्ता सा तु पैतृके धने एव न तु पैतामहे।

अन्य ग्रन्थों में जो ज्येष्ठ को दोगुना देना चाहिए इत्यादि विषम भाग की कल्पना पिता की इच्छानुसार बताई गई है वह पिता के धन के सम्बन्ध में ही है पितामह के नहीं।

पित्रोर्ऋणं कैः कथं च देयमित्याह –

पिता द्वारा लिया गया ऋण किसके द्वारा और किस रीति से देय है, इसका कथन–

विभक्ता अविभक्ता वा सर्वे पुत्राः समांशतः।
पित्रोर्ऋणं प्रदत्वैव भवेयुर्भागभागिनः।।१५।।

विभाजन हुआ हो अथवा न हुआ हो सभी पुत्र पिता द्वारा लिये गये ऋण का बराबर भाग से भुगतान कर ही (सम्पत्ति में) हिस्से के अधिकारी होंगे।

(वृ०) ननु पितृविहितविषमभागस्य प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे को हेतुरित्याह–

पिता द्वारा आदिष्ट विषम भाग (ज्येष्ठ पुत्र को दोगुना हिस्सा) के प्रामाणिक होने और अप्रामाणिक होने के पीछे क्या कारण है? इसका कथन–

धर्मतश्चेत् पिता कुर्यात्पुत्रान् विषमभागिनः।
प्रमाणं वैपरीत्ये तु तत्कृतस्याप्रमाणता।।१६।।

यदि धर्मपूर्वक पिता पुत्रों के अंश को असमान करे तो वह यथोचित है। प्रमाण के विपरीत अर्थात् अधर्मपूर्वक करने पर उसका कृत्य अप्रामाणिक है।

(वृ०) ननु कीदृशः पिता वैपरीत्येन भागं करोति येन तत्कृतो भागोऽप्रमाण स्यादित्याह –

कैसा पिता (सम्पत्ति में पुत्रों का सम से) विपरीत (विषम) भाग करता है जिसके द्वारा किया हुआ भाग प्रमाणभूत न माना जाय, इसका कथन –

व्यग्रचित्तोऽतिवृद्धश्च व्यभिचाररतस्तु यः।
द्यूतादिव्यसनासक्तो महारोगसमन्वितः।।१७।।

उन्मत्तश्च तथा क्रुद्धः पक्षपातयुतः पिता।
नाधिकारी भवेद्भागकरणे धर्मवर्जितः।।१८।।

व्याकुल चित्त, अत्यन्त वृद्ध, व्यभिचार में संलग्न, द्यूतादि व्यसनों में अनुरक्त, गम्भीर रोग से ग्रस्त, विक्षिप्त तथा क्रोधी, पक्षपात (एक में विशेष स्नेह) से युक्त पिता धर्म से विरहित है और (सम्पति का) विभाजन करने का अधिकारी नहीं है।

(वृ०) ननु विभागकालस्थासंस्कृतसंततिसंस्कारः केन कार्य इत्याह–

विभाजन के समय जिस पुत्र का संस्कार न हुआ हो ऐसे पुत्र का संस्कार किसके द्वारा किया जाना चाहिए, इसका कथन –

असंस्कृतान्यपत्यानि संस्कृत्य भ्रातरः स्वयम्।
अवशिष्टं धनं सर्वे विभजेयुः परस्परम्।।१९।।

विभाजन के समय जिन पुत्रों का संस्कार नहीं हुआ है (अन्य) सभी भाई स्वयं उनका संस्कार कर शेष धन को आपस में विभाजित कर लें।

(वृ०) ननु लघिष्ठेषु भ्रातृषु ज्येष्ठस्य कियानधिकार इत्याह –

कनिष्ठ भ्राताओं में ज्येष्ठ भाई का कितना अधिकार है, इसका कथन –

अनुजानां लघुत्वेऽनुमतौ चाप्यग्रजो धनम्।
सर्वं गृह्णाति तत्पैत्र्यं तदा तान् पालयेत्सदा।।२०।।

यदि (अन्य) भाइयों के लघु (अल्पवयस्क) होने और उनकी अनुमति होने पर पिता से प्राप्त समस्त धन को ज्येष्ठ भ्राता ग्रहण करता है तब उसे सदा उन (कनिष्ठ भाइयों) का पालन करना चाहिये।

विभक्तानविभक्तान्वै भ्रातॄन् ज्येष्ठः पितेव सः।
पालयेत्तेऽपि तं ज्येष्ठं सेवन्ते पितरं यथा।।२१।।

विभाजन हुआ हो अथवा नहीं हुआ हो ज्येष्ठ भ्राता पिता के समान ही कनिष्ठ भाइयों का पालन करे और वे कनिष्ठ भाई भी जैसे पिता की सेवा करते हैं उसकी करें।

(वृ०) अत एव कैश्चिदुक्तम् –

इसलिए किसी के द्वारा कहा गया है –

पूर्वजेन तु पुत्रेण अपुत्रो पुत्रवान्भवेत्।
ततो न देयः सोऽन्यस्मै कुटुम्बाधिपतिर्यतः।।२२।।

पूर्व (प्रथम) में उत्पन्न होने वाले पुत्र से अपुत्रवान् व्यक्ति पुत्र वाला होता है। इस कारण उस (ज्येष्ठ पुत्र को) दूसरे को नहीं देना चाहिए क्योंकि वह परिवार का स्वामी है।

ज्येष्ठ एव हि गृह्णीयात्पैत्र्यं धनमशेषतः।
शेषास्तदनुसारित्वं भजेयुः पितरं यथा।।२३।।

(कुछ का अभिमत है) ज्येष्ठ पुत्र ही पिता के सम्पूर्ण धन को ग्रहण करे और शेष उसकी आज्ञा में (उसी प्रकार) रहें जिसप्रकार पिता की आज्ञा (में रहते हैं)।

(वृ०) ननु विभाग कालोत्तरजातकन्याविवाहः पित्रोः प्रेतयोः कैः कार्य इत्याह–

विभाजन के पश्चात् उत्पन्न कन्या का विवाह और माता-पिता का मरणोपरान्त संस्कार किसके द्वारा किया जाना चाहिए, इसका कथन –

एकानेका च चेत्कन्या पित्रोरूर्ध्वं स्थिता तदा।
स्वांशात्पुत्रैस्तुरीयांशं दत्वावश्यं विवाह्यते।।२४।।

यदि पिता की मृत्यु हो जाने के पश्चात् एक या कई कन्यायें (अविवाहित) हों तो पुत्रों द्वारा अपने हिस्से का चतुर्थ अंश देकर अवश्य ही (उनका) विवाह करना चाहिए।

(वृ०) यदि पित्रोर्धनं पुत्रैर्गृहीतमनवशिष्टं वा तदा विभक्तैर्भ्रातृभिः भगिनीविवाह उत्कर्षतः स्वांशात्तुरीयांशमेकीकृत्य कार्यः इति निष्कर्षः।

यदि पिता की सम्पत्ति पुत्रों द्वारा ग्रहण कर ली गई है अथवा अवशेष न रही हो तो विभक्त भाइयों द्वारा अपने हिस्से का अधिकतम चतुर्थ भाग मिलाकर बहन का विवाह करना चाहिये।

ननु कन्याया अपि दाये भागोऽस्ति न वेत्याशङ्कायामाह—

कन्या का दाय में भाग है अथवा नहीं इस शङ्का के समाधान के विषय में कथन—

विवाहिता च या कन्या तस्याः भागो न कर्हिचित्।
पित्रा प्रीत्या च यद्दत्तं[1] तदेवास्याः धनं भवेत्।।२५।।[2]

पिता की सम्पत्ति में विवाहिता कन्या का कोई हिस्सा नहीं है। पिता द्वारा स्नेहपूर्वक जो दिया गया है वही उसका धन होता है।

(वृ०) प्रीत्या च इत्यत्र चकारेण विवाहादिकालजन्यनैमित्तिकदानमपि समुच्चीयते। ननु विभागसमये भर्त्रा कियतांशेनस्वसवर्णाः स्त्रियो भाज्या इत्याह—

यहाँ इस श्लोक में 'प्रीत्या च' में चकार से विवाह आदि के समय किया गया नैमित्तिक दान का अभिप्राय लिया जाता है। सम्पत्ति-विभाजन के समय स्वामी द्वारा स्वजातीय स्त्रियों का कितना भाग करना चाहिए, इसका कथन –

यावतांशेन तनया विभक्ता जनकेन तु।
तावतैव विभागेन युक्ताः कार्या निजस्त्रियः।।२६।।

पिता द्वारा जिस प्रमाण में पुत्रों में (सम्पत्ति) विभक्त की गई है उसी प्रमाण से अपनी स्त्रियों को भी सम्पत्ति देनी चाहिए।

(वृ०) ननु च पितृमरणोत्तरकालिकपुत्रकृतविभागावसरे मातुर्भागः कीदृशः स्यात् तन्मृतौ च तद्धनस्य कः स्वामीत्याकांक्षायामाह –

पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्रों द्वारा किये गये सम्पत्ति के विभाजन के समय माता का क्या हिस्सा होगा। स्वामी की मृत्यु के पश्चात् उसके धन का स्वामी कौन होगा, इसका कथन –

पितुरूर्ध्वे निजाम्बायाः पुत्रैर्भागश्च सार्धकः[3]।
लौकिकव्यवहारार्थं तन्मृतौ ते समांशिनः।।२७।।

---

१. यद्दतं भ १, भ २, प १।।
२. श्लोक सं० २५ प २ में अनुपलब्ध।।
३. साधकः भ १, भ २, प १, प २।।

पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्रों द्वारा अपनी माता का भाग सम्पत्ति का आधा हिस्सा देना चाहिए कारण कि समस्त लोक व्यवहार माता ही सम्पन्न करती है। उस (माता) की मृत्यु के पश्चात् वे सभी पुत्र समान अंश के भागी हैं।

(वृ०) पितृमरणानन्तरं विभागकरणोद्यतैः सवर्णाया ज्येष्ठामातुर्विशेषाधिको भागः कार्यो यतः पूज्यत्वेन ज्ञातिव्यवहारादिकार्ये तस्या एवाधिकारस्तन्मरणे च दुहितृदौहित्रकस्य चाभावे तद्द्रव्यसमांशभागिनः पुत्राः भवन्तीति।

पिता की मृत्यु के पश्चात् विभाजन के लिए उत्सुक पुत्रों को चाहिए कि वे स्वजातीय ज्येष्ठ माता का विशेष अधिक भाग करें क्योंकि पूज्य होने के कारण जाति व्यवहार आदि कार्यों में उसका ही एकाधिकार है। उसके मरने पर पुत्री या दौहित्र (पुत्री के पुत्र) के अभाव में उसकी सम्पत्ति में पुत्र बराबर के हिस्सेदार होते हैं।

ननु युग्मजातयोः पुत्रयोः कस्य ज्येष्ठत्वमिति दर्शयन्नाह –

जुड़वा पुत्र उत्पन्न होने पर किस शिशु की ज्येष्ठता हो, यह कथन –

पुत्रयुग्मे समुत्पन्ने यस्य प्रथमनिर्गमः।
तस्यैव ज्येष्ठता ज्ञेया इत्युक्तं जिनशासने।।२८।।

जुड़वा पुत्र उत्पन्न होने पर जिस शिशु का पहले जन्म हुआ हो उसकी ही ज्येष्ठता जाननी चाहिए ऐसा जिनशासन में कहा गया है।

(वृ०) ननु यस्य सुताभवनान्तरं पुत्रजन्म स्यात् तत्र कस्य ज्येष्ठत्वमितिसूचयन्नाह–

पुत्री होने के पश्चात् पुत्र उत्पन्न हुआ हो वहाँ किसका ज्येष्ठत्व यह सूचित करते हुए कथन –

दुहिता पूर्वमुत्पन्ना सुतः पश्चाद्भवेद्यदि।
पुत्रस्य ज्येष्ठता तत्र कन्यायाः न कदाचन।।२९।।

यदि पहले पुत्री उत्पन्न हुई हो पश्चात् पुत्र उत्पन्न हुआ हो तो सदैव पुत्र की ही ज्येष्ठता होगी कभी कन्या की नहीं।

(वृ०) ननु यस्यैकैव कन्या नापरा संततिस्तद्द्रव्यस्वामी कः स्यादित्यावेदयन्नाह–

यदि जिसकी एक ही कन्या हो और दूसरी सन्तान न हो उसकी सम्पत्ति का स्वामी कौन हो यह निवेदन करते हुए कथन –

यस्यैकायां तु कन्यायां जातायां नान्यसन्ततिः।
प्राप्तं तस्याधिपत्यं[१] तु सुतायास्तत्सुतस्य च॥३०॥

जिसके अकेली कन्या उत्पन्न हो अन्य सन्तान न हो उसकी सम्पत्ति का स्वामित्व पुत्री और उस पुत्री के पुत्र (दौहित्र) को प्राप्त होता है।

(वृ०) तदाधिपत्यप्रतिबन्धकीभूतपत्न्यादीनामभाव आत्मजसम्बन्धित्वेन पुत्रिकाः दौहित्रकाश्च दाये समा एवातस्तत्सत्वे न ह्यन्यो धनहरणे शक्तः स्यात् यदुक्तम्—

स्वामी की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति के स्वामित्व में प्रतिबन्धक होने वाली पत्नी आदि के न होने पर स्वयं से उत्पन्न होने के कारण पुत्रियाँ तथा दौहित्र (पुत्री के पुत्र) सम्पत्ति में बराबर के भागी हैं। उनके रहने पर दूसरे लोग धनहरण करने में समर्थ नहीं हैं, जैसा कि कहा गया है –

आत्मा वै जायते पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्॥३१॥

आत्मा ही पुत्र रूप में उत्पन्न होता है। पुत्र के समान पुत्री होती है। उस आत्मा रूप पुत्री के रहने पर दूसरा धन का हरण कैसे कर सकता है।

(वृ०) नन्वपुत्रपित्रोर्मरणे तद्द्रव्यस्वामित्वं सामान्यतो दुहितु- दौहित्रस्य चोक्तं तत्रापि मातृद्रव्यस्य कः स्वामी पितृद्रव्यस्य च क इति विशेषजिज्ञासायामाह—

पुत्ररहित माता-पिता के मरने पर सामान्यतः पुत्री तथा पुत्री के पुत्र (दौहित्र) का उनकी सम्पत्ति पर स्वामित्व कहा गया है। माता की सम्पत्ति का स्वामी कौन होगा और पिता की सम्पत्ति का स्वामी कौन होगा, इस जिज्ञासा के विषय में कथन –

गृह्णाति जननीद्रव्यमूढा च यदि कन्यका।
पितृद्रव्यमशेषं हि दौहित्रः सुतरां हरेत्॥३२॥

और यदि माता की सम्पत्ति विवाहिता कन्या ग्रहण करती है तो पिता की समस्त सम्पत्ति पुत्री का पुत्र सुखपूर्वक ग्रहण करे।

पौत्रदौहित्रयोर्मध्ये भेदोऽस्ति न हि कश्चन।
तयोर्देहे हि सम्बन्धः पित्रोर्देहस्य सर्वथा॥३३॥

पौत्र (पुत्र के पुत्र) और दौहित्र (पुत्री के पुत्र) के मध्य कोई भेद नहीं है

---

१. ०न्तस्स्वाधि० भ १, भ २, प १, प २॥

क्योंकि दोनों (पौत्र और दौहित्र) के शरीर से सब प्रकार से माता-पिता के शरीर का सम्बन्ध है।

(वृ०) ननु परिणीतपुत्रीमरणे पुत्राभावे तद्धनाधिपतिः कः स्यादित्याह –

विवाहिता पुत्री के मरने के बाद पुत्र के अभाव में उसके धन का स्वामी कौन होगा, यह कथन –

विवाहिता च या कन्या चेन्मृतापत्यवर्जिता।
तदा तद्द्युम्नजातस्याधिपतिस्तत्पतिर्भवेत्।।३४।।

यदि विवाहिता पुत्री की सन्तान रहित मृत्यु हो जाये तो समस्त स्त्री-धन का स्वामी उसका पति हो।

(वृ०) ननु पितृविहितविभागोत्तरकालजातपुत्रः कस्यांशं प्राप्नोतीत्याह–

पिता द्वारा किये गये विभाजन के बाद उत्पन्न पुत्र कौन सा हिस्सा प्राप्त करेगा, यह कथन –

विभागोत्तरजातस्तु पुत्रः पित्रंशभाग् भवेत्।
नापरेभ्यस्तु भ्रातृभ्यो विभक्तेभ्योंऽशमाप्नुयात्।।३५।।

पिता द्वारा पुत्रों में सम्पत्ति का विभाजन करने के पश्चात् उत्पन्न पुत्र पिता के हिस्से का अधिकारी होता है परन्तु पहले विभाजित अन्य भाइयों की सम्पत्ति में उसका हिस्सा नहीं होगा।

(वृ०) यदिविभागात्पूर्वं उत्पन्नस्तदातु सर्वसोदरसमभागग्राही सम्भवत्येवेति फलितार्थः।

यदि विभाजन से पहले उत्पन्न हुआ है तब वह सभी सगे भाइयों के बराबर का हिस्सा ग्रहण करने वाला होगा – यह फलितार्थ है।

ननु पितृमरणानन्तरं विभक्तेषु पुत्रेषु समुत्पन्नपुत्रस्य कथं भागः इत्याह–

पिता के मरने के बाद उत्पन्न पुत्र का बँटवारा हो चुके भाइयों में किस प्रकार हिस्सा होगा, यह कथन –

पितुरूर्ध्वे विभक्तेषु पुत्रेषु यदि सोदरः।
जायते तद्विभागः स्यादायव्ययविशोधितात्।।३६।।

पुत्रों में सम्पत्ति का बँटवारा हो जाने पर पिता की मृत्यु के पश्चात् यदि भाई उत्पन्न होता है तो आय-व्यय का आकलन करने के पश्चात् उसका हिस्सा होता है।

(वृ०) स्वांशादितिशेषः

अपने-अपने अंश में से व्यय को निकालकर जो शेष रहे उसमें से पिता की मृत्यु के पश्चात् उत्पन्न पुत्र को हिस्सा देना चाहिए।

विभागकालेऽस्पृष्टगर्भायां मातरि विभक्तभ्रातृभिः पश्चादुत्पन्नपुत्रायायव्यये विशोध्य स्वांशेभ्यः स्वसमानभागो देयः स्पष्टगर्भायां तु प्रसवं प्रतीक्ष्य भागो कार्य इति तत्त्वम्।

सम्पत्ति-विभाजन के समय माता का गर्भ स्पष्ट न होने पर विभाजन के पश्चात् उत्पन्न पुत्र के लिए भाइयों द्वारा आय और व्यय की गणना कर अपने-अपने हिस्सों से अपने हिस्से के बराबर हिस्सा देना चाहिए। गर्भ स्पष्ट होने पर प्रसव की प्रतीक्षा कर विभाजन करना चाहिए।

ब्राह्मणादिवर्णत्रयस्य सवर्णासवर्णस्त्रीसम्भवेन तज्जातपुत्राणां भागः विधेयः कथंविधेय इति दिदर्शयिषुराह –

ब्राह्मण आदि तीन वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समानवर्ण और असमानवर्ण से उत्पन्न पुत्रों का हिस्सा किस प्रकार होना चाहिए यह बताने की इच्छा से कथन –

ब्राह्मणस्य चतुर्वर्णस्त्रियः सन्ति तदा वसु।
विभज्य दशधा तज्जान् चतुस्त्रिद्व्यंशभागिनः।।३७।।

कुर्यात्पितावशिष्टं तु भागं धर्मे नियोजयेत्।
शूद्राजातो न भागार्हो भोजनांशुकमन्तरा।।३८।।

ब्राह्मण की चार (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) वर्ण वाली पत्नियां हों तो पिता सम्पत्ति को दस भागों में बाँटकर उनसे उत्पन्न पुत्रों को क्रमशः चार (ब्राह्मणी से उत्पन्न), तीन (क्षत्राणी से उत्पन्न) और दो (वैश्य स्त्री से उत्पन्न) हिस्से का अधिकारी बनाये। शेष भाग को धर्म कार्य में लगाये। शूद्र से उत्पन्न पुत्र भोजन और वस्त्र के अतिरिक्त सम्पत्ति में किसी हिस्से का अधिकारी नहीं है।

क्षत्राज्जातः सवर्णायामर्धभागी विशात्मजा-
जातस्तुर्यांशभागी स्याच्छूद्रात्पत्रोऽन्नवस्त्रभाक्।।३९।।

क्षत्रिय पिता की सवर्णा अर्थात् क्षत्राणी से उत्पन्न पुत्र सम्पत्ति के आधे भाग का अधिकारी है, वैश्य स्त्री से उत्पन्न पुत्र चतुर्थ भाग का अधिकारी है, शूद्रा स्त्री से उत्पन्न पुत्र मात्र अन्न, वस्त्र का अधिकारी है।

वैश्याज्जातः सवर्णायां पुत्रः सर्वपतिर्भवेत्।
शूद्राजातो न दायादो योग्यो भोजनवाससाम्।।४०।।

वैश्य पिता की सवर्णा अर्थात् वैश्य स्त्री से उत्पन्न पुत्र सम्पूर्ण सम्पत्ति का स्वामी हो, शूद्रा स्त्री से उत्पन्न पुत्र सम्पत्ति का भागीदार नहीं है, वह केवल भोजन और वस्त्र का अधिकारी है।

वर्णत्रये [१]यदा दासीवर्गशूद्रात्मजो भवेत्।
जीवत्तातेन यत्तस्मै दत्तं तत्तस्य निश्चितम्।।४१।।

तीनों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पुरुष) से यदि शूद्र वर्ण की दासी से पुत्र उत्पन्न हो तो जीवित रहते हुए पिता द्वारा उसको जो दिया गया है वह निस्सन्देह उसका है।

मृते पितरि तत्पुत्रैः कार्यं तेषां हि पालनम्।
निबन्धश्च तथा कार्यस्तातं ते न स्मरन्ति हि।।४२।।

निश्चय ही पिता की मृत्यु होने पर उसके पुत्रों द्वारा उनका पालन करना चाहिए। उसे सम्पत्ति आदि का दान इस प्रकार करना चाहिए जिससे वे पिता का स्मरण न करें।

शूद्रस्य स्त्री भवेच्छूद्री नान्या तज्जातसूनवः।
यावन्तस्तेऽखिला नूनं भवेयुः समभागिनः।।४३।।

शूद्र की पत्नी शूद्र वर्ण की ही होती है उससे उत्पन्न पुत्र अन्य वर्ण के नहीं होते वे जितने भी हैं निश्चित रूप से समान भाग वाले होने चाहिए।

(वृ०) ब्राह्मणस्य चातुर्वर्ण्यस्त्रीभ्यो यदि चत्वारः पुत्राः सञ्जातास्तदा तद्भागं चिकीर्षुः पिता स्वीयधनं दशधा विभज्य सवर्णापुत्राय भागचतुष्कं क्षत्रियाजाताय भगत्रयं वैश्याजाताय च भागद्वयं ददाति अवशिष्टमेकं भागं च धर्मकार्ये व्ययति शूद्रायां जातस्तु न भागभोग्यं केवलं भोजनवस्त्रयोग्य एव आद्यश्लोके क्रमशः इति पदमध्याहार्यर्चमन्यत् सर्वं स्पष्टम्।

ब्राह्मण की चारों वर्णों की स्त्रियों से यदि चार पुत्र उत्पन्न हुए हों तब उनके भाग करना चाहिए। पिता अपने धन का दस भाग कर सवर्ण (अर्थात् ब्राह्मणी) से उत्पन्न पुत्र के लिए चार भाग, क्षत्रिय स्त्री से उत्पन्न पुत्र के लिए तीनभाग और वैश्य स्त्री से उत्पन्न पुत्र के लिए दो भाग देता है। शेष एक भाग धर्मकार्य में व्यय करता है। शूद्रा से उत्पन्न पुत्र हिस्से का अधिकारी नहीं है। केवल भोजन वस्त्र का ही अधिकारी है। प्रथम श्लोक में क्रमशः इस पद का अनुमान कर अन्य सब स्पष्ट है।

ननु शूद्रेणाविवाहितदास्याभुत्पन्नस्य कीदृशो भागः स्यादित्याह—

---

१. दासदासीवर्गः भ १, भ २, प १, प २।।

अब शूद्र द्वारा अविवाहिता दासी से उत्पन्न पुत्र का किस प्रकार हिस्सा हो यह बताया–

दास्यां जातोऽपि शूद्रेण भागभाक् पितुरिच्छया।
मृते तातेऽर्द्धभागी स्यादूढाजाभ्रातृभागतः।।४४।।

शूद्र (पिता) से दासी से उत्पन्न पुत्र भी पिता के जीवित रहने पर पिता की इच्छा से सम्पत्ति में हिस्से का अधिकारी होता है, पिता की मृत्यु हो जाने पर विवाहिता स्त्री से उत्पन्न हुए पुत्र के भाग में से उसे आधा भाग प्राप्त हो।

(वृ०) पितरि जीवति तदिच्छया भागो मृते च विवाहितपत्नीपुत्रापेक्षया दासेरोऽर्धभागं प्राप्नोति। सर्वदायादाभावे दौहित्राद्यभावे स एव सर्वस्वामीत्यर्थः।

पिता के जीवित होने पर उसकी इच्छा से हिस्सा मिलना चाहिए और मृत्यु हो जाने पर विवाहिता पत्नी से उत्पन्न पुत्र की तुलना में दासीपुत्र को आधा भाग मिलना चाहिए। सभी सम्बन्धियों तथा दौहित्र आदि का अभाव होने पर दासीपुत्र ही समस्त सम्पत्ति का स्वामी होता है।

ननु कश्चित् सवधूकस्सपुत्रोऽपुत्रो वात्युग्रव्याधिग्रसितः स्वजीवनाशां विमुच्य स्वकीयधनरक्षार्थं चेदन्यमधिकारिणं करोति स कीदृशो योग्यः स्यादित्याह–

कोई पत्नी युक्त व्यक्ति पुत्र सहित अथवा पुत्ररहित, भयङ्कर व्याधि से पीड़ित अपने जीवन की आशा छोड़कर, अपने धन की रक्षा के लिए दूसरे को अधिकारी बनाता है वह किस प्रकार अधिकारी है, इसका कथन –

जीवनाशाविनिर्मुक्तः पुत्रयुक्तोऽथवापरः।
सपत्नीकः स्वरक्षार्थमधिकारिपदे नरम्।।४५।।

दत्वा लेखं स्वनामाङ्कं राजाज्ञासाक्षिसंयुतम्।
कुलीनं धनिनं मान्यं स्थापयेत्स्त्रीमनोनुगम्।।४६।।

जीवन की आशा क्षीण हो जाने पर पुत्रवान् अथवा पुत्ररहित स्वामी, पत्नी जीवित होने पर सम्पत्ति की रक्षा के लिए कुलीन, धनवान्, सम्मानित और स्त्री के मनोनुकूल व्यवहार करने वाले पुरुष को अधिकारी पद पर स्थापित करावे, राजाज्ञा के साक्ष्य से युक्त अपने नाम का लेख उसे सौंपे।

(वृ०) अत्र नर इति जातिविशिष्टशब्दोक्त्याधिकारबाहुल्यमपि सूचितम्।

इस श्लोक में 'नर' इस जाति विशिष्ट एकवचनात्मक शब्द से अनेक अधिकारियों का भी अभिप्राय सूचित किया गया है।

ननु स्वामिनि मृते स पुरुषोऽधिकारं प्राप्य धनं विनाशयेद्भक्षयेद्वाथवा विधवायाः प्रतिकूलतां भजेत् तदा किं कर्त्तव्यमित्याह –

स्वामी के मरने पर वह पुरुष अधिकार प्राप्त कर धन विनष्ट कर दे अथवा खा डाले अथवा स्वामिनी विधवा के प्रतिकूल आचरण करे तब क्या करना चाहिए, इसका कथन –

प्राप्याधिकारं पुरुषः परासौ गृहनायके।
स्वामिना स्थापितं द्रव्यं भक्षयेद्वा विनाशयेत्।।४७।।

भवेच्चेत्प्रतिकूलश्च मृतवध्वाः कथञ्चन।
तदा सा विधवा सद्यः कृतघ्नं तं मदाकुलम्।।४८।।

भूपाज्ञापूर्वकं कृत्वा स्वाधिकारपदच्युतम्।
नैररन्यैः स्वविश्वस्तैः कुलरीतिं प्रचालयेत्।।४९।।

गृहस्वामी की मृत्यु हो जाने पर अधिकार प्राप्त कर वह पुरुष स्वामी द्वारा स्थापित धन को खा जाय अथवा विनष्ट कर दे और कभी मृतक की विधवा के विपरीत हो जाय तब वह विधवा शीघ्र ही उस मदान्ध कृतघ्न को राजा की आज्ञापूर्वक उस अधिकार से हटाकर अपने दूसरे विश्वस्त पुरुषों द्वारा कुलरीति का सञ्चालन करे।

तद्द्रव्यमतियत्नेन रक्षणीयं तया सदा।
कुटुम्बस्य च निर्वाहस्तन्मिषेण भवेद्यथा।।५०।।

उस विधवा द्वारा वह धन सदा बहुत यत्नपूर्वक रक्षणीय है जिससे उस धन के ब्याज से कुटुम्ब का पालन हो सके।

सत्यौरसे तथा दत्ते सुविनीतेऽथवासति।
कार्ये सावश्यके प्राप्ते कुर्याद्दानाधिविक्रयम्।।५१।।

उस विधवा के उत्तम विनयवाला औरस (अपनी कोख से उत्पन्न) अथवा दत्तक पुत्र हो अथवा न हो आवश्यक कार्य आने पर वह (सम्पत्ति का) दान, धरोहर रखना अथवा विक्रय करे।

(वृ०) ननु भर्तुर्मरणादौ तद्धनस्वामित्वे कस्याधिकार इत्याह –

पति की मृत्यु आदि होने पर उसके धनस्वामित्व पर किसका अधिकार है, इसका कथन –

भ्रष्टे नष्टे च विक्षिप्ते पत्यौ[1] प्रव्रजिते[2] मृते।
तस्य निश्शेषवित्तस्याधिपा स्याद्वरवर्णिनी।।५२।।

---

१. यत्पौ भ २, यत्यौ प २।।
२. प्रवृजिते भ १, भ २, प १, प २।।

पति के पतित हो जाने, गायब हो जाने, विक्षिप्त हो जाने, संन्यास ले लेने और मृत्यु हो जाने पर उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति की स्वामिनी विवाहिता स्त्री हो।

कुटुम्बपालने शक्ता ज्येष्ठा या च कुलाङ्गना।
पुत्रस्य सत्त्वेऽसत्त्वे च भर्तृवत्साधिकारिणी।।५३।।

परिवार के पालन में सक्षम, जो ज्येष्ठ और कुलीन हो वह पुत्रवती हो या न हो पति की भाँति वही सम्पत्ति की अधिकारिणी है।

(वृ०) नन्वौरसपुत्राभावे तया कः पुत्रो दत्तत्वेन ग्राह्य इत्याह –

वैध पुत्र या पति से उत्पन्न पुत्र के अभाव में विधवा द्वारा किसे दत्तक पुत्र के रूप में ग्रहण करना चाहिए, इसका कथन –

भ्रातृव्यं तदभावे तु स्वकुटुम्बा[१]त्मजं तथा।
असंस्कृतं संस्कृतं च तदसत्त्वे सुतासुतम्।।५४।।

बन्धुजं तदभावे तु तस्मिन्नसति गोत्रजम्।
तस्यासत्वे लघुं सप्तवर्षसंस्थं च देवरम्।।५५।।

विधवा स्वौरसाभावे गृहीत्वा दत्तरीतितः।
अधिकारपदे भर्तुः स्थापयेत्पञ्चसाक्षितः।।५६।।

यदि स दत्तकः पित्रोः प्रीत्या सेवासु तत्परः।
विनयी भक्तिनिष्ठश्च भवेदौरसवत्तदा।।५७।।

भतीजा को दत्तक पुत्र बनाये, उस (भतीजा के न होने पर) अपने परिवार की सन्तान, चाहे उसका संस्कार हुआ हो या न हुआ हो और उसके न होने पर पुत्री के पुत्र (दौहित्र) को दत्तक बनाये। उस (पुत्री के पुत्र) के अभाव में (अपने) भाई के पुत्र, भाई के पुत्र के न रहने पर अपने गोत्र में उत्पन्न और उसके न होने पर अपने सातवर्षीय कनिष्ठ देवर को विधवा अपने कोख से उत्पन्न पुत्र के अभाव में दत्तक पुत्र बनाये और उसे पति के अधिकार स्थान पर पाँच साक्षियों के समक्ष स्थापित करे। यदि वह दत्तक पुत्र विनयी और भक्तिनिष्ठ है और प्रीतिपूर्वक माता-पिता की सेवा में तत्पर है तो वह औरस (अपनी कोख से उत्पन्न) के समान ही है।

(वृ०) ननु दत्तपुत्रग्रहणे का रीतिरित्याह –

दत्तक पुत्र ग्रहण करने की क्या रीति है? यह कथन –

---

१. कटुंव भ १, भ २, कटुंब प १।।

अप्रजा मनुजः स्त्री वा गृह्णीयाद्यदि दत्तकम्।
तदा तन्मातृपित्रादेर्लेख्यं बन्ध्वादिसाक्षियुक्॥५८॥

राजमुद्राङ्कितं सम्यक्कारयित्वा कुटुम्बजान्।
ततो ज्ञातिजनांश्चैवाहूय भक्तिसमन्वितः॥५९॥

सधवागीततूर्यादिमङ्गलाचारपूर्वकम्।
गत्वा जिनालये कृत्वा जिनाग्रे स्वस्तिकं पुनः॥६०॥

प्राभृतं च यथाशक्ति विधाय सुगुरुं तथा।
नत्वा दत्त्वा च सद्दानं व्याघुट्य निजमन्दिरम्॥६१॥

आगत्य सर्वलोकेभ्यस्ताम्बूलश्रीफलादिकम्।
दत्वा सत्कार्य स्वस्रादीन् वस्त्रालङ्करणादिभिः॥६२॥

आहूतगृह्यगुरुणा कारयेज्जातकर्म सः।
ततो जातोऽस्य पुत्रोऽयमिति लोकैर्निगद्यते॥६३॥

तदैवापणभूवास्तुग्रामप्रभृतिकर्मसु।
अधिकारमवाप्नोति राज्यकार्येष्वयं पुनः॥६४॥

कोई निःसन्तान पुरुष अथवा स्त्री यदि दत्तक पुत्र ग्रहण करे तो उसके माता-पिता आदि से बन्धु आदि साक्षी सहित राजमुद्रा से अङ्कित दस्तावेज भली-भांति कराकर, पारिवारिक जनों और जातीय बन्धुओं को बुलाकर, भक्ति से पूर्ण हो सौभाग्यवती स्त्रियों के साथ गीत, वाद्य आदि मङ्गलाचारपूर्वक जिन मन्दिर जाकर, जिन प्रतिमा के आगे स्वस्तिक बनाकर, अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्राभृत (उपहार) देकर, सद्गुरु की वन्दना कर और दान देकर अपने घर वापस लौटकर सभी लोगों को ताम्बूल, श्रीफल आदि देकर, सास आदि को वस्त्र और आभूषण से सम्मानित कर, कुलगुरु को बुलाकर जात कर्म सम्पन्न करना चाहिये। तत्पश्चात् लोगों द्वारा 'यह पुत्र हो गया' ऐसा कहा जाता है। इसके बाद वही पुत्र बाजार, भूमि, वास्तु, ग्राम आदि कर्मों में और राज्यकार्यों में भी अधिकार प्राप्त करता है।

(वृ०) नन्वौरसोत्पत्तौ पूर्वात्तदत्तकस्य काभागयोग्यतेत्याह –

वैध पुत्र के उत्पन्न होने पर पहले से लिए गये दत्तक पुत्र के भाग का क्या अधिकार है? यह कथन –

सवर्णास्त्र्यौरसोत्पत्तौ तुर्यांशार्हो भवत्यपि।
भोजनांशुकदानार्हा असवर्णा स्तनन्धयाः॥६५॥

(दत्तक पुत्र बनाने के पश्चात्) सवर्णा अर्थात् स्वजातीय विवाहिता स्त्री से पुत्र उत्पन्न हो तो वह दत्तक पुत्र चतुर्थ अंश का स्वामी होगा। यदि विजातीय स्त्री से पुत्र उत्पन्न हो तो (उत्पन्न पुत्र) मात्र अन्न, वस्त्र के दान का पात्र है।

(वृ०) ननु दत्तकग्रहणान्तरमौरसोत्पत्तावुणीषबन्धयोग्यता कस्येत्याशङ्कायामाह–

दत्तक ग्रहण करने के पश्चात् वैध पुत्र के उत्पन्न होने पर पगड़ी बाँधने का अधिकार किसका है इस आशङ्का के विषय में कथन –

गृहीते दत्तके जात औरसस्तर्हि बन्धनम्।
उष्णीषस्य भवेत्तस्य न हि दत्तस्य सर्वथा।।६६।।

तुरीयांशं प्रदाप्यैव दत्तः कार्यः पृथक्तदा।
पूर्वमेवोष्णीषबन्धे यो जातः स समांशभाक्।।६७।।

दत्तक ग्रहण करने के पश्चात् औरस (वैध या विवाहिता स्त्री से उत्पन्न) पुत्र हो तो उसी (पुत्र) को पगड़ी (मुकुट) बाँधा जाये, किसी भी रूप में दत्तक को नहीं। चौथा अंश देकर ही तब उसे पृथक् कर देना चाहिए। लेकिन पहले ही यदि दत्तकपुत्र को पगड़ी बाँध दी गई है तो उत्पन्न पुत्र बराबर के हिस्से का अधिकारी होगा।

(वृ०) ननु पुत्राः कतिविधाः किञ्च तल्लक्षणानीत्याह –

पुत्र कितने प्रकार के हैं और उनके लक्षण क्या हैं? यह कथन –

औरसो दत्रिमश्चेति मुख्यौ क्रीतः सहोदरः।
दौहित्रश्चेति गौणास्तु पञ्चपुत्रा जिनागमे।।६८।।

जिन प्रणीत आगम शास्त्र में पाँच प्रकार के पुत्र कहे गये हैं – (उनमें) वैधपुत्र एवं दत्तक मुख्य हैं और क्रय किया हुआ (क्रीत), सगा भाई (सहोदर) और दौहित्र (पुत्री का पुत्र) ये गौण हैं।

धर्मपत्न्यां समुत्पन्नः औरसो दत्तकस्तु सः।
यो दत्तो मातृपितृभ्यां प्रीत्या यदि कुटुम्बजः।।६९।।

क्रयक्रीतो भवेत्क्रीतः लघुभ्राता च सोदरः।
सौतः सुतोद्भवश्चेमे पुत्रा दायहराः स्मृताः।।७०।।

पौनर्भवश्च कानीनः प्रच्छन्नः क्षेत्रजस्तथा।
कृत्रिमश्चापविद्धश्च दत्तश्चैव सहोढजः।।७१।।

अष्टावमी पुत्रकल्पा जैने दायहरा न हि।
तीर्थान्तरीयशास्त्रे च कल्पिताः स्वार्थसिद्धये।।७२।।

धर्मपत्नी से उत्पन्न पुत्र औरस, परिवार में उत्पन्न शिशु जो यदि माता-पिता द्वारा प्रेमपूर्वक दिया गया हो वह दत्तकपुत्र, मूल्य देकर क्रय किया हुआ क्रीत और अनुज सोदर और पुत्री से उत्पन्न पुत्र दौहित्र – ये (पाँच प्रकार के) पुत्र पैतृक सम्पत्ति के हिस्सेदार हैं। (विधवा स्त्री से अन्य पुरुष द्वारा उत्पन्न) पौनर्भव, (अविवाहिता स्त्री से उत्पन्न) कानीन, (पर-पुरुष से उत्पन्न) प्रच्छन्न, (देवर से उत्पन्न) क्षेत्रज, (लोभ दिखाकर अपनी बनायी हुई स्त्री से उत्पन्न) कृत्रिम, (माता-पिता द्वारा त्यक्त शिशु) अपविद्ध, (माता-पिता द्वारा निष्कासित शिशु) दत्त, (गर्भवती कन्या से विवाह के उपरान्त उत्पन्न शिशु) सहोढज – ये आठ प्रकार के पुत्र जैन परम्परा में सम्पत्ति के भागी नहीं हैं, परन्तु अन्य परम्पराओं में स्वार्थसिद्धि के लिए पुत्र रूप माने गये हैं।

(वृ०) भर्तृमरणान्तरं तत्पत्न्यामन्योत्पन्नः पौनर्भवः।१।

पति की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी को पर पुरुष से उत्पन्न पुत्र पौनर्भव है।

कन्यायामुत्पन्नः कानीनः।२।

कुँवारी कन्या से उत्पन्न पुत्र कानीन है।

परपुरुषात् जीवति भर्तरि गुप्तवृत्योत्पन्नः प्रच्छन्नः।३।

पति के जीवित रहने पर अन्य पुरुष से गुप्त रीति से उत्पन्न पुत्र प्रच्छन्न है।

स्वस्त्रियां देवरात्सपिण्डजादुत्पन्नः क्षेत्रजः।४।

अपनी स्त्री से सपिण्ड देवर (पति के भाई) से उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज है।

ग्रामादिजीविकालोभदर्शनेन स्वायत्तीकृतः कृत्रिमः। ५।

कोई ग्रामीण जो जीविका आदि का लोभ दिखाकर अपने अधीन कर लिया गया हो वह कृत्रिम पुत्र है।

मातृपितृत्यक्तशिशुरनेन केनापि गृहीतोऽपविद्धः।६।

माता-पिता द्वारा त्यक्त शिशु जिस किसी के द्वारा ग्रहण कर लिया गया हो वह अपविद्ध है।

मातृपितृनिष्कासितः तद्वर्जितो वा स्वयमागतो दत्तः।७।

माता-पिता द्वारा निष्कासित, त्याग किया हुआ अथवा स्वयं आया हुआ पुत्र दत्त कहलाता है।

सगर्भाकन्याविवाहोत्तरकालजातः सहोढजः।८।

गर्भवती कन्या का विवाह के पश्चात् उत्पन्न पुत्र सहोढज है।

एतेऽष्टावपि भेदा अन्यतीर्थीदायादाः पिण्डदाश्चोक्ता जैनशास्त्रे जारजादिदोषगर्भितत्वेन न दायादाश्चेति।

(ऊपर गिनाये गये) ये आठ भेद अन्य मत वालों के द्वारा सम्पत्ति के अधिकारी और पितरों को पिण्ड देने वाले कहे गये हैं। जैन शास्त्र में (जार अर्थात् उपपति से उत्पन्न होने से) जारजादि दोष से युक्त होने के कारण दाय के अधिकारी नहीं गिने जाते हैं।

(वृ०) ननु स्वामिमरणानन्तरं तद्धनस्वामित्वं केन क्रमेण स्यादित्याह–

स्वामी के मरने के पश्चात् उसके धन का स्वामित्व किस क्रम से हो, इसका कथन–

पत्नी पुत्रश्च भ्रातृव्यः सपिण्डश्च दुहितृजः।
बन्धुजो गोत्रजश्च स्वस्वामी स्यादुत्तरोत्तरम्।।७३।।
तदभावे च ज्ञातियैस्तदभावे महीभुजा।
तद्धनं सफलं कार्यं धर्ममार्गे प्रदाय च।।७४।।

(स्वामी की मृत्यु के पश्चात्) उसकी सम्पत्ति के स्वामी उत्तरोत्तर उसकी पत्नी, पुत्र, भतीजा, सपिण्ड – पितरों को पिण्ड देने वाला, दौहित्र, निकट सम्बन्धी और सगोत्रीय होगें। सगोत्रीय के न होने पर जातीय और उसके न होने पर राजा धर्म मार्ग में उसके धन को प्रदान कर उसे सफल बनाये।

(वृ०) मृतभर्तृद्रव्यस्य सर्वस्य पूर्वं स्त्री स्वामिनी,

मरे हुए पति के समस्त द्रव्य की स्वामिनी पहले पत्नी,

तदभावे पुत्रः,

उस (पत्नी) के अभाव में पुत्र,

तदभावे भ्रातृजः,

उस (पुत्र) के अभाव में भतीजा,

तदभावे सपिण्डः आसप्तमपुरुषवंश्यः,

उस (भतीजे) के अभाव में सपिण्ड – समान पितरों को पिण्ड देने वाला सात पीढ़ी तक के वंशज,

तदभावे दौहितः,

उस (सपिण्ड) के अभाव में दौहित्र–पुत्री का पुत्र,

तदभावे बन्धुजः आचतुर्दशपुरुषवंश्यः,

उस (दौहित्र) के अभाव में बन्धुज – चौदहवीं पीढ़ी तक स्वामी का वंशज अधिकारी होता है।

तदभावे गोत्रजः,

उस (बन्धुज) के अभाव में गोत्र में उत्पन्न हुआ पुरुष स्वामी होता है।

पूर्वाभावे परः स्वामी भवति।

इस प्रकार पूर्व के अभाव में बाद वाला स्वामी होता है।

एतेषामभावे ज्ञातिजनाः

इनके अभाव में जाति के पुरुष अधिकारी होते हैं।

सर्वेषामभावे नृपेण च मृतद्रव्यं धर्मकार्ये प्रयोक्तव्यम्।

इन सबका अभाव हो तो राजा द्वारा मृतक के धन को धार्मिक कार्य में प्रयोग करना चाहिए।

ननु विधवास्त्री ज्येष्ठदेवरादिभ्यो यदि प्रतिकूला कुशीला वा स्यात् तदा किं कर्त्तव्यमित्याह –

यदि विधवा स्त्री ज्येष्ठ (पति के अग्रज) और देवर (पति के अनुज) से विरुद्ध हो, अमर्यादित अथवा दुराचरण करने वाली हो तो क्या करना चाहिए, इसका कथन –

प्रतिकूला कुशीला च निर्वास्या विधवापि सा।
ज्येष्ठदेवरतत्पुत्रैः कृत्वान्नादिनिबन्धनम्।।७५।।

यदि विधवा प्रतिकूल और कुत्सित आचरण वाली हो तो अन्न आदि का प्रबन्ध कर ज्येष्ठ, देवर और उस (विधवा) के पुत्रों द्वारा उसे (घर से) निष्कासित करना चाहिए।

(वृ०) अधिकारच्युतौ यदि कियता कालेन सा सुचरिता स्यात् तदा पुनरप्यधिकारं प्राप्नुयादिति विशेषः यदुक्तम् –

अधिकार से रहित करने के कुछ समय बाद वह विधवा अच्छे आचरण वाली बन जाय तो दुबारा अधिकार प्राप्त करे यह विशेष है जैसा कि कहा गया है–

सुशीलाप्रजसः [१]पोष्या योषितः साधुवृत्तयः।
प्रतिकूला च निर्वास्या दुश्शीला व्यभिचारिणी।।७६।।

१. योव्यपोषितः भ १, योव्यप्पोषितः भ २, प १, प २।।

उत्तम आचारण वाली, सच्चरित्रा, स्त्रियों का पोषण करना चाहिए, (मर्यादा के) विरुद्ध कुत्सित आचरण वाली और दुश्चरित्र स्त्री को घर से निकाल देना चाहिए।

(वृ०) नन्वप्रजा विधवा भूतावेशादिदोषसद्भावेन यदि स्वरक्षा-करणेऽसमर्थो तदा केन तद्रक्षा विधेयेत्याह –

यदि सन्तान रहित विधवा भूत आदि से आविष्ट होने के कारण अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो तब उसकी रक्षा किसके द्वारा की जानी चाहिए, इसका कथन–

भूतावेशादिविक्षिप्तात्युग्रव्याधिसमन्विता ।
वातादिदूषिताङ्गा च मूकान्धास्पष्टभाषिणी।।७७।।
मदान्धा स्मृतिहीना च धनं स्वीयं कुटुम्बकम्।
त्रातुं न हि समर्था या सा पोष्या ज्येष्ठदेवरैः।।७८।।

भूत-पिशाच आदि की पीड़ा से विक्षिप्त, अत्यन्त गम्भीर रोग से पीड़ित, वायु आदि से दूषित अङ्ग वाली, गूंगी, अन्धी, अस्पष्ट बोलने वाली, मदान्ध, स्मरणशक्ति खोने वाली विधवा यदि धन से अपने कुटुम्ब की रक्षा करने में असमर्थ है तो ज्येष्ठ और देवर द्वारा उसका पालन किया जाना चाहिए।

भ्रातृजैश्च सपिण्डैश्च बन्धुभिर्गोत्रजैस्तथा।
ज्ञातिजैर्रक्षणीयं तद्धनं चातिप्रयत्नतः।।७९।।

भाई के पुत्रों (भतीजों), सपिण्ड पुरुषों (सात पीढ़ी तक स्वामी की वंश परम्परा में उत्पन्न), बन्धुज (चौदहवीं पीढ़ी तक स्वामी की वंशपरम्परा में उत्पन्न) और अपने गोत्रीय सजातीय लोगों द्वारा उसके धन की अत्यधिक प्रयत्न से रक्षा की जानी चाहिए।

(वृ०) अत्राप्यसत्वेन प्रतिकूलतया वा पूर्वाभावे परैरिति बोध्यम्।

इस स्थिति में अभाव से अथवा विपरीत स्थिति होने पर पहले के अभाव में बाद के द्वारा (उसके धन की रक्षा की जानी चाहिए) यह जानना चाहिए।

नन्वनपत्यविधवाग्रहणे तत्पितृपक्षीयानामपि कोप्यधिकारोऽस्ति न वेत्याह–

सन्तानहीन विधवा का धन ग्रहण करने में उसके पितृपक्ष वालों का भी कोई अधिकार है अथवा नहीं, इसका कथन–

यच्च दत्तं स्वकन्यायै यज्जामातृकुलागतम्।
तद्धनं न हि गृह्णीयात् कोऽपि पितृकुलोद्भवः।।८०।।

जो सम्पत्ति अपनी कन्या को दे दिया है और जो जामाता के परिवार से प्राप्त हुई है वह धन (विधवा के) पिता के कुल में उत्पन्न कोई भी ग्रहण न करे।

[१]किन्तु त्राता न कोऽपि स्यात्तदा तां तद्धनं तथा।
रक्षेत्तस्या मृतौ तच्च धर्ममार्गे नियोजयेत्।।८१।।

परन्तु (उस विधवा का) कोई रक्षक न हो तब उसकी तथा उसके धन की रक्षा करनी चाहिए और उस (विधवा) की मृत्यु हो जाने पर धन का धर्म के मार्ग में उपयोग करना चाहिए।

(वृ०) असुरादिपापविवाहविवाहितकन्याधनं तु पुत्राभावे मातृपितृभ्रातरो गृह्णन्ति तैरदत्वादितिविशेषः।

असुरादि पापविवाह अर्थात् जिन विवाहों में कन्यादान आदि सम्पन्न न किया गया हो ऐसे विवाह द्वारा विवाहित पुत्ररहित कन्या के धन को माता-पिता और भाई ग्रहण करते हैं क्योंकि उनके द्वारा कन्यादान नहीं किया गया है।

ननु मातृसत्वे पुत्रस्य कियानधिकार इत्याह –

माता के होने पर पुत्र का कितना अधिकार, इसका कथन –

आत्मजो दत्रिमादिश्च विद्याभ्यासैकतत्परः।
मातृभक्तियुतः शान्तः सत्यवक्ता जितेन्द्रियः।।८२।।
समर्थो व्यसनापेतः कुर्याद्रीतिं कुलागताम्।
कर्तुं शक्तो विशेषं नो मातुराज्ञां विमुच्य वै।।८३।।

विवाहिता पत्नी से उत्पन्न पुत्र, दत्तकादि पुत्र, विद्याभ्यास में तल्लीन, मातृ की भक्ति वाला, शान्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, समर्थ (सोलह वर्ष से अधिक), व्यसन रहित, कुलपरम्परा से प्राप्त परिपाटियों का पालन करने वाला, माता की आज्ञा को छोड़कर कुछ विशेष करने में समर्थ नहीं है।

(वृ०) अत्र समर्थ इति षोडशवर्षातिगो ज्ञेयस्तदन्तर्बालभवेनासमर्थत्वात्।

प्रस्तुत श्लोक में समर्थ शब्द सोलह वर्ष से अधिक के लिये जानना चाहिए उसके अन्दर (कम) बालक रूप असमर्थ होने से।

ननु जननीसत्वे पुत्रः पैत्र्यपैतामहादिवस्तूनां दानं विक्रयं वा किं कर्तुं शक्नोतीत्याह –

माता के होने पर पिता अथवा पितामह की वस्तुओं का दान अथवा विक्रय करने में पुत्र समर्थ है अथवा नहीं, इसका कथन –

---

१. न किन्तु त्राता न भ १, भ २, प २, ना किन्तु त्राता न प १।।

पितुर्मातुर्द्वयोःसत्त्वे पुत्रैः कर्तुं न शक्यते।
पित्रादिवस्तुजातानां सर्वथा दानविक्रये।।८४।।

माता और पिता दोनों के (जीवित) रहने पर पिता द्वारा उपार्जित वस्तुओं का किसी भी स्थिति में दान और विक्रय पुत्र द्वारा नहीं किया जा सकता।

(वृ०) ननु औरसो दत्तको वा यदि प्रतिकूलः स्यात्तर्हि मातृपितृभ्यां किं कर्त्तव्यमित्याह –

वैध पुत्र अथवा दत्तक पुत्र यदि विरोधी हो जाय तो माता-पिता को क्या करना चाहिए? इसका कथन –

पितृभ्यां प्रतिकूलःस्यात्पुत्रो दुष्कर्मयोगतः।
ज्ञातिधर्माचारभ्रष्टोऽथवा व्यसनतत्परः।।८५।।

सम्बोधितोऽपि सद्वाक्यैर्न त्यजेद्दुर्मतिं यदि।
तदा तद्वृत्तमाख्याय ज्ञातिराज्याधिकारिणः।।८६।।

तदीयाज्ञां गृहीत्वा च सर्वैः कार्यो गृहाद्बहिः।
तस्याभियोगः कुत्रापि श्रोतुं योग्यो न कर्हिचित्।।८७।।

पुत्र पापकार्यों के सम्पर्क से माता-पिता के प्रतिकूल आचरण करे, जाति-धर्म के आचार से भ्रष्ट हो गया हो अथवा बुरी आदतों में संलग्न हो, सत्परामर्श दिये जाने पर भी यदि दुर्बुद्धि का त्याग नहीं करता है तो उसका आचरण जाति तथा राज्य के अधिकारियों को बताकर और उस (राज्याधिकारी) की आज्ञा लेकर सब लोग उसे घर से बहिष्कृत करें। बहिष्कृत किये जाने पर उसका आरोप कहीं भी सुने जाने योग्य नहीं है।

पुत्रीकृत्य स्थापनीयोऽन्यं डिम्भं सुकुलोद्भवम्।
विधीयते सुखार्थं हि चतुर्वर्णेषु सन्ततिः।।८८।।

(पुत्र को घर से बहिष्कृत कर) अच्छे कुल में उत्पन्न दूसरे शिशु को पुत्र रूप में स्थापित करना चाहिए। निश्चित रूप से चारों ही वर्णों में सन्तान सुख के लिए होता है।

(वृ०) नन्वविभक्तेषु भ्रातृष्वेको दीक्षां गृह्णाति तदा तद्भागग्रहणे तत्पत्नी शक्ता न वेत्याह –

अविभाजित भाइयों में से एक भाई दीक्षा ग्रहण कर लेता है तब उसका भाग ग्रहण करने में उसकी पत्नी सक्षम है या नहीं, इसका कथन –

परिव्रज्या[1] गृहीतैकेनाविभक्तेषु बन्धुषु।
विभागकाले तद्भागं तत्पत्नी लातुमर्हति।।८९।।

भाइयों में सम्पत्ति का विभाजन न हुआ हो और एक भाई दीक्षा ग्रहण कर ले तो विभाजन के समय उसका हिस्सा ग्रहण करने की अधिकारिणी उसकी पत्नी है।

(वृ०) एवमेव तत्पुत्रोऽपि मात्रभावे भागग्रहणेऽधिकारीति ज्ञेयम्।

इसी प्रकार उस (दीक्षा ग्रहण करने वाले) का पुत्र भी माता के न होने (मृत्यु हो जाने) पर हिस्सा (पिता की सम्पत्ति) ग्रहण करने का अधिकारी है – ऐसा जानना चाहिए।

ननु विभक्तेषु भ्रातृषु यदि कोऽपि विपक्षः प्रव्रजितो वा तदा तद्धनं के गृह्णन्तीत्याह–

भाइयों में विभाजन हो जाने पर यदि कोई भाई मृत्यु को प्राप्त हुआ हो अथवा दीक्षा ग्रहण कर लिया हो तो उसकी सम्पत्ति कौन ग्रहण करेगा, यह कथन–

पुत्रस्त्रीवर्जितः कोऽपि मृतः प्रव्रजितोऽथवा।
सर्वे तद्भ्रातरस्तज्जा गृह्णीयुस्तद्धनं समम्।।९०।।

पत्नी और पुत्र से रहित दीक्षा ग्रहण कर लेने वाले अथवा मृत पुरुष का धन उसके सभी भाई एवं भतीजे द्वारा बराबर-बराबर ग्रहण किया जाना चाहिये।

(वृ०) ननु भ्रातृषून्मत्तत्वादिदोषाप्तस्यापि किं भागार्हत्वमित्याह।

भाइयों में से विक्षिप्त या पागलपन आदि दोष से युक्त भाई भी क्या सम्पत्ति में हिस्से के योग्य है, यह कथन –

उन्मत्तो व्याधितः पङ्गुः षण्डोऽन्धःपतितो जडः।
स्रस्ताङ्गः पितृविद्वेषी मुमूर्षुर्बधिरस्तथा।।९१।।
मूकश्च मातृविद्वेषी महाक्रोधो निरिन्द्रियः।
दोषत्वेन न भागार्हाः पोषणीयाः स्वभ्रातृभिः।।९२।।

पागल, रोगग्रस्त, लंगड़ा, नपुंसक, अन्धा, आचारभ्रष्ट, मूर्ख, शिथिल अङ्गों वाला, पिता से शत्रुता रखने वाला, मरने की इच्छा वाला, गूँगा, माता से वैर रखने वाला, महाक्रोधी, विकलाङ्ग दोष वाला (पिता की सम्पत्ति में) हिस्से का अधिकारी नहीं है। उसके भाइयों द्वारा उसका पोषण किया जाना चाहिए।

---

१. गृहीतृ भ १, भ २, प १, प २।।

एषां तु पुत्रपत्न्यश्चेच्छुद्धा भागमवाप्नुयुः।
दोषस्यापगमे त्वेषां भागार्हत्वं प्रजायते।।९३।।

इन (दोषयुक्त पुत्रों) के यदि पुत्र और पत्नी शुद्ध हों तो वे (सम्पत्ति में) हिस्सा प्राप्त करें। इन (दोषयुक्त पुत्रों) का दोष दूर हो जाने पर इनमें हिस्सा प्राप्त करने की योग्यता उत्पन्न हो जाती है।

(वृ०) ननु विवाहितोऽपि दत्तको यदि मातृपितृभ्यां प्रतीपः स्यात्तदा किं कार्यमित्याह–

यदि गोद लिया हुए पुत्र का विवाह हो गया हो और वह माता-पिता के विरुद्ध हो जाय तो क्या करना चाहिए, इसका कथन –

विवाहितोऽपि चेद्दत्तः पितृभ्यां प्रतिकूलभाक्।
भूपाज्ञापूर्वकं सद्यो निस्सार्यो जनसाक्षितः।।९४।।

यदि दत्तक पुत्र विवाह के बाद भी माता-पिता की आज्ञा के विरुद्ध आचरण करने वाला हो जाये तो राजा की आज्ञा लेकर लोगों को साक्षी बनाकर उसे शीघ्र निष्कासित कर देना चाहिए।

(वृ०) ननु कोऽपि पत्नीपुत्रभ्रातृसम्मतिमन्तरा पैतामहं धनं कस्मैचिद्दातुमीश्वरः स्यान्न वा इत्याह –

कोई व्यक्ति पितामह के धन को पत्नी, पुत्र और भाई की सहमति के विना किसी को देने में समर्थ है या नहीं, यह कथन–

पैतामहं वस्तुजातं दातुं शक्तो न कोऽपि हि।
अनापृच्छ्य निजां पत्नीं पुत्रान् भ्रातृगणं च वै।।९५।।

पितामहार्जिते द्रव्ये निबन्धे च तथा भुवि।
पितुः पुत्रस्य स्वामित्वं स्मृतं साधारणं यतः।।९६।।

पितामह (दादा या पितरों) द्वारा उपार्जित वस्तुओं को अपनी पत्नी, पुत्र और भाइयों से पूछे बिना किसी को नहीं दे सकता क्योंकि पितामह द्वारा अर्जित द्रव्य, जागीर तथा भूमि पर पिता और पुत्र का अधिकार सामान्य रूप से कहा गया है।

(वृ०) ननु बहुस्त्रीष्वेकस्याः पुत्रो जातोऽस्ति स एव सर्वपुत्रवतीनां धनस्य स्वामी स्याद्वा नेत्याह –

(किसी पुरुष की) बहुत सी स्त्रियों में से एक को पुत्र उत्पन्न हुआ हो तो वही (पुत्र) सभी माताओं के धन का स्वामी हो अथवा नहीं, इसका कथन –

जातेनैकेन पुत्रेण पुत्रवत्योऽखिलाः स्त्रियः।
अन्यतरस्या अपुत्राया मृतौ स तद्धनं हरेत्।।९७।।

एक पुरुष की कई पत्नियों में से एक पत्नी से पुत्र उत्पन्न होने पर सभी पत्नियाँ पुत्रवती कही जाती हैं। पुत्र रहित अन्य पत्नी की मृत्यु होने पर उसका धन वह पुत्र ग्रहण करे।

(वृ०) एक एव पुत्रो दुहितृभावे सर्वासामनपत्यानां धनस्य स्वामी स्यादिति।

(इसमें अपवाद यह है कि पुत्ररहित) स्त्रियों के पुत्री न होने पर एक ही पुत्र सभी निःसन्तान स्त्रियों की सम्पत्ति का स्वामी हो।

ननु पैतामहे द्रव्ये पौत्राणां भागः कथं स्यादित्याह –

पितामह की सम्पत्ति में पौत्रों का भाग किस प्रकार हो, इसका कथन –

पैतामहे च पौत्राणां भागाः स्युः पितृसंख्यया।
पितुर्द्रव्यस्य तेषां तु संख्यया भागकल्पना।।९८।।

पितामह की (सम्पत्ति में) पिता की संख्या की दृष्टि से पौत्रों का हिस्सा हो और पिता के धन में उन पुत्रों की संख्या की दृष्टि से हिस्सा हो।

(वृ०) ननु बहुषु भ्रातृष्वेकस्य पुत्रोत्पत्तावपरेषां तु पुत्राभावे किं स एव सर्वधन- स्वामी स्यादित्याह –

बहुत से भाइयों में से एक के पुत्र होने पर और अन्य के पुत्र न होने पर क्या वही सब के धन का स्वामी हो, यह कथन –

पुत्रस्त्वेकस्य सञ्जातः सोदरेषु च भूरिषु।
तदा तेनैव पुत्रेण ते सर्वे पुत्रिणः स्मृताः।।९९।।

बहुत से सहोदर भाइयों में से एक भाई के ही पुत्र उत्पन्न हुआ हो तब सभी भाई उसी पुत्र के कारण ही पुत्रवान कहे जाते हैं।

(वृ०) अत्रपुत्रत्वसम्बन्धप्रतिपादनेन सर्वधनस्वामी स एवैकः पुत्रः स्यादित्यावेदितम्।

उपर्युक्त श्लोक में पुत्र-सम्बन्ध के प्रतिपादन से सम्पूर्ण सम्पत्ति का स्वामी वही पुत्र हो, यह प्ररूपित किया।

नन्वविभक्तकुलक्रमागतद्रव्ये श्वश्रूसत्वे पुत्रवध्वाः कीदृशोऽधिकार इत्याह–

अविभाजित वंश-परम्परा से प्राप्त सम्पत्ति में सास के होने पर पुत्र-वधू का किस रूप में अधिकार होता है, यह कथन –

अविभक्तं क्रमायातं श्वसुरस्वं न हि प्रभुः।
कृत्ये निजे व्ययीकर्तुं सुतसम्मतिमन्तरा।।१००।।

पुत्र की स्वीकृति के बिना पुत्रवधू वंश-क्रम से प्राप्त, श्वसुर की अविभाजित सम्पत्ति को व्यक्तिगत कार्य के लिए व्यय करने की अधि- कारिणी नहीं है।

[१]विभक्ते तु व्ययं कुर्याद् धर्मादिषु यथारुचि।
तत्पत्न्यपि मृतौ तस्य कर्तुं शक्ता न तद्व्ययम्।।१०१।।

(सम्पत्ति का) विभाजन हो जाने पर पत्नी, धर्मादि कार्यों में अपनी रुचि के अनुसार व्यय करे लेकिन (पति) की मृत्यु हो जाने पर वह भी उस सम्पत्ति का व्यय करने की अधिकारिणी नहीं है।

निर्वाहमात्रं गृह्णीयात् तद्द्रव्यस्य च मिषतः।
प्राप्तोऽधिकारं सर्वत्र द्रव्ये व्यवहृतौ सुतः।।१०२।।

अपने निर्वाह मात्र हेतु उस धन का ब्याज रूप ग्रहण करे। मूलधन पर सर्वत्र अधिकार (मृतक के) पुत्र को है।

तथापीशो व्ययं कर्तुं न ह्यम्बानुमतिं विना।
सुते परासौ तत्पत्नी भर्तुर्धनहरी स्मृता।।१०३।।

तब भी माता की आज्ञा बिना वह पुत्र (धन) व्यय करने का अधिकारी नहीं है, पुत्र की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी पति के धन को ग्रहण करने वाली कही गई है।

यदि सा शुभशीला स्त्री श्वश्रूनिर्देशकारिणी।
कुटुम्बपालने शक्ता स्वधर्मनिरता[२] सदा।।१०४।।

सानुकूला च सर्वेषां भर्तुर्मचकसेविका।
श्वश्रूं याचेत पुत्रं हि विनयानतमस्तका।।१०५।।

न हि सापि व्ययं कर्तुं समर्था तद्धनस्य वै।
निजेच्छया निजां श्वश्रूमनापृच्छ्य च कुत्रचित्।।१०६।।

शुभ आचरणवाली, सास की आज्ञा का पालन करने वाली, परिवार के पालन में समर्थ, सदा अपने कर्त्तव्य में लीन, सभी कुटुम्बियों के अनुकूल आचरणवाली और पति-शय्या का सेवन करने वाली, पुत्रवधू अपनी सास एवं पुत्र से विनय से अवनत मस्तक वाली हो याचना करे। परन्तु वह उस धन को कभी सास से पूछे बिना अपनी इच्छा से व्यय करने में समर्थ नहीं है।

(वृ०) विभक्तधनव्ययीकरणे तु सर्वेषामधिकारोऽस्त्येवेति।

---

१. विभक्तं भ १, भ २, प १, प २।।
२. ०तासमा भ १, भ २, प १, प २।।

विभाजित धन को व्यय करने का तो सभी को अधिकार है ही।

ननु यदि पूर्वोक्तगुणयुक्ता विधवावधूर्नस्यात्तदा श्वश्रूसत्वे तस्याः श्वसुरस्थापितद्रव्ये कियानधिकार इत्याह –

यदि विधवा वधू ऊपर वर्णित गुणों से युक्त न हो तो सास के रहने पर श्वसुर द्वारा अर्जित सम्पत्ति में उसका कितना अधिकार हो, इसका कथन–

श्वशुरस्थापिते द्रव्ये श्वश्रूसत्त्वेऽधवा वधूः।
नाधिकारमवाप्नोति भुन्क्त्याच्छादनमन्तरा।।१०७।।

श्वसुर द्वारा अर्जित सम्पत्ति में सास के विद्यमान रहने पर विधवा पुत्रवधुओं को भोजन एवं वस्त्र के अतिरिक्त और कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है।

दत्तगृहादिकं सर्वं कार्यं श्वश्रूमनोनुगम्।
करणीयं सदा वध्वा श्वश्रूर्मातृसमा यतः।।१०८।।

सास द्वारा इच्छानुसार दिये गये सभी गृहकार्यों को वधू द्वारा किया जाना चाहिए क्योंकि सास माँ के समान है।

(वृ०) नन्वपुत्रस्य समातृकस्य सपत्नीकस्य पञ्चत्वे कस्याः पुत्रग्रहणाधिकारोऽस्ति इत्याह –

माता तथा पत्नी के जीवित रहने पर पुरुष की पुत्ररहित ही मृत्यु हो जाने पर माता तथा पत्नी में से दत्तक पुत्र ग्रहण करने का अधिकार किसका है, यह कथन–

गृह्णीयाद्दत्तकं पुत्रं पतिवद्विधवा वधूः।
न शक्ता स्थापितुं तं च श्वश्रूर्निजपतेः पदे।।१०९।।

विधवा पुत्रवधू पति रूप में दत्तक ग्रहण कर सकती है किन्तु सास अपने पति के रूप में दत्तक स्थापित नहीं कर सकती है।

(वृ०) ननु श्वश्रूश्वशुरहस्तगतं स्वभर्तृद्रव्यं विधवावधूर्गृहीतुं शक्ता न वेत्याह –

सास और श्वसुर के अधिकार में गये अपने पति के धन को विधवा-वधू ग्रहण कर सकती है अथवा नही, यह कथन –

स्वभर्त्रोपार्जितं द्रव्यं श्वश्रूश्वशुरहस्तगम्।
विधवाप्तुं न शक्ता तत्स्वामिदत्ताधिपैव हि।।११०।।

अपने पति द्वारा उपार्जित जो धन सास और श्वसुर के हाथ चला गया है उस धन को प्राप्त करने की विधवा अधिकारिणी नहीं है। उसके पति द्वारा जो धन उसे दिया गया है उस धन की अधिकारिणी है।

(वृ०) ननु जनको मातृपुत्रौ विरुद्धस्वभावत्वेन विभज्य पृथक् कृत्वा च परलोकं गतः पश्चात् पुत्रेऽपि निस्सन्ताने मृते तद्भागं को गृह्णीयादित्याह –

माता और पुत्र के विरुद्ध स्वभाव के कारण पिता, उनको विभाजित कर और अलग कर दिवङ्गत हो गया हो और बाद में पुत्र के भी सन्तान रहित मर जाने पर उसके हिस्से को कौन ग्रहण करे, इसका कथन –

अपुत्रपुत्रमरणे तद्द्रव्यं लाति तद्वधूः।
तन्मृतौ तस्य द्रव्यस्य श्वश्रूः स्यादधिकारिणी।।१११।।

यदि पुत्र की बिना पुत्र के मृत्यु हो जाये तो उसका धन वधू ग्रहण करती है। वधू की मृत्यु हो जाने पर श्वास उसके धन की अधिकारिणी होती है।

(वृ०) ननु पत्युपार्जितं धनं श्वश्रूसत्वे विधवावधूः व्ययीकर्तुं शक्नोति न वेत्याह–

पति द्वारा उपार्जित धन को सास के रहने पर विधवा वधू व्यय कर सकती है या नही, इसका कथन –

रमणोपार्जितं वस्तु जङ्गमस्थावरात्मकम्।
देवयात्राप्रतिष्ठादिधर्मकार्ये च सौहृदे।।११२।।

श्वश्रूसत्त्वे व्ययीकर्तुं शक्ता चेद्विनयान्विता।
कुटुम्बस्य प्रिया नारी वर्णनीयान्यथा न हि।।११३।।

विनयशील, परिवार की प्रिय और प्रशंसनीय नारी (विधवा पुत्रवधू) सास के रहने पर पति द्वारा उपार्जित चल-अचल सम्पत्ति का धार्मिक यात्रा, प्रतिष्ठादि धर्म-कार्य तथा मित्रों के कार्य में व्यय कर सकती है (विनयशीलता आदि के) अभाव में नहीं।

(वृ०) ननु काचिदप्रजा विधवा पुत्रीप्रेमतो दत्तकमनादाय मृता तदा तद्धनस्वामिनी तत्सुता जाता तस्यामपि परेतायां तद्धनस्वामी कः स्यादित्याह –

कोई सन्तानरहित विधवा पुत्री के प्रेम के कारण विना पुत्र गोंद लिए ही मृत्यु को प्राप्त हो जाय तब उसके धन की स्वामिनी उसकी पुत्री हुई, उसके भी मरने पर उस धन का स्वामी कौन हो, यह प्ररूपण –

अनपत्ये मृते पत्यौ सर्वस्य स्वामिनी वधूः।
सापि दत्तमनादाय स्वपुत्रीप्रेमपाशतः।।११४।।

ज्येष्ठादिपुत्रदायादाभावे पञ्चत्वमागता।
चेत्तदा स्वामिनी पुत्री भवेत्सर्वधनस्य च।।११५।।

तन्मृतौ तद्भवः स्वामी तन्मृतौ तत्सुतादयः।
पितृपक्षीयलोकानां न हि तत्राधिकारिता।।११६।।

पति की पुत्ररहित मृत्यु हो जाने पर उसके सम्पूर्ण धन की स्वामिनी उसकी पत्नी होती है। यदि वह विधवा वधू अपनी पुत्री के प्रेमबन्धन के कारण दत्तक न लेकर और ज्येष्ठ आदि के पुत्र और दामाद के अभाव में मृत्यु को प्राप्त हो जाती है तो उसकी पुत्री सम्पूर्ण सम्पत्ति की स्वामिनी होती है। उस (पुत्री) की मृत्यु होने पर उसका पुत्र स्वामी होता है, उस (पुत्र) के मरने पर उसके पुत्रादि (स्वामी होते हैं) पुत्री के पितृपक्ष के लोगों का स्वामित्व नहीं होता है।

(वृ०) नन्वत्र के दायानधिकारिण इत्याह –

उपरोक्त स्थिति में कौन धन का अधिकारी हो, इसका कथन –

जामाता भागिनेयश्च श्वश्रूश्चैव कथञ्चन।
नैवैतेऽत्र दायादाः परगोत्रत्वभावतः।।११७।।

जामाता (दामाद) और भानजा अन्य गोत्रीय होने के कारण कभी सास के दाय के अधिकारी नहीं होंगे।

साधारणं च यद्द्रव्यं तद्भ्राता कोऽपि गोपयेत्।
भागयोग्यः स नास्त्येव प्रत्युतो राज्यदण्डभाक्।।११८।।

जो संयुक्त धन किसी भाई ने यदि छिपा लिया है तो वह हिस्से का अधिकारी तो नहीं ही है बल्कि राजदण्ड का भागी है।

सप्तव्यसनसंसक्ताः सोदरा[१] भागभागिनः।
न भवन्ति यतो दण्ड्या धर्मभ्रंशेन सज्जनैः।।११९।।

सात दुर्व्यसनों में लिप्त सहोदर सम्पत्ति के भागी नहीं होते हैं क्योंकि धर्मभ्रष्ट होने से वे सज्जनों द्वारा दण्डनीय हैं।

(वृ०) ननु कयाचिदनपत्यया दत्तकमादाय स्वाधिकारो दत्तः स चाविवाहित एव मृतः तत्पदेऽन्यपुत्रस्थापनयोग्यता विधवाया अस्ति न वेत्याह–

किसी सन्तानरहित विधवा ने पुत्र गोंद लेकर उसे अपना सब अधिकार दे दिया, वह दत्तकपुत्र अविवाहित ही मृत्यु को प्राप्त हो जाये तो उसके स्थान पर दूसरे दत्तकपुत्र को स्थापित करने का अधिकार विधवा का है या नहीं, इसका कथन –

---

१. सौदरा भ १, भ २, प २।।

गृहीत्वा दत्तकं पुत्रं स्वाधिकारं प्रदाता।
तस्मायात्मीयवित्तेषु स्थिता स्वस्वधर्मका।।१२०।।
कालचक्रेण सोऽनूढः चेन्मृतो दत्तकस्तदा।
न शक्ता स्थापितुं सा हि तत्पदे चान्यदत्तकम्।।१२१।।

दत्तक पुत्र ग्रहणकर अपने धन का अधिकार सब प्रकार उसे सौंप कर कोई विधवा स्वयं धर्मकार्य में तत्पर हो जाये। समय के प्रभाव से वह दत्तक अविवाहित ही यदि मृत्यु को प्राप्त हो जाये तो उसके स्थान पर वह अन्य दत्तक स्थापित करने की अधिकारिणी नहीं है।

जामातृभागिनेयेभ्यः सुतायै ज्ञातिभोजने।
अन्यस्मिन्[1] धर्मकार्ये वा दद्यात्स्वं यथारुचि।।१२२।।

दामाद, भागिनेय, पुत्री और जाति भोजन अथवा दूसरे धार्मिक कार्य में वह अपनी रुचि के अनुसार धन दे।

युक्तं वै स्थापितुं पुत्रं स्वीयभर्तृपदे तया।
कुमारस्य पदे नैव स्थापनाज्ञा जिनागमे।।१२३।।

उस (विधवा) के द्वारा अपने स्वामी पद पर दत्तक स्थापित करना युक्तिसङ्गत है। परन्तु उसके द्वारा कुमार अर्थात् पुत्र के पद पर स्थापना की आज्ञा जैन आगम में नहीं है।

(वृ०) ननु विधवा विभक्ताविभक्ता वा पुत्रेऽसति सति व्ययं दानं विक्रयादि च कर्तुं समर्था न वेत्याह –

विधवा विभाजित अथवा संयुक्त (रूप से रह रही हो) पुत्रवती हो अथवा पुत्र रहित वह अपनी सम्पत्ति को व्यय करने, दान देने अथवा विक्रय करने में समर्थ है अथवा नहीं, इसका कथन –

विधवा हि विभक्ता चेत् व्ययं कुर्यात् यथेच्छया।
प्रतिषेद्धा न कोऽप्यत्र दायादश्च कथंचन।।१२४।।

यदि विभाजन हो गया है तब वह विधवा अपनी इच्छानुसार व्यय करे इसमें कोई दायाद (पैतृक सम्पत्ति का हिस्सेदार) बाधा डालने वाला न हो।

अविभक्ता सुताभावे कार्ये त्वावश्यकेऽपि वा।
कर्तुं शक्ता स्ववित्तस्य दानमाधिं च विक्रयम्।।१२५।।

यदि विभाजन न हुआ हो तो विधवा पुत्र के अभाव में आवश्यक कार्य

१. अन्यस्मै भ १, भ २, प १, अन्यसो प २।।

पड़ने पर अपने धन को दान करने, गिरवी रखने और विक्रय करने की अधिकारिणी है।

(वृ) यदुक्तं बृहन्नीतौ –

जैसा कि बृहन्नीति में कहा गया है –

पइ मरणे तब्भज्जा दव्वस्साहि वा भवणेणूणं।
पुत्तस्स य सब्भावे तहय अहावेवि विसाविहवा।।१।।

पति की नृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी धन की स्वामिनी होती है। परन्तु पुत्र के रहने पर या प्रतिकूल आचरण करने पर इसके विपरीत होता है।

जइ सा होइ सुसीला गुणढावस्स रायकरणिज्जे।
विक्कय दाणादियं कुज्जा न हु कोवि पडिवंहो।।२।।

यदि वह विधवा सुशील व गुणवती है तो राज्य कार्य से विक्रय एवं दान कर सकती है। कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है।

(वृ०) ननु यः कन्यावाग्दानं कृत्वा पुनस्तामन्यत्र लोभवशेन दद्यात्तस्य कः प्रतीकारः इत्याह –

जो कन्या का वाग्दान (सगाई) करके पुनः उसे लालचवश दूसरे को दे देता है उसको क्या प्रतीकार दण्ड दिया जाय, यह कथन –

वाचा कन्यां प्रदत्वा चेत्पुनर्लोभेन तां हरेत्।
स दण्ड्यो भूभृता दद्याद्वरस्य तद्धनं व्यये।।१२६।।

यदि कोई मनुष्य कन्या का वाग्दान (विवाह निश्चित) कर पुनः (धन के) लोभ से उसको वापस ले ले तो वह राजा द्वारा दण्डनीय है और दण्ड की राशि व्यय के बदले वर को दे दे।

कन्यामृतौ व्ययं शोध्यं देयं पश्चाच्च तद्धनम्।
मातामहादिभिर्दत्तं तद्गृह्णन्ति सहोदराः।।१२७।।

वाग्दत्ता कन्या की मृत्यु हो जाने पर (परस्पर) व्यय की गणना कर वर की ओर निकलने वाला धन (वर द्वारा) देय है। मातामह (नाना) आदि द्वारा दिया गया धन उस (कन्या के) भाई ग्रहण करते हैं।

(वृ०) ननु जाते विभागे यदि कोऽप्यपलपति तन्निराकरणहेतूनाह–

(भाइयों में) विभाजन हो जाने पर यदि कोई धन छिपाता है तो उसके समाधान के हेतुओं का कथन –

निह्नुते कोऽपि चेज्जाते विभागे तस्य निर्णयः।
लेख्येन बन्धुलोकादिसाक्षिभिर्भिन्नकर्मभिः॥१२८॥

यदि कोइ धन छिपाता है तो विभाजन हो जाने पर उसका निर्णय लेखाकार, भाइयों और लोगों के साक्ष्य तथा अलग-अलग कार्यों से करना चाहिए।

अविभागे तु भ्रातृणां व्यवहार उदाहृतः।
एक एव विभागे तु सर्वः सञ्जायते पृथक्॥१२९॥

जब तक (सम्पत्ति का) विभाजन नहीं हुआ है तब तक भाइयों का व्यवहार एक (संयुक्त) ही रहेगा, विभाजन हो जाने पर सबका व्यवहार अलग हो जाता है।

(वृ०) ननु भ्रातृभिर्भ्रातृजाया कथं माननीयेत्याह –

भाइयों द्वारा भाई की स्त्री को किस रूप में मानना चाहिए, यह कथन –

भ्रातृवद्विधवा मान्या भ्रातृजाया सुबन्धुभिः।
तदिच्छया सुतस्तस्य स्थाप्यो भ्रातृपदे च तैः॥१३०॥

भाई की पत्नी के विधवा हो जाने पर उत्तम भाइयों द्वारा उसे भाई के समान आदर करना चाहिए और उसकी इच्छा से उसके पुत्र को भाई के स्थान पर स्थापित करना चाहिए।

(वृ०) अथाविभागीयधनमाह –

इसके पश्चात् जिस सम्पत्ति का विभाजन न हो उसके विषय में कथन –

यत्किञ्चिद्वस्तुजातं हि स्वरामाभूषणादिकम्।
यस्मै दत्तं पितृभ्यां च तत्तस्यैव सदा भवेत्॥१३१॥

कोई सम्पत्ति धन, उपवन, आभूषण आदि जो कुछ माता-पिता ने जिसको दिया है वह सदा उसका ही होगा।

अविनाश्य पितुर्द्रव्यं भ्रातृणामसहायतः।
हृतं कुलागतं द्रव्यं पित्रा नैव यदुद्धृतम्॥१३२॥

तदुद्धृत्य समानीतं लब्धं विद्याबलेन च।
प्राप्तं मित्राद्विवाहे वा तथा शौर्येण सेवया॥१३३॥

अर्जितं येन यत्किञ्चित्तत्तस्यैवाखिलं भवेत्।
तत्र भागहरा न स्युरन्ये केऽपि च भ्रातरः॥१३४॥

पिता के धन का विनाश न कर भाइयों की बिना सहायता के जिस धन का कुल परम्परा से (दूसरों द्वारा) हरण कर लिया गया है, जिसका पिता द्वारा भी उद्धार

नहीं हो सका उसका उद्धार कर लाया हुआ धन, विद्या बल से प्राप्त किया हुआ, मित्र से प्राप्त अथवा विवाह में तथा शौर्य अथवा सेवा से प्राप्त किया हुआ जिस किसी द्वारा भी अर्जित किया गया है सब धन उसका ही होता है। कोई भी अन्य भाई उसमें हिस्सेदार नहीं होते।

(वृ०) अथाविभाज्यस्त्रीधनमाह –

इसके पश्चात् विभाजित न की जाने वाली स्त्री की सम्पत्ति के विषय में कथन –

विवाहकाले वा पश्चात् पित्रा मात्रा च बन्धुभिः।
पितृव्यैश्च बृहच्छ्वास्रा पितृस्वस्रा तथा परैः।।१३५।।

मातृस्वस्रादिभिर्दत्तं तथैव पतिनाऽपि यत्।
भूषणांशुकपात्रादि तत्सर्वं स्त्रीधनं भवेत्।।१३६।।

विवाह के समय अथवा बाद में पिता, माता, भाई , चाचा, बड़ी सास, फूफी तथा अन्य मौसी आदि द्वारा प्रदत्त तथा पति के द्वारा भी जो आभूषण, वस्त्रादि दिया गया है वह सब धन स्त्री का हो।

(वृ०) तदनेकविधमपि समासतः पञ्चविधं तथाहि –

वह स्त्री-सम्पत्ति अनेक प्रकार की होते हुए भी संक्षेप में पाँच प्रकार की है, जैसे –

विवाहे यच्च पितृभ्यां धनमाभूषादिकम्।
विप्राग्निसाक्षिकं दत्तं तदध्यग्निकृतं भवेत्।।१३७।।

विवाह के समय माता-पिता द्वारा ब्राह्मण तथा अग्नि को साक्षी कर जो धन-आभूषण आदि दिया गया है वह 'अध्यग्निकृत' स्त्रीधन होता है।

पुनः पितृगृहाद्वध्वानीतं यद्भूषणादिकम्।
बन्धुभ्रातृसमक्षं स्यादध्याह्वनिकं च तत्।।१३८।।

पुनः पिता के घर से वधू द्वारा जो आभूषण आदि स्वजनों एवं भाइयों के समक्ष लाया गया हो वह अध्याह्वनिक स्त्रीधन होता है।

प्रीत्या स्नुषायै यद्दत्तं श्वश्वा श्वशुरेण च।
मुखेक्षणांघ्रिनमने तद्धनं प्रीतिजं भवेत्।।१३९।।

पुत्रवधू को सास और श्वसुर द्वारा जो धन मुख देखने और चरण स्पर्श करने पर प्रीतिपूर्वक दिया जाता है वह 'प्रीतिज' स्त्रीधन कहा जाता है।

पुनर्भ्रातुः सकाशाद्यत्प्राप्तं पितृगृहात्तथा।
ऊढाया स्वर्णरत्नादि तत्स्यादौदयिकं धनम्।।१४०।।

पुनः भाई के पास से तथा पितृगृह से प्राप्त विवाहिता का स्वर्णरत्नादि धन औदयिक स्त्रीधन हो।

परिक्रमणकाले यद्दत्तं रत्नांशुकादिकम्।
जायापतिकुलस्त्रीभिस्तदन्वाधेयमुच्यते ।।१४१।।

विवाह के समय फेरे लेते हुए जो रत्न, रेशमी वस्त्रादि दम्पतियों और परिवार की स्त्रियों द्वारा विवाहिता को दिया जाता है वह अन्वाधेय धन कहा जाता है।

एतत्स्त्रीधनामादातुं न शक्तः कोऽपि सर्वथा।
भागानर्हं यतः प्रोक्तं सर्वैर्नीतिविशारदैः।।१४२।।

इस (उपरोक्त पाँच प्रकार के) स्त्री धन को लेने का कोई भी अधिकारी नहीं है। सभी नीतिशास्त्रकारों ने इस धन को विभाजन के अनुपयुक्त कहा है।

धारणार्थमलङ्कारो भर्त्रा दत्तो न केनचित्।
ग्राह्यः पतिमृतौ सोऽपि व्रजेत्स्त्रीधनतां यतः।।१४३।।

यदि पति द्वारा अलङ्कार धारण करने के लिए दिया गया है तो कोई उसे ग्रहण नहीं कर सकता। पति की मृत्यु हो जाने पर उसे भी छोड़ देना चाहिए क्योंकि वह (आभूषण) स्त्रीधन हो जाता है।

(वृ०) ननु स्त्रीधनमपि भर्ता कदाचित् गृहीतुं शक्यते न वेत्याह –

स्त्री-सम्पत्ति को भी पति कभी ग्रहण कर सकने में समर्थ है अथवा नहीं, यह बताया–

व्याधौ धर्मे च दुर्भिक्षे विपत्तौ प्रतिरोधके।
भर्तानन्यगतिः स्त्रीस्वं लात्वा दातुं न चार्हति।।१४४।।

गम्भीर रोग, धर्मकार्य, दुर्भिक्ष, विपत्ति और कैद में होने पर कोई विकल्प न हो तो स्त्रीधन लेकर पति वापस न करे।

(वृ०) अथ देशाचारादिवैपरीत्ये कस्य बलाबलत्वं तदाह –

इसके पश्चात् देश के रीति-रिवाज के विरुद्ध होने पर किसका तुलनात्मक महत्त्व या महत्त्वशून्यता है, यह बताया –

सम्भवेदत्र वैचित्र्यं देशाचारादिभेदतः।
यत्र यस्य प्रधानत्वं तत्र सो बलवत्तरः।।१४५।।

देश (विशेष) के आचार आदि के भेद से न्याय में भिन्नता सम्भव है। जहाँ देश में जिस व्यवहार की प्रधानता है वहाँ वह (नियम) अधिक शक्ति- शाली है।

(वृ०) अथोपसंहारमाह –

इसके पश्चात् व्यवहार प्रकरण का उपसंहार प्ररूपण –

इत्येवं वर्णितस्त्वत्र दायभागः समासतः।
यथाश्रुतं विशेषश्च ज्ञेयोऽर्हन्नीतिशास्त्रतः।।१४६।।

इस प्रकार यहाँ संक्षेप में दायभाग वर्णित किया गया। विशेष जानने की उत्सुकता हो तो बृहद् अर्हन्नीति शास्त्र से जानना चाहिए।

।। दायभागप्रकरणं सम्पूर्णम्।।

—o—

तृतीय अधिकार

३.६

सीमाविवादप्रकरणम्

योगीन्द्रं सच्चिदानन्दं स्वभावध्वस्तकल्मषम्।
प्रणिपत्य पुष्पदन्तं सीमानिर्णय उच्यते।।१।।

योगियों के स्वामी, सत्, चित् और आनन्द स्वरूप, नष्ट पाप वाले (तीर्थङ्कर) पुष्पदन्त का वन्दन कर सीमा-निर्णय प्रकरण का कथन किया जाता है।

(वृ०) पूर्वप्रकरणे दायभागो निरूपितः। तस्मिन् जाते भ्रातृणां सीमाविवादः स्यात्। अतस्तन्निर्णय उच्यते –

पूर्वप्रकरण में दायभाग का निरूपण किया गया। दायभाग के कारण भाइयों में सीमा-विवाद होता है अतः उसके निर्णय के विषय में कहा जाता है –

तत्र सीमा भवेद्भूमिमर्यादा सा त्वनेकधा।
ग्रामक्षेत्रगृहारामनीवृत्प्रभृतिभेदतः ।।२।।

भूमि की मर्यादा सीमा होती है, वह ग्राम, क्षेत्र, गृह, उपवन, राज्य आदि भेद से अनेक प्रकार की (होती है)।

(वृ०) पुनः सा प्रत्येकं पञ्चधा –

पुनः वह प्रत्येक (भूमि-सीमा) पाँच प्रकार की है –

पिछिला मिथिला राजलता स्याद्भामिनी तथा।
कासिका चेति भूसीमा पञ्चधा क्लेशनाशिनी।।३।।

दुःख का नाश करने वाली भूमि की सीमा – पिछिला, मिथिला, राजलता, भामिनी तथा कासिका – इस प्रकार पाँच प्रकार की होती है।

(वृ०) तत्र पिछिला नदीसरोवरादिजलाशयलक्षिता।

नदी, तालाबादि जलाशय चिह्नित।

मिथिला वृक्षादिचिह्निता।

मिथिला – वृक्ष आदि से चिह्नित।

राजलता वादिप्रतिवादिभ्यां मिथः स्वीकारस्थापिता।

राजलता – पक्ष-विपक्ष द्वारा परस्पर स्वीकार कर निर्धारित की गई।

भामिनी मृत्पाषाणद्युच्चयसूचिता।

भामिनी – मिट्टी, पाषाण आदि के ढेर से सूचित।

कासिका चिह्नासत्त्वे भूपेनात्ममनीषिकया कल्पिता।

कासिका – चिह्न के अभाव में राजा आदि द्वारा अपनी बुद्धि से निर्धारित काल्पनिक सीमा।

इति पञ्चधा

इस प्रकार यह पाँच प्रकार की होती है।

अत्र विवादः षड्विधस्तथा,

और सीमा-विवाद छः प्रकार का है,

विवादोऽत्र भवेत् षोढा नास्ति चास्त्युभयं च वै।
न्यूनताधिकता चैव भुक्तिराभोगतस्तथा।।४।।

इस (सीमा मर्यादा) में विवाद छः प्रकार का होता है – १. अस्ति, २. नास्ति, ३. उभय (अस्ति-नास्ति), ४. न्यूनता, ५. अधिकता और (६) आभोग भुक्ति।

(वृ०) तद्यथा–

जो इस प्रकार है –

वादिनेयं भूमिर्मदीयास्ति इत्युक्ते प्रत्यर्थी वदतस्य जनकस्यापि किं भूरभूदित्यस्तिवादः।

वादी द्वारा यह भूमि मेरी है यह कहने पर प्रतिवादी का यह कहना कि क्या यह भूमि इसके पिता की भी थी – यह अस्तिवाद है।

अत्र भुवि पञ्चग्रन्थिमितो मदीयो अंशोऽस्त्युक्तेऽस्यैकोऽप्यंशो नास्तीति नास्तित्ववादः।

वादी द्वारा यह कहे जाने पर कि इस भूमि में पाँच रस्सी की गाँठ बराबर भूमि मेरी है (वादी द्वारा यह कहा जाना कि) एक भी भाग इसका नहीं है यह नास्तित्ववाद है।

इदं क्षेत्रं सर्वं मदीयमित्युक्ते अन्यो जल्पते अर्द्धं ममेत्युभयवादः।

वादी द्वारा 'यह सब क्षेत्र मेरा है' यह कहने पर अन्य (प्रतिवादी) का यह कहना 'आधा मेरा है' यह उभयवाद है।

एतत्क्षेत्रं मम बहुवर्षेभ्योऽष्टरज्जुमितमस्तीत्युक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते नाष्टरज्जुमितमस्तीति न्यूनतासंवादः।

वादी द्वारा 'यह मेरा क्षेत्र बहुत वर्षों से आठ रज्जु माप का है' यह कहने पर अन्य (प्रतिवादी) का यह प्रतिवाद करना कि आठ रज्जु माप का नहीं है न्यूनतासंवाद है।

तत्रैव केनचिदुक्तमधिकं वर्तते इत्यधिकसंवादः।

उसी में कोई यह कहे कि अधिक है तो अधिकसंवाद है।

मदीयेयं भूमिः प्राचीनभोगसत्वेनेदानीमपि भुज्यत इत्युक्ते प्रति- वादिनोक्तं नास्य भोगः प्राचीन इत्याभोगभुक्तिविवादः।

वादी द्वारा यह कहने पर कि यह भूमि मेरी है प्राचीन काल से स्वामित्व होने से इस समय भी स्वामित्व है प्रतिवादी का यह प्रतिवाद करना कि इसका स्वामित्व प्राचीन काल से नहीं है – यह आभोग भुक्ति विवाद है।

एष्वन्यतमविवादेन विवदमानयोरर्थिप्रत्यर्थिनोनिर्णयार्थं स्थेयमुपस्थितयोस्तन्निर्णयं कर्तुकामेन स्थेयेन पूर्वं निर्मलकाले विवादास्पदभूमिं दृष्ट्वा तन्निकटवर्तिसाक्षिणः समाहूय प्रष्टव्याः तद्वाचा निर्णयं विधाय तत्र चिह्नं कार्यं यथा पुनः कलहो न प्रसज्येत् तथाहि –

उपर्युक्त विवादों में से प्रत्येक विवाद के वादी-प्रतिवादी के निर्णय के लिए निर्णायकों की उपस्थिति में निर्णय कर वहाँ चिह्न करना चाहिए जिससे पुनः कलह उत्पन्न न हो, क्योंकि –

सीमावादे समुत्पन्ने राजकर्माधिकारिणः।
विवादास्पदस्थाने हि गत्वा काले च निर्मले।।५।।

चिह्नं निर्णयकृत्तत्र द्रष्टव्यं प्राक्तनं भृशम्।
तदभावे च तत्रत्यान् पार्श्वस्थानपि साक्षिणः।।६।।

प्राचीनमन्त्रिणो वृद्धान् गोपालांश्च कृषीवलान्।
नियोगिनश्च[१] सामन्तान् ग्रामीणान् वनवासिनः।।७।।

प्रातिवेश्मिकतापन्नान् सत्यधर्मपरायणान्।
आहूय शपथं धर्म्यं दत्वा वृत्तं च प्राक्तनम्।।८।।

१. वियोगिनश्च भ १, भ २, प १, प २।।

पृष्ट्वा तद्वचसा कृत्वा सीमासंवादनिर्णयम्।
चिह्नं तत्र तथा कार्यं यथा स्यान्न पुनः कलिः।।९।।

सीमा (सम्बन्धी) विवाद उत्पन्न होने पर राज्यकर्माधिकारियों को निर्मलकाल (वर्षा ऋतु व्यतीत) होने पर विवादित भूमि पर जाकर पूर्व निर्धारित चिह्न को भली प्रकार देखना चाहिए। उन चिह्नों के अभाव में साक्षी रूप में उस (भूमि) के समीप स्थित प्राचीन मन्त्रियों, वृद्धों, ग्वालों, किसानों, नियुक्त अधिकारियों, सामन्तों, ग्रामीणों, वनवासियों और सत्यधर्मनिष्ठ पड़ोसियों को बुलाकर धर्म की शपथ दिलाकर वृत्तान्त पूछना चाहिए। पूछकर उनके कथन के आधार पर सीमाविवाद का निर्णय कर ऐसा चिह्न बनाना चाहिए जिससे पुनः कलह न हो।

(वृ०) काले च निर्मले इति यस्मिन् काले जलपुरादिव्याघताभावेन चिह्नं स्फुटतया ज्ञातुं शक्यते स एव निर्मलो ज्ञेयः।

मूल श्लोक में 'काले च निर्मले' अर्थात् निर्मल काल के उल्लेख से जानना चाहिए कि जिस काल में जल, नगर आदि की बाधा के अभाव में चिह्न को स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है वही निर्मल का अभिप्राय जानना चाहिए।

केन चिह्नं कार्यमित्याह –

(अधिकारियों को) किस वस्तु से (सीमा-निर्धारण का) चिह्न करना चाहिए, इसका कथन –

सेतुना च तडागेन देवतायतनेन च।
पाषाणैः सरसा वाप्यावटेनापःश्रवेण वा।।१०।।

माकन्दपिचुमन्दैश्च किंशुकाश्वत्थवेणुभिः।
न्यग्रोधशाल्मलीशालशमीतालैश्च शाखिभिः।।११।।

राज्याधिकारिणा कार्यं तत्सीमास्थलमङ्कितम्।
विपर्ययो यथा नृणां सीमाज्ञाने न सम्भवेत्।।१२।।

राज्याधिकारियों द्वारा (भूमि के पास स्थित) पुल, तालाब, मन्दिर, पत्थर, सरोवर, वापी, खड्डु एवं जलप्रवाह से अथवा आम, नीम, किंशुक, पीपल, बाँस, बरगद, शाल्मली, शाल, शमी और ताल वृक्षों से उस सीमास्थल को चिह्नित करना चाहिए जिससे लोगों में सीमा-ज्ञान के विषय में भ्रम न हो।

सीमासन्धिषु गर्तासु करीषाङ्गारशर्कराः।
वालुकाश्च नृपः क्षिप्त्वा गुप्तचिह्नानि कारयेत्।।१३।।

(क्षेत्र) सीमाओं के मिलने के स्थान पर गड्ढों में उपले, अङ्गारे, बजरी, बालू आदि रखकर राजा गुप्त चिह्न करवाये।

साक्ष्यभावे महीपालः स्थापयेद् द्वौमिथस्तयोः।
यो रक्तवासा निर्याति यावता तावतावधिः।।१४।।

नृपस्तत्रैव सीमाया लिङ्गानि कारयेद्द्रुतम्।
प्लक्षनिम्बादिवृक्षैश्च ग्रावाद्युपचितस्थलैः।।१५।।

(सीमा विवाद की स्थिति में) साक्षी न होने पर राजा उन दोनों वादियों-प्रतिवादियों में परस्पर यह निश्चय करे कि जो रक्त वस्त्र धारण कर निकले और जितनी (भूमि अपनी बताये) उतनी सीमा तक राजा वहीं शीघ्र सीमा का चिह्न करवाये, प्लक्ष (बरगद अथवा गूलर) नीम आदि वृक्षों और प्रस्तर आदि से चिह्नित स्थल से (सीमा निर्धारित करवाये)।

(वृ०) यदि साक्षिणो न स्युस्तदा किं कार्यमित्याह –

यदि साक्षी न हों तब क्या करना चाहिए –

निर्यातौ नोभयौ चेत्तत्समन्ताद्ग्रामभूमिपाः।
चत्वारोऽष्टौ दश स्थाप्याः सीमानिर्णयकर्मणि।।१६।।

तेऽपि रक्तांशुकं धार्य निष्क्रामन्ति यतस्ततः।
सीमावधिं विनिश्चित्य चिह्नानि कारयेन्नृपः।।१७।।

यदि वे दोनों (रक्त वस्त्र धारण कर) नहीं निकलते हैं तो निकटस्थ चार स्वामियों को चार, आठ और दस की संख्या में सीमा-निर्णय के कार्य में लगाना चाहिए। वे (नियुक्त) निर्णायक भी रक्त वस्त्र धारण कर निकलते हैं और जो (भी सीमा बतायें) उसे सीमा निश्चित कर राजा चिह्न करवाये।

(वृ०) यदि तयोर्मध्ये नैकोऽपि निष्क्रान्तस्तदा किं कार्यमित्याह–

यदि दोनों (वादी और प्रतिवादी) के मध्य एक भी न निकला हो तब क्या करना चाहिए, इसका कथन –

अत्र ग्रामभूमिपपदस्योपलक्षणेन ग्रामसीमानिर्णये समन्तादग्रामाधिपाः क्षेत्रसीमासंवादे समन्तात् क्षेत्राधिपा देशसीमासंवादे समन्तातद्देशाधिपा गृहसीमाविवादे पार्श्ववर्तिगृहाधिपाश्च स्थाप्यास्तेषां रक्तवस्त्रधारणं तु बहुलोकसमक्षं विलक्षणवेषेण तत्कार्यं कुर्वता लज्जया मृषाभाषणं न स्यादित्यर्थः। यत्रैतेऽपि न सन्ति तत्र वनवासिनो व्याधभिल्लगोचारकादीन् समाहूय पृष्ट्वा च तत्त्वनिर्णयः कार्य इति विशेषः।

उपरोक्त श्लोक में 'ग्रामभूमिप' शब्द से ध्वनित होता है कि ग्राम-सीमा के निर्णय में चारों ओर के ग्राम-प्रमुखों, क्षेत्र-सीमा विवाद में चारों ओर के क्षेत्र-प्रमुखों, देश-सीमा के विवाद में चारों ओर के देश के स्वामियों और गृह-सीमा के विवाद

में पड़ोस के गृह स्वामियों को बुलाना चाहिए। बहुत से लोगों के समक्ष उनके द्वारा रक्तवस्त्र रूप असाधारण वेश धारण करने से लज्जा आने से वे असत्य कथन न करें यह तात्पर्य प्रतीत होता है। जहाँ ये भी न हों वहाँ वनवासी, बहेलिया, भील, चरवाहे आदि को बुलाकर और पूछकर वस्तुस्थिति का निर्णय करना चाहिये।

(वृ०) अथ विगतचिह्नासु भूमिषु तन्निर्णयार्थमुपायमाह –

भूमि अर्थात् क्षेत्रों के चिह्न मिट जाने पर उनकी सीमा के निर्णय के लिये उपाय का कथन –

नद्यादिध्वस्तचिह्नेषु भूप्रदेशेषु वासतः।
दिशाप्रमाणभोगेभ्यः कुर्याद्भूपो विनिश्चयम्।।१८।।

नदी आदि के कारण (सीमा-) चिह्नों के नष्ट हो जाने पर भूमिप्रदेशों के स्थान से अमुक दिशाओं तथा स्वामित्व (के प्रमाण से) राजा (सीमा का) निश्चय करे।

(वृ०) यथा अस्य क्षेत्रं ग्रामादमुकदिशीयदूरे चास्ति इत्यनुमानतः तद्भोगतश्च निश्चयो विधेयः।

जैसे कि इस मनुष्य का खेत ग्राम से अमुक दिशा में इतना दूर है इस अनुमान से उसके स्वामित्व का निश्चय करना चाहिए।

अथैतत्कृत्ये कीदृशाः साक्षिणो योग्या इति दर्शयति –

इसके पश्चात् इस कृत्य (स्वामित्व का निश्चय करने) में किस प्रकार के साक्षी सक्षम हैं, यह प्ररूपित किया जाता है –

प्रमाणमागमं चैव कालं भोगं च लक्षणम्।
भूमिभागं तथा नाम जानीयुस्तेऽत्र साक्षिणः।।१९।।

प्रमाण, आगमशास्त्र, काल, स्वामित्व, लक्षण, भूमि-खण्ड तथा क्षेत्र का नाम (स्वामित्व) यह साक्षियों से जानना चाहिए।

साक्षिणः सीम्नि प्रष्टव्या अर्थिप्रत्यार्थिनोः पुरः।
पार्श्वगग्रामवृद्धानां समक्षं धर्मपूर्वकम्।।२०।।

समस्तास्ते हि पृष्टाश्च वदन्त्येकां गिरं यदि।
तर्हि सीमां निबध्नीयात्तन्नामसहितां नृपः।।२१।।

समीपस्थ ग्राम के वृद्धों के समक्ष धर्म (की शपथ) पूर्वक और प्रतिवादियों के समक्ष सीमा के विषय में पूछना चाहिए। निश्चित रूप से यदि पूछने पर सभी एक ही बात कहते हैं तो राजा उनके नाम सहित सीमा तय करे।

(वृ०) अथ साक्ष्येऽनृतभाषिणां दण्डमाह –

साक्ष्य में असत्य भाषण करने वाले (साक्षियों के) दण्ड के विषय में कथन–

चेत्साक्षिणोऽनृतं ब्रूयुः सीमाकृत्ये कथञ्चन।
सामन्ताः शतदण्ड्याः[१] स्युः शेषाः शक्त्यनुसारतः॥२२॥

सीमा को लेकर यदि साक्षी कुछ झूठ बोलते हैं तो सामन्तों को सौ मुद्रा दण्ड करना चाहिए, शेष को (उनकी) सामर्थ्य के अनुसार दण्डित करना चाहिए।

(वृ०) कूटसाक्ष्ये प्रत्येकं दण्डो देय इति स्थितिः एष दण्डोऽज्ञानतोऽनृतभाषणेऽस्ति यस्तु जानननृतं लोभादिना भाषते स त्वितोऽपि विशेषदण्डेन दण्ड्य इति ज्ञेयम्।

झूठे साक्ष्य में प्रत्येक साक्षी को दण्ड देना चाहिए यह नियम है, यह दण्ड न जानते हुए असत्य भाषण करने वाले के लिये है। जो जानते हुए लोभादिवश असत्य भाषण करता है उसे तो इससे भी विशेष दण्ड से दण्डित करना, ऐसा जानना चाहिए।

अथ यत्र चिह्नज्ञातरो न सन्ति तत्र किं विधेयमित्याह –

सीमा-विवाद में जब सीमा-चिह्न जानने वाले न हों तब कैसे न्याय करना चाहिए, यह कथन –

चिह्नज्ञाता न कोऽप्यस्ति यत्र तत्र महीधनः।
आरामदेवतास्थाननिपानोद्यानवेश्मभिः ॥२३॥

वर्षाजलप्रवाहैश्च सीमां निर्णीय चाभितः।
कुर्याच्चिह्नं यथा न स्यात्तयोर्हि कलहः पुनः॥२४॥

जहाँ कोई भी सीमा-चिह्न का ज्ञाता नहीं है वहाँ राजा बाग, मन्दिर, जलाशय, उद्यान, आवास, वर्षाजल के प्रवाह से सीमा का निर्णय कर दोनों ओर से चिह्न लगाये जिससे पुनः कलह न हो।

जयपत्रं ततो देयं सीमासत्यार्थवादिने।
भूमिप्रमाणवित्तेन दण्ड्योऽन्यो भवति ध्रुवम्॥२५॥

नाशयेद् भूमिलोभेन सीमाचिह्नानि यो नरः।
दण्डनीयः स भूभुग्भीरौप्यैः पञ्चशतैः पणैः॥२६॥

अज्ञानेन प्रमादेन यो नाशयति तानि च।
स पणद्विशतं दण्ड्यो दीनश्चेद्मुनिमुष्टिभिः॥२७॥

१. शतदण्डाः भ १, भ २, प १, प २॥

सीमा के विषय में सत्य बोलने वाले को विजय प्रपत्र देना चाहिए, दूसरा (जो असत्य बोलता है) निश्चय ही भूमि के मूल्य के बराबर धन से दण्डनीय है। (अधिक) भूमि के लोभ से जो पुरुष सीमाचिह्नों को नष्ट कर देता है राजा उसे पाँच सौ मुद्राओं (रुपयों) से दण्डित करे। जो उन (सीमाचिह्नों) को अज्ञानतावश या असावधानीवश नष्ट करता है वह दो सौ मुद्राओं से दण्डनीय है और यदि (वह दोषी) निर्धन है तो उसे सात मुष्टियों के प्रहार से दण्डित करना चाहिए।

(वृ०) अथ प्रसङ्गतः सेतुकूपक्षेत्र विषये विशेषमाह –

अब प्रसङ्गानुसार पुल, कुआँ और खेत के विषय में विशेष कथन –

सेतुः कूपश्च क्षेत्रेऽपि न निषेध्यो हि क्षेत्रिभिः।
स्वल्पाबाधाकरास्तेऽपि बहुलोकोपकारकाः।।२८।।

यः सेतुः पूर्वनिष्पन्नः संस्कारार्हो भवेद्यदा।
तदा तत्स्वामिनं पृष्ट्वा तद्वंश्यं वाथ भूभुजम्।।२९।।

तं संस्करोति चेत्काऽपि तर्हि तत्फलभाग् भवेत्।
अन्यथा तत्फलं स्वामी गृह्णीयाद्वा महीपतिः।।३०।।

(अपने) खेत में भी पुल और कुँआ हो तो खेत के स्वामी द्वारा (दूसरों को) इसके प्रयोग के लिए) रोकना नहीं चाहिए। वे (पुल और कुँआ) खेत में थोड़ी बाधा पहुँचाते हुए भी (लोगों के लिए) बहुत उपकारक हैं। जो पुल पहले से निर्मित है और वह जीर्णोद्धार (संस्कार) के योग्य हो गया है उसके स्वामी, उसके वंशज अथवा राजा से पूछकर जो जीर्णोद्धार कराता है उसके फल का भागी होता है अन्यथा उसका फल स्वामी या राजा ग्रहण करे।

(वृ०) परक्षेत्रसेतुविषयोऽयं विधिः।

दूसरे के खेत में पुल हो तो यह विधि है।

अङ्गीकृतेऽपि क्षेत्रे नो कृषिं कुर्यान्नकारयेत्।
तेनापि देयं तन्मूल्यं फलं स्यादथवा न हि।।३१।।

(क्षेत्र को) ग्रहण कर भी जो खेत में न कृषि कार्य करे, न कराये उसे भी उस (खेत) का मूल्य देना चाहिए, फल हो अथवा न हो।

इति संक्षेपतः प्रोक्तः सीमावादस्य निर्णयः।
ज्ञेयोविशेषो धीमद्भिर्महार्हन्नीतिशास्त्रतः।।३२।।

इस प्रकार सीमा विवाद निर्णय संक्षेप में कहा गया (इस विषय में) विशेष तथ्यों को बुद्धिमानों द्वारा बृहदर्हन्नीति शास्त्र से जानना चाहिए।

।। इति सीमावादप्रकरणम्।।

—o—

तृतीय अधिकार

३.७

वेतनादानस्वरूपम्

नत्वा श्रीशीतलं देवं संसाराम्बुधितारकम्।
वेतनादान[1]वृत्तान्तो वर्ण्यतेऽत्र समासतः।।१।।

संसार रूपी समुद्र को पार कराने वाले तीर्थङ्कर श्री शीतलनाथ का वन्दन कर यहाँ वेतनादान का स्वरूप संक्षेप में वर्णित किया जाता है।

(वृ०) पूर्वप्रकरणे सीमाविवाद उक्तस्तत्र भृत्या अप्येक्षिता भवन्ति इत्यत्र तद्वर्णना तद्वेतनादियुतोच्यते। तत्रादौ सेवकभेदानाह –

पूर्व प्रकरण में सीमा-विवाद का वर्णन किया गया उसमें भृत्यों की भी आवश्यकता पड़ती है अतः इस प्रकरण में उनका तथा उनके वेतनादि का स्वरूप वर्णित किया जाता है। प्रारम्भ में सेवक के भेदों का कथन –

सेवकः पञ्चधा प्रोक्तः शिष्यान्तेवासिभृत्यकाः।
अधिकर्मकरास्तुर्याः स्मृता दासास्तु पञ्चमाः।।२।।

चत्वारः प्रथमे तत्र शुभकर्मकराः स्मृताः।
पञ्चमो दासको ह्यत्र सर्वकर्मकरो भवेत्।।३।।

सेवक पाँच प्रकार का कहा गया है – १. शिष्य, २. अन्तेवासी, ३. भृत्य, ४. चौथा अधिकर्मकर और ५. पाँचवां दास। उन (पाँचों) में प्रथम चार शुभ काम करने वाले कहे गये हैं। निश्चित रूप से पाँचवां दास सभी (शुभ-अशुभ) कार्य करने वाले होते हैं।

(वृ०) तत्र विद्याध्ययनतत्परः शिष्यः १।

विद्याध्ययन में तल्लीन शिष्य है।

शिल्पविद्यार्थी अन्तेवासी २।

---

१. ०कृत भ १।।

शिल्प की शिक्षा ग्रहण करने वाला अन्तेवासी है।

भृत्या कर्मकरो भृत्यः ३।

मजदूरी लेकर काम करने वाला भृत्य है।

कर्मकराणामधिष्ठाताधिकर्मकरः ४।

भृत्यों का प्रधान अधिकर्मकर है।

गृहद्वारस्थोच्छिष्टविण्मूलाद्यशुचिस्थानशोधकः स्वामिगुह्याङ्ग-शोधकश्च दासः ५।

घर के द्वार पर (घर से बाहर) रहकर जूठन, मल-मूत्र आदि अपवित्र स्थानों को स्वच्छ करने वाला और स्वामी के गुप्त अङ्गों को साफ करने वाला दास है।

भृत्यस्तु त्रिविधस्तत्रायुधिकः प्रोक्तः उत्तमः।
मध्यमः कृषिकश्चैवाधमो भारस्य वाहकः।।४।।

वेतनभोगी भृत्य तीन प्रकार के कहे गये हैं — १. शस्त्रधारी उत्तम, २. कृषि कर्म करने वाला मध्यम और भारवाहक अधम।

दासाः पञ्चदश ख्याताः गृहजः क्रीत आधितः।
लब्धो दायागतश्चैव दुर्भिक्षे पोषितस्तथा।।५।।

युद्धे पणे च विजित ऋणभाग् ऋणमोचितः।
रक्षितो भुक्तिदानेन प्रव्रज्याप्रच्युतस्तथा।।६।।

स्थितो यः स्वयमागत्य वडवा[1] लोभतः स्थितः।
अमातृपितृको यस्तु विक्रेता स्वयमात्मनः।।७।।

दास पन्द्रह (प्रकार के) कहे गये हैं — १. गृहज—स्वामी के गृह में दासी से उत्पन्न, २. क्रीत — खरीदे गये, ३. आधित — गृहीत धन के बदले न्यास रूप में निक्षिप्त, ४. लब्ध — मार्ग में प्राप्त, ५. दायागत — विवाह में प्राप्त, ६. दुर्भिक्ष में पोषित, ७. युद्ध-प्राप्त — युद्ध में जीता हुआ, ८. द्यूतजित् — द्यूत में जीता हुआ, ९. ऋणभाक् — ऋण देकर बनाया दास, १०. ऋण मोचित — ऋण-मुक्ति के बदले बनाया दास, ११. रक्षित — भोजन देकर बनाया गया दास, १२. दीक्षा से भ्रष्ट, १३. स्थित — स्वामी के पास स्वयं आकर रहने वाला, १४. स्वामी की पुत्री के लोभ से स्वयं आकर रहने वाला, १५. बिना माता-पिता वाला स्वयं अपने को विक्रय करने वाला।

(वृ०) गृहदास्यां जातो गृहजः १।

---

१. वडबो भ १,भ २, प १, वडवो प २।।

घर की दासी से उत्पन्न व्यक्ति गृहज दास है।

मूल्येन गृहीतः क्रीतः २।

मूल्य देकर ग्रहण किया गया व्यक्ति क्रीत दास है।

स्वामिना धनगृहणार्थमाधितो नीत आधितः ३।

स्वामी द्वारा धन ग्रहण करने के लिए धरोहर में लिया गया व्यक्ति आधित दास है।

मार्गेऽनाधारः सार्थभ्रष्टो वा प्राप्तो लब्धः ४।

मार्ग में प्राप्त, आश्रयरहित, व्यापारियों के दल से भटका हुआ व्यक्ति लब्ध दास है।

विवाहे दाये समागतो दायागतः ५।

विवाह में वैवाहिक उपहार के रूप में प्राप्त दास दायागत है।

दुर्भिक्षे पोषितः ६।

दुर्भिक्ष में पोषित दास।

सङ्ग्रामे जितो युद्धप्राप्तः ७।

लड़ाई में जीता गया दास युद्धप्राप्त है।

द्यूतेजितः ८।

द्यूत में जीता गया दास।

ऋणापनयनं यावत् दास ऋणभाक् ९।

ऋण के भुगतान तक दास रखना ऋणभाक् है।

ऋणमोचनेन दासः कृत ऋणमोचितः १०।

ऋण की राशि छोड़ने के बदले दास बनाना ऋणमोचित है।

भोजननिबन्धेनैव रक्षितः ११।

मात्र भोजन की शर्त पर रखा गया दास रक्षित है।

प्रव्रज्याच्युतः १२।

दीक्षा से भ्रष्ट दास।

स्वयमागतः १३।

स्वयं आया हुआ दास।

तत्पुत्रीपरिणयलोभेनागतः १४।

स्वामी की पुत्री से विवाह के लोभ से आया हुआ दास।

अमातृपितृको यः स्वयमात्मानं विक्रीणाति १५।

विना माता-पिता के जो स्वयं अपना विक्रय करता है।

अथदासधर्मापकरणे हेतुविशेषानाह –

दासधर्म के त्याग में विशेष हेतुओं का वर्णन –

चौरैर्हत्वा तु विक्रीतो बलाद्दासीकृतश्च यः।
दासत्वं तस्य नो युक्तं बलात्तं मोचयेन्नृपः।।८।।

जो चोरों द्वारा चोरी कर विक्रय किया गया है और जो बलपूर्वक दास बनाया गया है उसकी दासता उचित नहीं है राजा उसे बलपूर्वक मुक्त कराये।

स्वामिनं मोचयेद्यस्तु प्राणसंशयसङ्कटात्।
मुच्यते दासभावेन पुत्रवद्भागभाक् च सः।।९।।

जो अपना प्राण सङ्कट में डालकर स्वामी को सङ्कट से मुक्त कराये (स्वामी) उसे दासभाव से मुक्त करे और वह पुत्र के समान सम्पत्ति में हिस्सेदार हो।

(वृ०) अयं साधारणः सर्वदासविषयिको विधिः।

उपरोक्त साधारण विधि सभी प्रकार के दासों को मुक्त करने के विषय में है।

अथ विशेषं दर्शयति –

(दासों को मुक्त कराने के विषय में) विशेष विधि का वर्णन –

सवृद्धिधनदानाद्वै आधिता ऋणमोचिताः।
दासभावात्प्रमुच्येरन्नकालेपोषितस्तथा ।।१०।।

भुक्तिदासोऽपि तद्भुक्तद्रव्यं दत्वा च मुच्यते।
युद्धे पणे जयप्राप्तस्तथा च स्वयमागतः।।११।।

तुल्येन कर्मणा दास्यान्मुच्येद्दासीकृतोऽपि च।
दासीनिग्रहतश्चान्ये न मुच्यन्ते कृतिं विना।।१२।।

आधित (धरोहर रूप में निक्षिप्त) और ऋणमोचित (ऋण से मुक्ति के बदले बनाये गये) तथा दुर्भिक्ष काल में पोषित दास, ब्याज सहित धन देने पर दास भाव से मुक्त किये जाने चाहिए। भुक्ति दास (भोजन के बदले दास बनाया गया) भी भोजन के मूल्य के बराबर धन देकर मुक्त होता है। युद्ध तथा द्यूत में जीतकर प्राप्त तथा स्वयं आये हुए दास को (भोजन आदि के मूल्य) के बराबर कार्य कराकर दासता से मुक्त करना चाहिए। दासता में बद्ध अन्य कोटि के दास स्वामी के कृत्य का बदला चुकाये बिना मुक्त नहीं हो सकते हैं।

प्रव्रज्याप्रच्युतं तत्र दासं कुर्याद्बलान्नृपः।
आनुपूर्व्या च वर्णानां दास्यं नो प्रातिलोम्यतः।।१३।।

उन दासों में जो दीक्षा से भ्रष्ट पुरुष हैं उन्हें राजा बलपूर्वक दास बनाये। इन सभी दासों (की कोटियों) में चारों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) वर्णों के क्रम से दास बनाना चाहिए, विपरीत क्रम से नहीं।

(वृ०) अथ दासत्वनिराकरणविधिमाह –

दासत्व से निवारण की विधि का वर्णन –

दासं स्वीयमदासं यः कर्त्तुमिच्छेत्प्रसादतः।
तस्यांसतः स आदाय साम्भः कुम्भं च भेदयेत्।।१४।।

छत्राधस्तं च संस्थाप्य मार्जयित्वा च तच्छिरः।
पुष्पाक्षतानि तच्छीर्षे किरेद्ब्रूयाच्च त्रिर्विभुः।।१५।।

अदासस्त्वमतो जातो दासत्वं च निराकृतम्।
वर्तितव्यं शुद्धचित्ताभिप्रायेण निरन्तरम्।।१६।।

जो स्वामी कृपा पूर्वक अपने दास को अदास बनाना चाहता है अर्थात् दासता से मुक्त करना चाहता है वह उस दास के कन्धे से लेकर जल से भरा घड़ा फोड़े। उस (दास) को छतरी के नीचे बैठाकर (घड़े के जल से) उसका मस्तक धोकर और उसके सिर पर फूल और अक्षत बिखेरे और तीन बार कहे 'आज से तुम अदासता को प्राप्त हो गये हो'। तुम्हारी दासता समाप्त हो गई। तुम सदा शुद्ध अन्तःकरण से व्यवहार करना अर्थात् तुम स्वतन्त्र मत का आश्रय लेना।

(वृ०) अथ भृत्यवेतनविषयमाह –

नौकर के वेतन के विषय में कथन –

भृत्याय स्वामिना देयं यथाकृत्यं च वेतनम्।
आदौ मध्येऽवसाने वा यथा यद्यस्य निश्चितम्।।१७।।

अनिश्चिते वेतने तु कार्यायाद्दशमांशकम्।
दापयेद्भूपतिस्तस्मै स ह्युपस्कररक्षकः।।१८।।

कार्य के अनुरूप स्वामी द्वारा नौकर को पूर्व निश्चय के अनुसार कार्य के आरम्भ, मध्य अथवा अन्त में जो जिसका वेतन निश्चित हो दिया जाना चाहिए। वेतन निर्धारित न होने पर राजा (स्वामी से) उस (नौकर) को कार्य से (हुए) लाभ का दसवाँ भाग दिलाये क्योंकि निश्चय ही वह (नौकर स्वामी की) सम्पत्ति का रक्षक है।

(वृ०) यदुक्तं बृहदर्हन्नीतौ –

जैसा कि बृहदर्हन्नीति में कहा गया है –

किसिवाणिज्जपसूहिं जं लाहो हवइ तस्स दसमंस्सं दावेइ निवो भिच्चं अणिच्छिए वेज्जणे तस्स।१।

यदि वेतन निर्धारित न हो तो कृषि, वाणिज्य और पशुओं द्वारा हुए लाभ का दसवाँ हिस्सा राजा नौकर को दिलवाये।

व्यापारे स्वामिवित्तस्य हानिवृद्धिकरः स्वयम्।
योऽस्ति तस्मै भृतिर्देया स्वामिवाञ्छानुसारतः।।१९।।

व्यापार में स्वामी के धन में हानि अथवा वृद्धि करने वाला यदि स्वयं नौकर है तो स्वामी द्वारा अपनी इच्छानुसार उसे वेतन देय है।

(वृ०) हानौ हीनां वृद्धावधिकां चानिश्चितवेतनत्वात् स्वच्छन्दत्वाच्च तस्य।

यदि नौकर का वेतन निर्धारित न हो तो स्वामी हानि होने पर न्यून वेतन और वृद्धि होने पर अधिक वेतन देने के लिए स्वतन्त्र है।

अनेककृतकार्ये तु दद्याद्भृत्याय वेतनम्।
यथाकर्म तथा साध्ये देयं तस्मै यथाश्रुतम्।।२०।।

अनेक (सामूहिक रूप से नौकरों द्वारा) किये गये कार्य के लिए नौकर को वेतन उसके कार्य के अनुसार, सम्पन्न कार्य तथा शर्त के अनुरूप दिया जाना चाहिए।

(वृ०) अथ भृत्यदण्डमाह –

इसके पश्चात् नौकर के दण्ड के विषय में कथन-

सम्प्राप्ते वेतने भृत्यः स्वकं कर्म करोति न।
द्विगुणेन च स दण्ड्योऽप्राप्ते भृतिसमेन च।।२१।।

वेतन प्राप्त हो जाने पर यदि नौकर अपने सौंपे गये कार्य को नहीं करता है तो उसे दुगुना और (सौंपे गये कार्य के बदले) यदि वेतन न मिला हो तो मजदूरी के बराबर दण्ड दिया जाना चाहिए।

अनेकसाध्ये कार्ये तु देयं भृत्याय वेतनम्।
यथाकार्यं तथासिद्धे सिद्धे देयं यथाश्रुतम्।।२२।।

अनेक (नौकरों द्वारा सम्पन्न) कार्य में यदि कार्य सिद्ध न (अपूर्ण) हो तो किये गये कार्य के अनुसार नौकर को वेतन देय है। कार्य पूरा होने पर शर्त के अनुसार वेतन देय है।

भाण्डं तु नाशयेत्किंचित्प्रमादात् भारवाहकः।
तन्मूल्यप्रमितं द्रव्यं दापयेत्स्वामिनं नृपः।।२३।।

यदि भारवाहक असावधानी से बर्तन नष्ट कर देता है तो राजा उस (बर्तन) का मूल्य (भारवाहक से) स्वामी को दिलाये।

प्रस्थाने नियतो भृत्यो लग्ने विघ्नकरो भवेत्।
भृतिद्विगुणदण्ड्यः स दोषो हि बलवत्तरः।।२४।।

प्रस्थान तय होने पर नौकर के लग्न (नियत समय में) बाधक बनने पर उसे मजदूरी का दुगुना दण्ड देना चाहिए, निश्चय ही यह बड़ा अपराध है।

दण्ड्यः सप्तमभागेन लग्नात्पूर्वं परित्यजन्।
मार्गे तु त्रयभागेन विना व्याध्यादिकारणम्।।२५।।

लग्न (नियत समय) से पहले ही (कार्य) छोड़ने वाले मजदूर पर (निश्चित मजदूरी का) सातवाँ भाग दण्ड लगाना चाहिए। बिना बीमारी आदि के मार्ग में कार्य छोड़ने पर मजदूरी का एक तिहाई दण्ड लगाना चाहिए।

मार्गार्द्धं समतिक्रान्तं कुर्वन्तं निजकर्म च।
भृत्यं त्यजति यः स्वामी स दद्यात्सकलां भृतिम्।।२६।।

आधा रास्ता बीत जाने पर मजदूर अपना कार्य करते हुए यदि मजदूरी छोड़ देता है तो स्वामी उसे पूरी मजदूरी प्रदान करे।

इत्येवं वेतनादानस्वरूपं चात्र वर्णितम्।
संक्षिप्तं श्रुतपाथोधिमध्याद्रत्नमिवोद्धृतम्।।२७।।

समुद्र में रत्न निकालने के समान शास्त्र रूपी समुद्र में से यह 'वेतनादान' रूपी रत्न उद्धृत कर उसका स्वरूप यहाँ संक्षिप्त रूप में वर्णित किया गया।

।। इति वेतनादानप्रकरणम्।।

—o—

तृतीय अधिकार

३.८

क्रयेतरानुसन्तापप्रकरणम्

श्रीश्रेयांसं नमस्कृत्य वादिकौशिकभास्करम्।
क्रयेतरानुसन्तापः कथ्यतेऽत्र समासतः।।१।।

वादी रूपी उलूक के लिए सूर्य के समान तीर्थङ्कर श्री श्रेयांसनाथ की वन्दना कर यहाँ क्रय-विक्रय (के बाद के) दुःख का कथन किया जाता है।

(वृ०) पूर्वस्मिनप्रकरणे भृत्या वर्णिताः तत्सहितो धनी तद्द्वारा स्वयं वा क्रय-विक्रयावपि कुरुते तत्र वस्तुपरीक्षामन्तरा तज्जनितानुशयोऽपि भवतीतिसम्बन्धसम्बद्धं तत्स्वरूपं कथ्यते –

पूर्व प्रकरण में नौकरों का वर्णन है, नौकरयुक्त स्वामी नौकर के माध्यम से अथवा स्वयं क्रय-विक्रय भी करता है जिसमें वस्तु-परीक्षा के विना क्रय-विक्रय से उत्पन्न दुःख या पश्चात्ताप भी होता है इसलिए व्यापार से सम्बन्धित पश्चात्ताप का स्वरूप वर्णित किया जाता है –

(वृ०) क्रीतानुशयलक्षणमाह –

क्रय से उत्पन्न पश्चात्ताप के लक्षण का कथन –

क्रेता पणेन पण्यं यः क्रीत्वा जानाति नो बहु।
पश्चात्तापो भवेत्तस्य[१] स क्रीतानुशयः स्मृतः।।२।।

जो खरीदार मूल्य द्वारा विक्रेय वस्तु को क्रय कर (पुनः) हमें (मूल्य) अत्यधिक जान पड़ता है उसे (इस प्रकार) पश्चात्ताप हो तो वह क्रीतानुशय (क्रय कर पछताना) कहा जाता है।

(वृ०) विक्रीतानुशयलक्षणमाह –

विक्रय से उत्पन्न पश्चात्ताप के लक्षण का वर्णन –

---

१. भवेतस्य भ १, भ २, प १, प २।।

विक्रीय द्रव्यं यो मन्येन्मूल्यमल्पमुपागतम्।
तस्य चित्तेऽनुपातो यो विक्रीतानुशयो भवेत्॥३॥

जो वस्तु का विक्रय कर यह माने कि अल्प मूल्य प्राप्त हुआ तो उसके मन में जो खेद हो वह विक्रीतानुशय – बिक्री का खण्डन होता है।

(वृ०) अथ वस्तुविशेषपरीक्षाकालवधिमाह –

वस्तु-विशेष की परीक्षा के काल की मर्यादा का वर्णन –

स्त्रीदोह्य[१]बीजवाह्यायोरत्नपुंसां परीक्षणे।
क्रीतानामवधिर्ज्ञेयो मासस्त्रिदशपञ्चभूः॥४॥

दिनं सप्तदिनं पक्षश्चात्र दोषे निरीक्षिते।
क्रेतादातुं दत्तद्रव्यं शक्तः प्रत्यर्थक्रीतकम्॥५॥

क्रय की हुई स्त्री (दासी), दुहे जाने योग्य पशु (गाय, भैंस आदि), बीज, भार वाहक पशु, रत्न और पुरुष के परीक्षा की अवधि क्रमशः एक मास, तीन दिन, दस दिन, पाँच दिन, सात दिन और एक पक्ष (पन्द्रह दिन) जाननी चाहिए। इस (अवधि) में दोष दिखाई पड़ने पर क्रेता क्रय की हुई वस्तु को लौटाकर दिये गये धन को वापस ले सकता है।

(वृ०) अथोक्तव्यतिरिक्तविषयव्यवस्थामाह –

उपरोक्त वर्णित वस्तुओं से भिन्न वस्तुओं के सम्बन्ध में व्यवस्था का वर्णन–

क्रीतं प्रत्यर्पितुं वस्तुग्राहकश्चेत्समीहते।
अविकृतं तद्दिने चैव तर्हि प्रत्यर्पयेद् ध्रुवम्॥६॥

ददद्द्वितीये दिवसे पणस्त्रिंशांशहानिभाक्।
तृतीये द्विगुणाहानिः परतो देयमेव[२] न॥७॥

यदि क्रय की हुई वस्तु को ग्राहक वापस करना चाहता है तो उसमें बिना विकृति उत्पन्न किये उसी दिन अवश्य वापस कर देना चाहिए। ग्राहक द्वारा (क्रीत वस्तु) दूसरे दिन वापस करने पर मूल्य के तीसवें भाग की हानि होगी, तीसरे दिन वापस करने पर (इससे) दुगुना अर्थात् मूल्य के पन्द्रहवें भाग की हानि होगी। तीन दिन के पश्चात् (क्रीत वस्तु) वापस नहीं करनी चाहिए।

(वृ०) अयमपरीक्षितवस्तुग्रहणे विधिः परीक्षितग्रहे तु न हि क्रीतवस्तुनः प्रत्यर्पणं न च दत्तादानं भवतीत्याह –

---

१. दौह्यवीज० भ १, भ २, प १, प २॥
२. देयवेमन भ १, भ २, प २ देयवैमन प १॥

उपरोक्त विधि बिना परीक्षा के क्रय की गई वस्तु के सम्बन्ध में है। परखी गई वस्तु का क्रय करने पर उसे वापस नहीं किया जा सकता है और न ही दिया गया धन वापस लिया जा सकता है, इसका कथन –

परीक्षापूर्वकं क्रीतं क्रय्यं यत्स्वामिना स्वयम्।
तद्विक्रेता न गृह्णीयाल्लब्धं प्रत्यर्पयेन्न च।।८।।

यदि स्वामी द्वारा स्वयं परीक्षण के पश्चात् क्रेय वस्तु क्रय की गई है तो विक्रेता विक्रय की गई वस्तु को न (वापस) ग्रहण करे और न ही प्राप्त हुए (मूल्य) को लौटाये।

(वृ०) अथपरीक्षाप्रसङ्गात्स्वर्णादिहानिपरीक्षामाह –

परीक्षा के प्रसङ्ग से स्वर्ण आदि की क्षति की परीक्षा का वर्णन –

वह्नौ स्वर्णस्य नो हानिः रजतस्य पलद्वयम्।
त्रपोरष्टौ[1] च ताम्रस्य पञ्चायसि पलानि दिक्।।९।।

अग्नि (तपाने से) स्वर्ण की हानि नहीं होती है, चाँदी की दो पल (भार माप-विशेष), रांगा या जस्ता की आठ, ताम्र की पाँच और लोहा की दस पल हानि होती है।

(वृ०) प्रतिशत पलमेषा हानिर्ज्ञेया अधिकहानौ तु शिल्पी दण्ड्यो भवति।

उपरोक्त धातुओं में प्रति सौ पल में यह (श्लोक में निर्दिष्ट) क्षति जाननी चाहिए इससे अधिक हानि होने पर शिल्पकार दण्डित किया जाना चाहिए।

यदुक्तं बृहदर्हन्नीतौ –

हाणी णहु सुवणेअमीए पलदुग्गं भवे रयए।
तंवस्स पञ्च लोहे दस सीसे अठयइसयगं।।१।।

जैसा कि बृहदर्हन्नीति में कहा गया है – निश्चित रूप से अग्नि में स्वर्ण की हानि नहीं होती है, सौ पल चाँदी में दो पल की हानि होती है, ताम्र में पाँच, लौह में दस और सीसे में आठ पल की हानि होती है।

(वृ०) अथवस्त्वन्तरविषये विशेषमाह –

उपरोक्त धातुओं से भिन्न वस्तुओं के सम्बन्ध में विशेष कथन –

कार्पासे सौत्रिके चौर्णे स्थूलसूत्रेण निर्मिते।
ज्ञेया दशपलावृद्धिः शते प्रक्षालिते सति।।१०।।

---

१. त्रपुषष्टौ भ १, प १, त्रपुपौष्टौ भ २, प २।।

कपास के सूत, ऊन और मोटे धागे से निर्मित वस्त्र को धोने पर सौ पल में दस पल की वृद्धि होती है।

सूक्ष्मसूत्रैश्च निष्पन्ने वृद्धिर्हि त्रिपला भवेत्।
मध्यमे मध्यमा ज्ञेया प्रोक्तमेतज्जिनागमे।।११।।

पतले धागों से निर्मित वस्त्र में निश्चय ही तीन पल की वृद्धि होती है, मध्यम धागों से निर्मित वस्त्र में मध्यम वृद्धि होती है – ऐसा जिन शास्त्रों में प्ररूपित है।

त्रिंशद्भागक्षयो रोमजाते च कार्मिके पुनः।
कौशेये वल्कले तु स्यान्न वृद्धिर्न क्षयः कदा।।१२।।

(पशु-पक्षियों) के रोम और हस्तनिर्मित धागों के वस्त्रों में (सौ में) तीस भाग का ह्रास होता है, पुनः रेशमी और वल्कल वस्त्र में (धोने से) न कभी वृद्धि होती है और न हानि होती है।

(वृ०) चित्रयन्त्रसूत्रादिकर्मनिमिते रोमनिर्मिते च राशितस्त्रिंशद्भागक्षयः स्यात्। कौशेये भूर्जपत्रादिवल्कलनिष्पाद्ये च हानिवृद्धी न हि स्यातामिति।

यन्त्र द्वारा सूत्रादि से निर्मित चित्र और पशु-पक्षियों के रोम से निर्मित वस्त्र में तीसवें भाग का क्षय होता है। रेशम, भोजपत्र तथा वल्कल वस्त्र में क्षय तथा वृद्धि नहीं है।

क्रयेतरानुसन्तापः संक्षेपेणात्रसूत्रितः।
यज्ज्ञानेन प्रवीणाः स्युर्जना व्यापारकर्मणि।।१३।।

क्रय-विक्रय विवाद प्रकरण यहाँ संक्षेप में क्रमबद्ध किया गया जिसके ज्ञान से लोग व्यापार कर्म में कुशल हों।

।। इति क्रयेतरानुसन्तापप्रकरणम्।।

—o—

तृतीय अधिकार

३.९

स्वामिभृत्यविवादप्रकरणम्

वासुपूज्यजिनं स्तुत्वा दुष्टारातिविनाशकम्।
स्वामिभृत्यविवादोऽत्र संक्षेपेणाभिधीयते।।१।।

दुष्ट शत्रुओं के विनाशक तीर्थङ्कर वासुपूज्य की स्तुति कर स्वामी तथा नौकर के विवाद का यहाँ संक्षेप में कथन किया जाता है।

(वृ०) पूर्वस्मिन्प्रकरणे क्रेयविक्रेयपरीक्षाकालावधिरभिहितस्तत्र परीक्षिताः क्रीतगोमहिष्यादयोऽपि भवन्ति तश्चारणार्थं नियुक्तभृत्यदोषे वादः स्यादतो तद्वर्णनोऽभिधीयते –

पूर्व प्रकरण में क्रय और विक्रय की जाने वाली वस्तु की परीक्षा की समय-मर्यादा का कथन किया गया है। परख कर खरीदे गये पशुओं में गाय-भैंस आदि भी होते हैं, उनको चराने के लिए नियुक्त सेवकों के दोष के कारण विवाद होता है अतः उसका वर्णन किया जाता है–

महिषी त्वष्टमाषैश्च परशस्यविनाशिनी।
दण्ड्या तदर्द्धैः सुरभिस्तस्याप्यर्द्धैरजात्वविः।।२।।

दूसरे के (खेत में प्रवेश कर) फसल को नष्ट करने वाली भैंस पर आठ मासा, गाय पर उसका आधा (चार मासा) और बकरी पर इस (चार मासा) का आधा अर्थात् दो मासा दण्ड लगाना चाहिए।

(वृ०) माषश्च ताम्रपणस्य विंशतिमो भागः।

मासा (का मूल्य) ताँबे के सिक्के का बीसवाँ भाग होता है।

अपराधाधिक्ये तु दण्डाधिक्यं स्यादित्याहुः –

अपराध की अधिकता होने पर दण्ड की अधिकता का कथन –

अवत्सानां स्थितानां च चरित्वा तत्र पूर्वतः।
दण्डः स्याद्द्विगुणस्तासां सवत्सानां चतुर्गुणः।।३।।

यदि बछड़े आदि से रहित (गाय, भैंस, बकरी आदि) खेत में चरकर वहीं खेत में रहे तो पूर्व की अपेक्षा दुगुना दण्ड देना चाहिए और यदि (वे पशु) बछड़े आदि के साथ हों तो (पहले की अपेक्षा) चार गुना दण्ड देना चाहिए।

(वृ०) क्षेत्रान्तरविषयं पश्वन्तरविषयं च दण्डमाह –

विशेष पशु तथा विशेष खेत के विषय में दण्ड का कथन –

विवीतेऽपि हि पूर्वोक्त एव तासां दमः स्मृतः।
खरोष्ट्रयोश्च दण्डः स्यात्पूर्वोक्तमहिषीसमः।।४।।

(दूसरे) के बाड़े या चारागाह में भी उन पशुओं के चरने पर पहले की भाँति ही (पशु स्वामी को) दण्ड कहा गया है। गधे, ऊँट (आदि अन्य पशुओं के विषय में) पहले प्ररूपित भैंस के बराबर दण्ड होता है।

(वृ०) एवं च परक्षेत्रस्य नाशे गोमहिष्यादिस्वामिनां दण्डस्तूक्तः परं क्षेत्रस्वामिने तद्धानिनिमित्तं किं दातव्यं तदाह –

इस प्रकार दूसरों के खेत की हानि होने पर गाय, भैंस आदि के स्वामियों को दण्ड तो कहा गया है परन्तु खेत के स्वामी को उस हानि के निमित्त क्या देना चाहिए, उसका वर्णन–

ताड्यो गोपस्तु गोमी च पूर्वोक्तदण्डभागपि।
दद्यात् क्षेत्रफलं यद्विनष्टं क्षेत्राधिपाय तत्।।५।।

(पशुओं द्वारा खेत चरने पर) गोप या चरवाहों को मारना चाहिए, गाय आदि पशुओं का स्वामी पूर्व कथित दण्ड का भी भागी होगा। यदि खेत की फसल नष्ट हुई हो तो खेत के स्वामी को (नष्ट फसल के बराबर मूल्य) देना चाहिए।

(वृ०) क्षेत्रफलहानिनिदाने तु गवादिभक्षणावशिष्टपलालादिकं गोमिनैव ग्राह्यं मध्यस्थस्थापितमूल्यदानेन क्रीतप्रायत्वात्।

खेत की फसल की हानि के निर्णय के लिए गाय आदि के खाने से बचे हुए पौधे के डण्ठल आदि पशुओं के स्वामी द्वारा ही ग्रहण करना चाहिए क्योंकि मध्यस्थ द्वारा क्षति का निर्धारित मूल्य खेत के स्वामी को देने के कारण (क्षतिग्रस्त भाग उसके द्वारा) लगभग क्रय ही कर लिया गया है।

(वृ०) गोपदोषे स ताड्यस्तद्धानिं च गोमी देयात्। गोमिदोषे स दण्ड्योऽपि हानिदोऽपि चेति फलितार्थः।

गोपालक का दोष होने पर वह दण्डनीय है और उसके कारण हुई क्षति (का मूल्य) पशु के स्वामी द्वारा दिया जाना चाहिए। तात्पर्य यह कि पशु के स्वामी का दोष होने पर वह दण्डनीय भी है और क्षति (का मूल्य) देने वाला भी है।

(वृ०) अयं कामचारे दण्डः उक्तः। अकामचारे तु क्षेत्रविशेषेऽपवादं दर्शयति—

उपरोक्त दण्ड जान-बूझकर (दूसरे के खेत में पशु) चराने पर कहा गया। अनजाने में (दूसरे के) खेत-विशेष में पशु चराने पर अपवाद का कथन करते हैं—

कामचारे त्वयं दण्डोऽकामे दोषो न कस्यचित्।
यदि ग्रामविवीतान्तान्तं क्षेत्रं मार्गसमीपगम्।।६।।

यदि (खेत में पशु) जान बूझकर चराये गये हों तो यह (उपरोक्त) दण्ड है। यदि जानबूझकर नहीं चराया गया है, भूमि चारागाह के छोर पर है और मार्ग के निकट है तो किसी (चरवाहे या पशु मालिक) का दोष नहीं है।

(वृ०) अदण्ड्यानपशुविशेषानाह –

दण्डित न किये जाने वाले विशेष पशुओं के विषय में कथन –

षण्डोत्सृष्टागन्तुकाश्च पशवः सूतिकादयः।
दैवाश्च राजकीयाश्च मोच्या येषां न रक्षकः।।७।।

सांड़, मुक्त पशु, नये आये हुए पशु और सद्यः जात (बछड़े) आदि, देवताओं के (नाम पर छोड़े गये) पशु और सरकारी पशुओं को मुक्त कर देना चाहिए (क्योंकि) इनका कोई रखवाला नहीं होता।

(वृ०) अथगोपकृत्यमाह –

गोपालक के कर्त्तव्य के विषय में कथन –

प्रातर्गृहीता[1] यावन्तः गवादिपशवो विकाले।
अर्पणीया हि तावन्तो गोपेन गणनोत्तरम्।।८।।

प्रातःकाल चराने हेतु जितने गाय आदि पशु (स्वामियों से) ग्रहण किये गये हों सन्ध्याकाल में ग्वाले द्वारा गिनकर उतने पशु वापस देना चाहिए।

सिंहाहिविद्युदाग्नै[2]श्च मृतश्चौरैर्हृतोऽपि वा।
तस्य दण्डो न गोपस्य तत्प्रमादे स दण्डभाक्।।९।।

सिंह, सर्प, विद्युत् और अग्नि से मरे हुए अथवा चोरों द्वारा भी चुराये हुए (पशुओं के लिए) ग्वाले का अपराध नहीं है उस (ग्वाले) की असावधानी होने पर वह दण्ड का पात्र है।

---

१. ०र्गृहीतावन्तः भ १, भ २, प १, प २।।
२. विद्युदायै भ १, भ २, प १, प २।।

(वृ०) प्रसङ्गाद्गोपवेतनस्वरूपं गवादिचारक्षेत्रस्वरूपं चोच्यते –

प्रसङ्गवश गोपालक के वेतन का स्वरूप और गाय आदि के चराने के योग्य खेत के विषय में कथन –

शताद्गवां वत्सतरा द्विशताद्गोपवेतनम्।
प्रतिवर्षं भवेद्देयं दोहद[1]श्चाष्टमे दिने॥१०॥

(गोपालक को) सौ गायों पर एक बछिया, दो सौ गायों पर दो (बछिया) वार्षिक वेतन के रूप में देय है। दूध देने वाले पशु को (बच्चा देने के) आठवें दिन चराने हेतु देना चाहिए।

नृपेण ग्रामलोकैश्च रक्षणीया वसुन्धरा।
गवादिपशुवृत्यर्थं नो चेद्दुःखं सदा भवेत्॥११॥

गाय इत्यादि पशुओं के निर्वाह के लिए राजा और ग्रामीणों द्वारा (गोचर आदि) भूमि की रक्षा करनी चाहिए नहीं तो सदा दुःख होगा।

(वृ०) तत्प्रमाणमाह –

उस (पशुचारागाह) के प्रमाण का कथन –

परिणाहोऽभितो रक्ष्यो ग्रामस्य धनुषां शतम्।
शतद्वयं कर्वटस्य नगरस्य चतुःशतम्॥१२॥

ग्राम के चारों ओर सौ धनुष (चार हाथ के बराबर लम्बाई), कर्वट (मण्डी, बाजार) के चारों ओर दो सौ धनुष और नगर के चारों ओर चार सौ धनुष विस्तृत (गोचर हेतु) संरक्षित होना चाहिए।

संक्षेपेणात्र गदितो विवादः स्वामिभृत्ययोः।
व्यवहारेऽष्टमो भेदो विशेषः श्रुतसागरात्॥१३॥

व्यवहारमार्ग में आठवें भेद स्वामी और सेवक के विवाद के विषय में संक्षेप में यहाँ वर्णित किया गया है (इसके विषय में) विशेष श्रुतसागर अर्थात् बृहदर्हन्नीति से जानना चाहिए।

॥ इति स्वामिभृत्यविवादप्रकरणम्॥

—o—

---

१. ०दस्याष्टमे भ १, भ २, प १, प २॥

तृतीय अधिकार

३.१०

निक्षेपप्रकरणम्

श्रीविमलस्य पादाब्जनखा दिन्तु सुखानि वः।
यज्जन्मनि नभोभागाद्रत्नवृष्टिरभूत्तराम्।।१।।

श्री विमलनाथ के, जिनके जन्म के समय आकाश खण्ड से रत्नों की प्रचुर वर्षा हुई, चरण-कमल के नख तुम्हें सुख प्रदान करें।

(वृ०) पूर्वप्रकरणे भृत्यदोषेण स्वामिनो हानिः सूचिता ततः खिन्नः कोऽपि स्वामी वृद्धिलाभार्थं रक्षार्थं वा स्वधनं क्वचिन्निक्षिप्य निर्वाहं करोत्यतो निक्षेपप्रकारोऽत्र वर्ण्यते तत्र तावन्निक्षेपस्वरूपमुच्यते –

पूर्वप्रकरण में सेवक के दोष से स्वामी की हानि का निर्देश किया गया उससे दुःखी कोई भी स्वामी ब्याज के लाभ के लिए अथवा धन की रक्षा के लिए अपने धन का कुछ अंश न्यास रखकर निर्वाह करता है। अतः निक्षेप के भेदों का यहाँ वर्णन किया जाता है। उस प्रसङ्ग में निक्षेप के स्वरूप का कथन किया जाता है –

कर्मोदयेन मर्त्यस्य सन्ततिर्न भवेद्यदा।
[1]दुष्टोऽथवा तनुजः स्यात्तदा दुःखं महत्क्षितौ।।२।।

जब कर्मोदय के कारण किसी पुरुष की सन्तान उत्पन्न न हो अथवा सन्तान दुष्ट हो तो पृथ्वी पर महान दुःख होता है।

ततः कुटुम्बपुष्ट्यर्थं स्तैन्यादिभयतोऽपि वा।
स्वयं व्यवहृतिं कर्तुमशक्तेन नरेण वा।।३।।

यात्रार्थमुद्यतेनापि क्षिप्यते यद्वसु स्वकम्।
धर्मज्ञे कुलजे सत्ये सदाचाररतात्मनि।।४।।

स निक्षेपविधिः प्रोक्तः सर्वजीवसुखप्रदः।
स तु द्विविधतापन्नः समिषाऽमिषभेदतः।।५।।

---

१. स्यादुष्टनुजस्तदा भ २, प २।।

इसलिए (उन दुःख के कारणों के विद्यमान होने पर) परिवार के पोषण के लिए अथवा चोरी आदि के भी भय अथवा स्वयं व्यापार करने में असमर्थ होने या यात्रा के लिए तत्पर होने पर व्यक्ति अपना धन, धर्म के ज्ञाता, कुलीन, सत्यवादी और सदाचारी व्यक्ति के पास न्यास रूप में रखे। वह निक्षेप विधि सभी प्राणियों को सुख देने वाली कही गई है। वह निक्षेप समिष (ब्याज सहित) और अमिष (ब्याज रहित) भेद से दो प्रकार का है।

स तु भूयः कियत्काले निक्षेपं याचयेद्यदा।
न तदा स्याद्विसंवादस्ततः शुद्धे विनिक्षिपेत्।।६।।

यावद् द्रव्यं च निक्षिप्तं तावद्देयाद्धनी पुनः।
यथादानं तथादानं येन प्रीतिः सदा तयोः[१]।।७।।

वह (न्यास रखने वाला) जब कुछ काल के पश्चात् निक्षेप को (वापस) माँगे तब कलह न हो अतः शुद्धता से न्यास रखना चाहिए। (न्यासकर्त्ता द्वारा) जितना धन रखा गया उतना (धन) धनी पुनः उसे दे (वापस करे)। जिस प्रकार ग्रहण करना उसी प्रकार प्रदान करना जिससे दोनों में सदा प्रीति (बनी रहे)।

याच्यमानं स्वकीयं स्वं निक्षेप्ता यो न यच्छति।
भूप आहूय तं [२]मैत्र्यभावेन क्षेपिनं वदेत्।।८।।

विवादोऽयं किमन्योऽन्यं नायं धर्मस्तवोचितः।
स्ववंशो लज्यते येन न तत्कुर्वीत बुद्धिमान्।।९।।

जो न्यास रखने वाला अपने धन के से माँगे जाने पर जो नहीं देता है राजा न्यास रखने वाले उस व्यक्ति को बुलाकर मैत्रीभाव से पूछे। यह परस्पर विवाद क्यों? यह धर्म नहीं है, तुम्हारे लिए उचित नहीं है। हे बुद्धिमान्! जिससे अपना वंश लज्जित हो वैसा (कृत्य) नहीं करना चाहिए।

स्वामिन्मम तु न ह्यस्ति देयैतस्य वराटिका।
श्रीमद्भिर्निश्चयं कृत्वा यथा रोचेत तत्कुरु।।१०।।

हे स्वामिन्! मुझे इसकी एक कौड़ी भी देय नहीं है (अतः) श्रीमन्त निश्चय कर जैसा उचित समझे वही करें।

स्वामिकार्यहितोद्युक्तैः पुरुषैः साक्ष्यदायिभिः[३]।
विजातिभिर्गूढचरैर्निर्णीयात्सत्यतां द्वयोः।।११।।

---

१. नयोः भ १, प १, प २।।
२. मै अभावेन क्षेपितं प २।।
३. दायिनिः भ २ दायिनि प २।।

स्वामी के कार्य और हित के लिए तत्पर साक्ष्य देने वाले पुरुषों तथा विजातीय प्रच्छन्न रूप से कार्य करने वालों के द्वारा दोनों की सत्यता का निर्णय करना चाहिए।

वाद्युक्तं चेद्वचः सत्यं तदा भूपो यथातथा।
दापयित्वा धनं तस्मै दण्डयेन्न्यस्तरक्षकम्।।१२।।

यदि वादी (न्यास देने वाले) का वचन सत्य हो तब राजा द्वारा जिस किसी ढङ्ग से उसे धन दिलवाकर न्यास रखने वाले को दण्डित करना चाहिये।

(वृ०) अर्थिन्यसत्ये किं स्यादित्याह –

वादी के असत्य सिद्ध होने पर क्या करना चाहिए, यह कथन–

अर्थिन्यसत्ये दण्डचः[1] स यावद्वेदनमर्थतः।
तथा न पुनरन्योऽप्यनीतिं कुर्याच्च कश्चन।।१३।।

वादी के झूठा सिद्ध होने पर उसने जितना धन बताया हो उतने धन से दण्डित करना चाहिए जिससे पुनः कोई भी अन्य दुराचार न करे।

निजमुद्राङ्कितं बन्धं कृत्वा च वस्तुनः स्वयम्।
निकटे स्थाप्यतेऽन्यस्य[2] बुधैरुपनिधिः स्मृतः।।१४।।

जब स्वयं अपनी मुद्रा अङ्कित कर और बाँधकर वस्तु को दूसरे के पास रखा जाता है तो उसे विद्वानों द्वारा उपनिधि कहा जाता है।

निक्षेप्ता लेखपत्रे चेत्पुत्रनाम न लेखितम्।
याचितं तदवाप्नोति पुत्र ऋक्थं मृतौ पितुः।।१५।।

न्यास करने वाले ने यदि लेखपत्र में पुत्र का नाम नहीं लिखाया है तो भी पिता की मृत्यु के बाद उस न्यास को धनी से माँगने पर पुत्र प्राप्त कर लेता है।

जलाग्निचौरैर्यन्नष्टं तन्निक्षेप्ता न चाप्नुयात्।
निक्षेपरक्षकाद्द्रव्यं तत्प्रसादादृते नरः।।१६।।

(न्यास रूप में निक्षिप्त धन) यदि जल, अग्नि या चोरों के कारण नष्ट हो जाय तो निक्षेप रखने वाले की कृपा के बिना निक्षपेकर्त्ता उसे प्राप्त नहीं कर सकता।

(वृ०) ऋक्थिधनिनोर्निक्षेपनिह्नवं कुर्वतो नृपः किं कुर्यातदित्याह–

यदि न्यास रखने वाला स्वामी निक्षेप (रखने से) मुकर जाता है तो राजा को क्या करना चाहिए, इसका कथन –

१. दम्यः भ १, भ २, प १, दमाः प २।।
२. स्थाप्यतेयस्य भ १, भ २, प २।।

निक्षेपापह्नुतिं कर्त्रोः समाद्यैः शपथैर्नृपः।
साक्ष्यादिशपथैर्वापि योऽसत्यस्तं तु दण्डयेत्॥१७॥

सभी पापों के शपथपूर्वक अथवा साक्षी आदि की शपथपूर्वक जो न्यास को छिपा लेता है और जो झूठा है उसे राजा दण्डित करे।

चेदसत्यं द्वयोर्वाक्यं राज्ञा दण्ड्यावुभावपि।
यावन्निवेदितं स्वान्ताभिप्रायं तावता लघु॥१८॥

(वादी और प्रतिवादी) दोनों का कथन असत्य हो तो राजा द्वारा दोनों को दण्डित किया जाना चाहिए। यदि वे अपने अन्तःकरण से शीघ्र (यथार्थ) अभिप्राय सूचित न करें।

निक्षिप्तं यो धनं ऋक्थी निह्नुतेऽस्मान्महीधनः।
गृहीत्वा षोडशांशं प्रागर्थिनं दापयेत्समम्॥१९॥

धरोहर रखे हुए जिस धन को न्यास रखने वाला (यदि) छिपाता है तो राजा पहले उससे (न्यास का) सोलहवाँ भाग लेकर बाद में बराबर धन न्यास कर्त्ता को दिलाये।

(वृ०) अर्थिकृताभियोगे यो व्ययोऽर्थिनः स्यात्स भूपेन प्रत्यर्थिनो अर्थिने दापयितव्य इत्याह –

वादी द्वारा अभियोग चलाने में जो व्यय उसका हो वह राजा द्वारा प्रतिवादी से दिलवाना चाहिए, यह कथन –

यो नियोगेऽर्थिनो जातो व्ययः प्रत्यर्थिनो नृपः।
तद्द्रव्यं दापयेत्सर्वं लिखित्वा जयपत्रके॥२०॥

वाद में वादी का जो व्यय हुआ है राजा उस राशि को विजय प्रपत्र में अङ्कित कर प्रतिवादी से सम्पूर्ण राशि (वादी को) दिलवाये।

(वृ०) अथोपनिधिहरणविषयमाह –

उपनिधि अर्थात् धरोहर के हरण करने के विषय में कथन –

कश्चिच्चोपनिधे[1]र्हर्ता भूपेन यदि निश्चितः।
दण्ड्यः स्याद्दापयित्वा प्राक् निक्षिप्तक्षेपकाय तम्॥२१॥

यदि राजा द्वारा उपनिधि के हरण करने वाले का निश्चय कर लिया गया हो तो पहले उस (न्यास कर्त्ता को) निक्षेप किया हुआ धन दिलवाकर तब दण्ड (राशि) ग्रहण करना चाहिए।

१. ०च्चौपनिधे प १॥

(वृ०) यः कैतवेन कश्चिद्वञ्चयेत्स दण्डच इत्याह –

जो कपटवश किसी को ठगे वह दण्डनीय है –

राज्यगेहे श्रुतं मित्र नृपः क्रुद्धस्तवोपरि।
ततस्त्वं मद्गृहे तिष्ठ रक्षामि त्वामसंशयम्।।२२।।

हे मित्र! राजसभा में मैंने सुना है कि राजा तुमसे क्रुद्ध है इसलिए तुम मेरे घर में रहो निश्चय ही मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।

चेद्भूपस्त्वद्गृहस्थानि वस्तूनि द्राक् गृहीष्यति[1]।
त्वदिच्छा चेत्समस्तानि मद्गेहे स्थापयाम्यहम्।।२३।।

इत्येवं कैतवं कृत्वा भयं दत्वा हरेद्धनम्।
कन्यावास्तुहिरण्यादि हेतुभिर्विविधैः खलः।।२४।।

स दण्डचो भूमिपालेन कारागारादिबन्धनैः।
निर्वास्यो नगरात्स्वीयात्सर्वलोकप्रपञ्चकः।।२५।।

यदि (आशङ्का है) कि राजा तुम्हारे घर की वस्तुओं का अधिग्रहण कर लेगा (अतः) यदि तुम्हारी इच्छा हो तो (तुम्हारी) समस्त वस्तुओं को मैं अपने घर में रख लेता हूँ। इस प्रकार छल कर, भय देकर धन हरण कर लेता है। कन्या, गृह, स्वर्ण आदि के लिए अनेक प्रकार के दुष्ट आचरण द्वारा (वह वस्तु ग्रहण करता है)। वह (दुष्ट) राजा द्वारा कारागार आदि में डालने (रूप) दण्ड द्वारा दण्डित किया जाना चाहिए। सभी लोगों को ठगने वाले उस दुष्ट को अपने नगर से निर्वासित कर देना चाहिए।

(वृ०) साक्षिनिश्चितवादविषयमाह –

साक्षियों द्वारा निर्णीत किये जाने वाले वादों के विषय का कथन–

साक्षिनिश्चितनिक्षेपविवादेऽन्योऽन्यमेव च।
यावत्साक्ष्यादिभिः सिद्धचेत्तदेव स्यात्प्रमाणयुक्।।२६।।

साक्षियों द्वारा निश्चित होने वाले 'निक्षेप' सम्बन्धी विवाद में जिन साक्षियों से एक-दूसरे की बात सिद्ध हो वही (तथ्य) प्रमाण के योग्य है।

(वृ०) एतद्विषये साक्षिणो भिन्ना भवन्ति तेषु योग्यायोग्यानाह–

न्यास के विषय में साक्षी भिन्न होते हैं उनकी योग्यता-अयोग्यता के विषय में कथन–

१. गृहिष्यति भ १, भ २, प २।।

यः कृत्यस्यादिमन्तं च जानाति नितरां नरः।
प्रत्यक्षदर्शी साक्षी स्यान्न परः श्रुतिमात्रतः॥२७॥

जो साक्षी प्रकरण को आरम्भ से अन्त तक भलीभाँति जानता हो ऐसा प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हो दूसरा मात्र सुनने वाला साक्षी नहीं (हो सकता)।

स साक्षी द्विविधः स्वाभाविको नैयोगिकः पुनः।
तत्राद्यः षड्विधो ज्ञेयः परः पञ्चविधः स्मृतः॥२८॥

वह साक्षी दो प्रकार का होता है - स्वाभाविक और नैयोगिक, उसमें प्रथम (स्वाभाविक) छः प्रकार का जानना चाहिए और दूसरा (नैयोगिक) पाँच प्रकार का कहा गया है।

ग्रामीणः प्राड्विवाकश्च भूपश्च व्यवहारिणः।
राज्यस्यकार्याभिरतोऽर्थिना तु प्रहितश्च यः॥२९॥

कुल्याः कुल्यविवादेषु विज्ञेयास्तेऽपि साक्षिणः।
न्यायोक्तगुणसम्पन्ना अर्थिप्रत्यर्थिमोदिनः॥३०॥

ग्राम प्रमुख, न्यायाधीश, राजा और व्यापारी, राज्यकार्य में संलग्न, वादी द्वारा प्रेषित, कुल के विवाद में पारिवारिक जन भी न्यायोक्तगुणों से सम्पन्न, वादी तथा प्रतिवादी को प्रसन्न करने वाले साक्षी होते हैं।

रदितः स्मारितश्चैव यदृच्छागत एव च।
गुप्तोऽथ साक्षिसाक्षी च एवं पञ्चविधः परः॥३१॥

दूसरे (नैयोगिक साक्षी) रदित, स्मारित, यदृच्छागत, गुप्त और साक्षिसाक्षी इस प्रकार पाँच प्रकार के होते हैं।

स्वधर्मनिरताः शस्याः[1] कुलीनाश्च तपस्विनः।
दानिनो धनिनः पुत्रवन्तो बहुकुटुम्बिनः॥३२॥

निर्लोभाश्च विजातीया श्रुताध्ययनसंयुताः।
शुद्धवंशोद्भवा वृद्धाः कार्या वै साक्षिणस्त्रयः॥३३॥

अपने धर्म में निष्णात, प्रशंसनीय, कुलीन, तपस्वी, दानशील, धनवान्, पुत्रवान, बड़े परिवार वाला, निर्लोभी, विजातीय, शास्त्राध्ययनरत और शुद्धवंशोत्पन्न तीन वृद्धों को साक्षी बनाना चाहिए।

स्त्रीणां साक्ष्ये स्त्रियः कार्याः पुरुषाणां नरास्तथा।
परोपकारनिरताः शत्रुमित्रसमेक्षणाः॥३४॥

---

१. ससा भ १, भ २, प १, प २॥

परोपकार में कुशल, शत्रु और मित्र के प्रति समदृष्टि रखने वाली, स्त्रियों को स्त्रियों से और पुरुषों को पुरुषों से सम्बन्धित साक्ष्य में साक्षी बनाना चाहिए।

(वृ०) रदितादीनां स्वरूपमाह –

रदित आदि साक्षियों के स्वरूप का कथन –

अर्थिना स्वयमानीतो यः पत्रे प्राग् निवेश्यते।
स साक्षी रदितो ज्ञेयोऽरदितः पत्रकादृते।।३५।।

वह साक्षी जो वादी द्वारा स्वयं लाया गया है और पूर्व में (प्रथम) प्रतिवेदन पत्र में (साक्षी का नाम) सम्मिलित हो उसे रदित नाम का साक्षी कहा गया है और (प्रतिवेदन) पत्रक में (दिये गये नाम के) अतिरिक्त (बनाया गया साक्षी) अरदित कहा गया है।

कार्यं मुहुर्मुहुः पृष्टो कार्यसिद्ध्यर्थमेव च।
स्मार्यते चार्थिना यो वै स स्मारित इहोच्यते।।३६।।

जिसको बार-बार पूछकर (आग्रह कर) कार्य की सिद्धि के लिए साक्षी बनाया गया है और वादी द्वारा जिसको स्मरण कराया जाता है वह साक्षी 'स्मारित' कहा जाता है।

विवाददर्शनार्थं[1] यः स्वयं राज्यसभास्थले।
उपकारेच्छया प्राप्तो यदृच्छागत उच्यते।।३७।।

जो उपकार की इच्छा से स्वयं राजसभा में विवाद देखने के लिए आया हुआ है वह 'यदृच्छागत' साक्षी कहा जाता है।

प्रसङ्गादागतः साक्षी वा प्रयोजनतः स्वयम्।
प्रत्यर्थिवचनं श्रोतुमर्थिना स्थापितश्च यः।।३८।।

जो साक्षी, प्रसङ्गवश सुनने के लिए अथवा प्रयोजनवश स्वयं आ गया हो और प्रतिवादी की बातों को सुनने के लिए वादी द्वारा स्थापित किया गया हो वह वादी के कार्य को सिद्ध करने वाला 'गुप्तसाक्षी' है।

गुप्तसाक्षी स विज्ञेयोऽर्थिनः कार्यस्य सिद्धिदः।
साक्ष्युक्तश्रवणाज्जातस्फुर्तिरुत्तरदायकः ।।३९।।

साक्षिसाक्षी स विज्ञेयः साक्षिणां साक्ष्यदायकः।
इमे चैकादशविधाः साक्षिणः परिकीर्तिताः।।४०।।

---

१. दर्शितार्थं भ १, भ २, प १।।

साक्षी के वचनों को सुनकर जो स्फूर्तिपूर्वक उत्तर देने वाला है उसे 'साक्षिसाक्षी' जानना चाहिए क्योंकि वह साक्षियों की (बातें सुनकर) साक्ष्य देने वाला है। (उपरोक्त) ये ग्यारह प्रकार के साक्षी कहे गये हैं।

(वृ०) अत्र शुद्धवंशजा इत्यनेन मूर्धावशिष्टां बष्टादीनां न साक्षि- योग्यतेति सिद्धम् –

ऊपर शुद्धवंश में उत्पन्न साक्षियों का कथन किया गया है। अतः ऊपर वर्णित शुद्ध साक्षियों के अतिरिक्त शेष दासी पुत्रादि साक्ष्य के योग्य नहीं हैं यह फलित होता है –

इति संक्षेपतः प्रोक्तो निक्षेपविधिसङ्ग्रहः।
विस्तृतिश्चास्य विज्ञेया महार्हन्नीतिशास्त्रतः।।४१।।

इस प्रकार संक्षेप में निक्षेप विधि का कथन किया गया, इस विषय में विस्तार से बृहदर्हन्नीति से ज्ञात कर लेना चाहिये।

।। इति निक्षेपप्रकरणम् समाप्तम्।।

—o—

तृतीय अधिकार

३.११

अस्वामिविक्रयप्रकरणम्

श्रीमदर्हंतमानम्यानन्तं चानन्त[1]सौख्यदम्।
यथागमं वर्ण्यतेऽत्र विक्रयोऽस्वामिवस्तुनः।।१।।

अनन्त सुख प्रदान करने वाले श्रीमद् तीर्थङ्कर अनन्तनाथ की वन्दना कर स्वामी की आज्ञा के बिना वस्तुओं के विक्रय के सम्बन्ध में यहाँ आगम शास्त्र के अनुसार वर्णन किया जाता है।

(वृ०) पूर्वप्रकरणे निक्षेपो वर्णितो निक्षिप्तधनं च कोऽपि लोभी स्वाम्याज्ञामन्तरापि विक्रीणात्यतस्तद्वर्णनं क्रियते तत्र प्रथममस्वामि-विक्रयवरूपमाह –

पूर्व प्रकरण में निक्षेप का वर्णन किया गया, धरोहर रखे गये धन को कोई भी लोभी स्वामी की आज्ञा के बिना भी विक्रय करता है इसलिए उसका वर्णन किया जाता है। पहले बिना स्वामी के विक्रय के स्वरूप का कथन –

प्रच्छन्नं परकीयस्य नष्टनिक्षिप्तवस्तुनः।
विक्रयः स्वाम्यसत्त्वे यः स स्यादस्वामिविक्रयः।।२।।

चुराई हुई, निक्षिप्त (धरोहर के रूप में रखी गई) दूसरे की वस्तुओं का स्वामी की अनुपस्थिति में हुआ विक्रय अस्वामिविक्रय है।

(वृ०) ननु स्वाम्याज्ञान्तरा वस्तुविक्रेता कीदृशदण्डयोग्यः स्यादित्याह–

स्वामी की आज्ञा के विना वस्तु का विक्रय करने वाला किस प्रकार के दण्ड का अधिकारी है इसका कथन –

स्वाम्य[2]ज्ञातकृते कोऽपि विक्रीणात्यन्यवस्तु यः।
स दण्ड्यश्चौरवत्ततस्तं दापयेत्स्वामिनं नृपः।।३।।

---

१. सोख्यदं भ १।।
२. स्वाम्या० भ १, भ २।।

यदि कोई स्वामी के जाने बिना दूसरे की वस्तु विक्रय करता है तो वह चोर के समान दण्डनीय है, वह (विक्रय से प्राप्त) धन राजा स्वामी को दिलाये।

दायश्च विक्रयश्चापि स्वाम्यसत्त्वेऽन्यवस्तुनः।
कृतोऽप्यकृत एव स्याद्व्यवहारविनिर्णये॥४॥

व्यवहार शास्त्र का निश्चित नियम है कि स्वामी की अनुपस्थिति में देने अथवा विक्रय की क्रियान्वित प्रक्रिया को भी अकृत (न किये हुये) की भाँति जानना चाहिए।

(वृ०) ननु अल्पमूल्येन रहसि कालातिक्रमे रात्र्यादौ वा निर्धनान्महार्घ्यवस्तु गृह्णन् क्रेतापि दण्डनीयः स्यादित्याह –

एकान्त, अनुपयुक्त काल अथवा रात्रि आदि में निर्धन से कम मूल्य में बहुमूल्य वस्तु ग्रहण करने वाला क्रेता भी दण्डनीय है, इसका कथन –

दीनान्महार्घवस्तूनां क्रेताऽकाले रहस्यपि।
अल्पमूल्येन गृह्णन्वा दस्युवद्दण्डभाग् भवेत्॥५॥

गरीब व्यक्तियों की अतिमूल्यवान् वस्तुओं को कम मूल्य में कुसमय में या सुनसान स्थान में क्रय करने वाला व्यक्ति दस्यु की भाँति दण्ड का पात्र होता है।

(वृ०) ननु यदि धनी स्ववस्त्वन्यविक्रीतं क्रेतृहस्तगतं पश्येत् तदा किं कार्यमित्याह–

यदि धनवान् दूसरे को बेची गयी अपनी वस्तु को क्रय करने वाले के हाथ में देखे तो क्या करे, यह कथन –

लब्ध्वा स्वमन्यविक्रीतं क्रेतृहस्तस्थितं धनी।
तं ग्राहयेत्तलारक्षं स्वयमादाय वार्पयेत्॥६॥

स्वयं नहीं बल्कि दूसरे के द्वारा विक्रय की गई (अपनी) वस्तु क्रय करने वाले के हाथ में पाने पर धनी उसे तलारक्ष से पकड़वाये या स्वयं लेकर (तलारक्ष) को दे देवे।

नष्टं चापहृतं वस्तु मदीयमिति साधयेत्।
ततः क्रेतापि शुद्ध्यर्थं विक्रेतारं प्रदर्शयेत्॥७॥

खोई हुई और चुराई हुई वस्तु को कोई 'मेरी है' ऐसा प्रमाणित कर दे तो क्रय करने वाले को भी शुद्धि के लिए विक्रेता को दिखाना चाहिए।

ततो मूल्यं स आप्नोति शुद्ध्येच्चापि न संशयः।
यद्यशक्तस्तमानेतुं तदा साक्ष्यादिभिः क्रयम्॥८॥

दिव्येन वा शोधयित्वा वस्तु दत्वा गृहं व्रजेत्।
क्रेतान्यथा तु दण्ड्यः स्याद्गृह्णीयाद्वस्तु तद्धनी।।९।।

तत्पश्चात् वह (क्रेता विक्रेता से) मूल्य प्राप्त करता है और स्वयं को निर्दोष सिद्ध करता है इसमें कोई संशय नहीं है। यदि (मूल्य को) विक्रेता से वापस लेने में असमर्थ हो तो साक्षी आदि अथवा शपथ से पवित्र कर क्रय की गई वस्तु को स्वामी को सौंप कर अपने घर जाये। अन्यथा क्रेता दण्ड का पात्र है और वस्तु स्वामी को ग्रहण करनी चाहिए।

(वृ०) ननु वस्तुगवेषणानियुक्तेन वस्तुलाभे किं कर्त्तव्यमित्याह –

वस्तु की खोज हेतु नियुक्त व्यक्ति द्वारा वस्तु के प्राप्त हो जाने पर क्या करना चाहिए, यह कथन –

नष्टं चापहृतं वस्तु समासाद्य कथञ्चन।
स वस्तुचोरं राजानं समर्प्य स्वं निजं वदेत्।।१०।।

खोई और चुराई गई वस्तु को किसी प्रकार प्राप्त कर उस वस्तु के चोर को राजा को सौंपकर वस्तु को अपनी बताये।

(वृ०) यदि नो निवेदयेत् तर्हि सोऽपि नृपदण्ड्यः स्यादित्याह –

यदि राजा को सूचित नहीं करता है तो वह भी राजा द्वारा दण्डनीय है इसका निरूपण –

यस्माल्लब्धं हृतं नष्टं तद्वृत्तमनिवेद्य यः।
भूपं स्वयं च गृह्णाति दण्ड्यः षण्णिधिभिः पणैः।।११।।

जिसके पास से चोरी गई (एवं) खोई हुई वस्तु प्राप्त हो इस वृत्तान्त को जो राजा को न सूचित कर स्वयं (वस्तुओं को) ग्रहण कर लेता है तो उसे (वस्तु के मूल्य का) छः गुना दण्ड देना चाहिए।

(वृ०) ननु निःस्वामिकधने राजपुरुषहस्तगते का व्यवस्थेत्याह–

स्वामी रहित धन राजपुरुष को प्राप्त होने पर क्या व्यवस्था हो, यह कथन–

राजा निःस्वामिकमृक्थमात्र्यब्दं संनिधापयेत्।
स्वाम्याप्तं तत्र शक्तस्तत्परतस्तु नृपः प्रभुः।।१२।।

राजा स्वामिविहीन वस्तु को तीन वर्षों तक संरक्षण में रखे उसके स्वामी के मिलने पर वह (स्वामी) सक्षम है अर्थात् वस्तु को प्राप्त करने का अधिकारी है। उस (अवधि) के पश्चात् तो राजा ही स्वामी है।

वर्णितोऽयं समासेनऽस्वामिविक्रय एव च।
विशेषस्तु बृहच्छास्त्रात् ज्ञातव्यो धिषणान्वितैः।।१३।।

यह संक्षेप में ही वस्तु के स्वामी द्वारा नहीं (अन्य द्वारा) विक्रय का वर्णन किया गया बुद्धिमानों द्वारा (इस सम्बन्ध में) विशेष बृहत् शास्त्र (बृहदर्हन्नीति) से जानना चाहिए।

।। इति अस्वामिविक्रयप्रकरणम्।।

—o—

तृतीय अधिकार

३.१२

वाक्पारुष्यप्रकरणम्

श्रीमद्धर्मजिनं नत्वा सर्वकर्मविनाशकम्।
यन्नामस्मृतिमात्रेण सफलाश्च मनोरथाः।।१।।

सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट करने वाले तीर्थङ्कर श्री धर्मनाथ, जिनके नाम के स्मरण मात्र से मनोकामनायें सफल हो जाती हैं, का वन्दन कर (वाणी की कर्कशता का कथन करता हूँ)।

(वृ०) पूर्वप्रकरणेऽस्वामिविक्रयो वर्णितस्तत्र वाक्पारुष्यं भवति इति तद्वर्णनमत्र प्रतिपाद्यते –

पूर्व प्रकरण में स्वामी की आज्ञा के विना वस्तु-विक्रय का वर्णन किया गया, उसमें वचन की कठोरता होती है उसका वर्णन यहाँ प्रतिपादित किया जाता है –

येनोपयोगो जीवस्य शुद्धमार्गात्प्रणश्यति।
वाक्पारुष्यमिति प्रोक्तं तदहं वच्मि किञ्चन।।२।।

जिस (कर्कश वाणी) के प्रयोग से प्राणी का शुद्ध मार्ग नष्ट हो जाता है उसे वाक्पारुष्य कहा गया है उसके विषय में किञ्चित् कथन करता हूँ।

प्राणिपीडानिदानं यल्लोकेऽप्रीतिकरं घनम्।
सद्भिस्तत्प्राणनाशेऽपि न वाच्यं परुषं वचः।।३।।

जो (कर्कश वाणी) संसार में अत्यन्त अरुचिकर और प्राणियों की पीड़ा का कारणभूत है, प्राण सङ्कट में होने पर भी सज्जनों द्वारा कर्कश वाणी नहीं बोलनी चाहिए।

वाचा सत्यापि या लोके जीवानां दुःखदायिका।
सा ग्राह्यते न केनापि वनवासितपस्विना।।४।।

सत्य होते हुए भी जो वाणी संसार में प्राणियों को दुःख देने वाली है वह

किसी वनवासी तपस्वी के द्वारा भी स्वीकर करने योग्य नहीं है (तो सामान्य जनों का क्या कहना)।

ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्रा वदन्तः परुषं वचः।
नृपेणात्महितार्थं वै दण्ड्या वर्णानुसारतः।।५।।

कर्कश वचन बोलने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को राजा द्वारा अपने हित के लिए (उनके) वर्ण के अनुसार दण्डित किया जाना चाहिए।

द्विजोऽयं चौर इत्यु[१]क्त्वा व्याक्रोशं[२] क्षत्रियो यदि।
कुरुते भूपतिर्दण्डं देयात्तं मुद्रिकाशतैः।।६।।

'यह ब्राह्मण चोर है' इस प्रकार कहकर यदि क्षत्रिय निन्दा करता है तो राजा द्वारा उसे सौ मुद्राओं का दण्ड देना चाहिये।

वैश्याक्रोशे तदर्द्धं स्याच्छूद्राक्रोशे च विंशतिः।
क्षत्राक्रोशे तु क्षत्रस्य दण्डः [३]खाग्निमितैः पणैः।।७।।

यदि (क्षत्रिय) वैश्य की निन्दा करे तो उसे (सौ मुद्रा का) आधा अर्थात् पचास मुद्रा और शूद्र की निन्दा करने पर बीस मुद्रा और क्षत्रिय की निन्दा करे तो तीस मुद्रा से दण्ड दे।

ब्राह्मणेन द्विजाक्रोशे आक्रुष्टे क्षत्रियेऽपि च।
सम एवोभयत्रास्ति चत्वारिंशत्पणैर्दमः।।८।।

ब्राह्मण द्वारा ब्राह्मण की निन्दा करने और क्षत्रिय की निन्दा करने पर दोनों स्थितियों में समान ही चालीस पण (मुद्रा) से दण्डित करना चाहिए।

वैश्याक्रोशे तु विप्रस्य पणानां पञ्चविंशतिः।
शूद्राक्रोशे भवेत्तस्य दण्डस्तु दशभिः पणैः।।९।।

ब्राह्मण द्वारा वैश्य की निन्दा करने पर पच्चीस पणों का और शूद्र की निन्दा करने पर दस पणों का दण्ड है।

वैश्येन ब्राह्मणाक्रोशे[४] मुद्रासार्धशतैर्दमः।
क्षत्राक्रोशे तदर्द्धः स्याच्छूद्राक्रोशे ततोऽर्द्धकः।।१०।।

वैश्य द्वारा ब्राह्मण की निन्दा करने पर डेढ़ सौ मुद्रा (पण) दण्ड, क्षत्रिय की

---

१. ०त्युत्सा भ १, भ २, प १, प २।।
२. कोशे प १।।
३. स्वाग्निसितै : भ १, खाग्निसितैः भ २, प २।।
४. क्रोसे प १।।

निन्दा पर उसका आधा (पचहत्तर मुद्रा दण्ड) और शूद्र की निन्दा होने पर उस (पचहत्तर मुद्रा) का आधा साढ़े सैंतीस मुद्रा का दण्ड हो।

वैश्याक्रोशे तु वैश्यस्य पणैस्त्रिंशद्भिरीरितः।
शूद्रेण ब्राह्मणाक्रोशे दण्डः स्यात्ताडनादिभिः।।११।।

वैश्य द्वारा वैश्य की निन्दा करने पर तीस मुद्रा (पण) का दण्ड कहा गया है। शूद्र द्वारा ब्राह्मण की निन्दा करने पर ताडन(मारना, फटकारना) आदि द्वारा दण्ड देना चाहिए।

क्षत्राक्रोशे शतं सार्द्धं वैश्याक्रोशे[1] तदर्द्धकम्।
शूद्रेण शूद्राक्रोशे तु पणानां पञ्चविंशतिः।।१२।।

शूद्र द्वारा क्षत्रिय की निन्दा पर एक सौ पचास, वैश्य की निन्दा पर उसका आधा (पचहत्तर) और शूद्र की निन्दा करने पर पच्चीस मुद्राओं (पणों) का (दण्ड हो)।

जातिदोषं वदेन्मिथ्या ब्राह्मणे क्षत्रिये विशि।
स तु दण्डमवाप्नोति वेदाग्निद्विपणैः क्रमात्।।१३।।

(यदि कोई) ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के विषय में असत्य जाति दोष का कथन करे तो उस मनुष्य को अनुक्रम से ब्राह्मण (के विषय में चार, क्षत्रिय के विषय में तीन और वैश्य के विषय में) दो मुद्रा से दण्डित करे।

धर्मार्थमुपदेशं हि दातुं यस्याधिकारिता।
तामुल्लंघ्योद्यतस्योपदेशे दण्डः शतैर्भवेत्।।१४।।

धर्म-अर्थ का उपेदश करने का जिसका अधिकार है उसका उल्लङ्घन कर उपदेश हेतु तत्पर (अनधिकारिक व्यक्ति) को सौ पणों का दण्ड हो।

तिथिवारादिकं सर्वश्रुतं जातिं व्रतं मदात्।
अन्यथा वदतो दण्डो जिह्वाछेदसमो भवेत्।।१५।।

मद के कारण तिथि, वार आदि सभी शास्त्र, जाति और व्रत का परिवर्तन करने वाले या मिथ्या कथन करने वाले को जिह्वा काटने जैसा दण्ड हो।

काणान्धखञ्जकुष्ठ्यादीन् दोषदुष्टान् तथैवम्।
यो ब्रूते सदोषवाचा स स्याद्दण्ड्यः पणैस्त्रिभिः।।१६।।

जो काने, अन्धे, लंगड़े, कुष्ठ रोगी आदि दोष से दूषित व्यक्तियों को उसी

---

१. ०शेन तर्द्धकम् भ १, प १, प २, शेर्न तर्द्धकम् भ २।।

प्रकार (अर्थात् काने को काना, अन्धे को अन्धा) दोष युक्त वचन बोलता है वह तीन मुद्राओं (पणों) से दण्डित करने योग्य है।

आचार्यं पितरं बन्धुं मातरं वनितां गुरुम्।
विपरीतं वदन् दण्ड्यः पणैर्युग्मशतोन्मितैः।।१७।।

आचार्य, पिता, बन्धु, माता, स्त्री तथा गुरु को विपरीत वचन बोलने वाला दो सौ मुद्राओं (पणों) के बराबर दण्ड के योग्य है।

इत्थं समासतः प्रोक्तं वाक्पारुष्यं यतो जनाः।
प्रवदेयुर्हितं तथ्यं वाक्यं प्राणिप्रियं मितम्।।१८।।

इस प्रकार संक्षेप में वाक्पारुष्य (वचन की कर्कशता) का कथन किया गया जिससे लोग हितकारी, सत्य, लोगों को प्रिय लगने वाले तथा अल्प वचन बोलें।

।। इति वाक्पारुष्यप्रकरणम् समाप्तम्।।

—o—

तृतीय अधिकार

३.१३

समयव्यतिक्रान्तिप्रकरणम्

प्रणिपत्य मुदा शान्तिं शान्तं शान्ताशिवं शिवम्।
निगद्यतेऽत्र समयव्यतिक्रान्तिर्नृसंविदे।।१।।

अकल्याण का शमन करने वाले शिव – मोक्ष रूप तथा शान्त शान्तिनाथ को हर्षपूर्वक वन्दन कर मनुष्यों के ज्ञान हेतु यहाँ समयव्यतिक्रान्ति का लक्षण कहा जाता है।

(वृ०) पूर्वप्रकरणे वाक्पारुष्यमुक्तं सति तस्मिन् क्रोधाद्यावेशवशेन समयव्यतिक्रान्तिरपि सम्भवत्यतस्तत्स्वरूपमुच्यते –

पूर्व प्रकरण में वाणी की कठोरता का वर्णन किया गया उसमें क्रोध आदि आवेश के वश नियम का अतिक्रमण भी सम्भव है अतः उस (समयव्यतिक्रान्ति) का स्वरूप वर्णित किया जाता है –

स्थितिर्हि नैगमादीनां समय इति कथ्यते।
तस्य चोल्लङ्घनं ज्ञेया व्यतिक्रान्तिर्विवादभूः।।२।।

नैगम–व्यापारियों आदि द्वारा निश्चित नियम समय कहे जाते हैं। उस (समय) का उल्लङ्घन जो विवाद का मूल है, उसे व्यतिक्रान्ति जानना चाहिए।

सदा सामयिकं[१] धर्मं स्वधर्ममपरित्यजन्।
पालयेदतियत्नेन भूपोऽन्योऽपि च मानवः।।३।।

राजा एवं अन्य मनुष्यों को भी अपने धर्म का त्याग न करते हुए समय धर्म अर्थात् परम्परागत नियम का पालन करना चाहिए।

समुदायस्य राज्ञां च धर्मः सामयिकः[२] स्मृतः।
तमतिक्रमतो दण्डो व्यवहारपदे भवेत्।।४।।

---

१. सामायिकम् भ १, भ २, प १, प २।।

२. सामायिकः भ १, भ २, प १, प २।।

समुदाय तथा राजा का धर्म सामयिक धर्म कहा जाता है, उसका उल्लङ्घन करने वाला व्यवहार मार्ग में दण्ड का भागी होता है।

तथाहि–

साधारणं च यद्द्रव्यं तद्धरेल्लङ्घयेत्पुनः।
गणभूपस्थितिं तं च सर्वं हृत्वा प्रवासयेत्।।५।।

साधारण (ग्रामादि सार्वजनिक) धन का जो मनुष्य हरण करे और पुनः गण (पञ्च) तथा राजा के निर्णय का उल्लङ्घन करे तो उससे सर्वस्व हरण कर राज्य से निर्वासित कर देना चाहिये।

(वृ०) साधारणम् ग्रामादिजनसमुदायद्रव्यं योऽपहरति गणस्थितिं राजस्थितिं च योऽतिक्रामति तस्य सर्वस्वमपहृत्य राजादेशान्निर्वासयेत्।

साधारण द्रव्य अर्थात् ग्रामादि जन समुदाय का धन जो चुराता है, पञ्चों और राजा द्वारा निश्चित नियमों या निर्णय का उल्लङ्घन करता है तो राजा को उसका सर्वस्व हरण कर राज्य से निर्वासित कर देना चाहिये।

(वृ०) अथ समूहे हितवादिवचनं सर्वैरङ्गीकरणीयमन्यथादण्डः स्यादित्याह–

समूह अर्थात् पञ्चों के हितवादी वचनों को सभी मनुष्यों को स्वीकार करना चाहिए, ऐसा न करने पर दण्ड देना चाहिय, यह कथन –

हितवादिवचो मान्यं समूहे तत्स्थितैः परैः।
विपरीतो हि दण्डचः स्याज्जघन्येन दमेन च।।६।।

समूह या पञ्च-समिति में स्थित सदस्यों के हितवादी वचनों को दूसरे मनुष्यों को स्वीकार करना चाहिए। इसके विपरीत (न मानने वालों को) अधम दण्ड से दण्डित करना चाहिये।

(वृ०) यदुक्तं बृहदर्हन्नीतौ –

जैसा कि बृहदर्हन्नीति में कहा गया है–

हियवाइस्सय वयणं जो नहु मणइ तिदुवितव्यूहे सो होइ दण्डणिज्जोपढमदमेणं खु णिच्चंपि।१।

अथ समुदायकार्यकारिणां कथं सत्कारो विधेय इत्याह –

इसके अनन्तर समुदाय का कार्य करने वालों का किस प्रकार आदर करना चाहिये, यह कथन –

कार्यसिद्धिं विधायाशु गणकार्यसमागतान्।
सत्कार्य दानमानाद्यैर्महीनाथो विसर्जयेत्[१]।।७।।

१. साज्ज० प १।।

गण अर्थात् समुदाय के कार्य से (राजसभा में) आये हुए लोगों का शीघ्रता से कार्य सम्पन्न कर दान, सम्मान आदि द्वारा सत्कार कर राजा उन्हें भेजे।

(वृ०) अथ यो गणकार्यार्थं तत्समाजस्थैः प्रेरितः स्वयं वा राजपार्श्वे गतश्चेद्धिरण्यादिप्राप्नुयात्तदा तत् समाजमहाजनेभ्यो निवेदयेदन्यथा तस्य दण्डः स्यादित्याह—

जो व्यक्ति समुदाय के कार्य से समाज के लोगों द्वारा प्रेरित किये जाने पर अथवा स्वयं राजा के पास जाने पर स्वर्ण आदि प्राप्त करे तब समाज के प्रमुख व्यक्तियों को (इसके विषय में) सूचित करे नहीं तो उसे दण्ड मिले, इसका कथन—

स्वयं समर्पणीयं तद्गणकार्यगतेन यत्।
लब्धं सो ह्यन्यथा दण्डयस्ततो दशगुणेन वै।।८।।

समुदाय कार्य से जो (धन) प्राप्त हो उसे स्वयं (सभा को) अर्पित कर देना चाहिए। ऐसा न करने पर उसे निश्चित रूप से उस धन का दस गुना दण्ड देना चाहिए।

(वृ०) अथ समूहकार्यचिन्तकाः कीदृशाः कार्या इत्याह —

सार्वजनिक कार्य की देखरेख करने वाले किस प्रकार के नियुक्त करने चाहिये, इसका कथन —

धर्मिणः प्रतिभायुक्ताः शुचयो लोभवर्जिताः।
कार्यदक्षा निरालस्या[1] बहुशास्त्रविशारदाः।।९।।

कुलशुद्धाः सर्वमान्याः कार्यचिन्तासमाहिताः।
माननीयं वचस्तेषां सर्वैस्तद्व्यूहसंस्थितैः।।१०।।

धर्मनिष्ठ, प्रतिभाशाली, पवित्र, लोभरहित, कार्यकुशल, आलस्यरहित, बहुशास्त्र वेत्ता, शुद्ध कुल वाला, सर्वमान्य और कार्य की चिन्ता करने वाला व्यक्ति (सभा का कार्यभार ग्रहण करे।) उन सभी सभासदों को (गुणवान) कार्यभारी के वचनों का समादर करना चाहिए।

वणिजां श्रेणिपाषण्डिप्रभृतीनामयं विधिः।
नृपो रक्षेच्च तद्भेदं पूर्वरीतिं प्रचालयेत्।।११।।

व्यापारियों, शिल्पकार समूहों, पाखण्डियों आदि की यह विधि है। इसलिए राजा को उनके भेदों की रक्षा करनी चाहिए और पूर्व परम्परा का पालन करना चाहिए।

---

१. ०लभ्यां प १, ०लभ्याः भ १, भ २, प २।।

(वृ०) वणिजः प्रसिद्धाः शिल्पोपजीविनः श्रेणयः कार्पटिकादयश्च पाखण्डिनः प्रभृतिशाब्दादायुधीयादयोऽपि ग्राह्यास्तेषां भेदं राजा रक्षेत्पूर्वरीतिं प्रवर्तयेच्च।

वणिज अर्थात् प्रसिद्ध शिल्प से जीविका अर्जित करने वालों का सङ्घटन, तीर्थयात्री आदि पाखण्डी, प्रभृति शब्द से शस्त्र धारण करने वालों का भी ग्रहण करना चाहिये। उनके भेदों की राजा रक्षा करे और पूर्व परम्परा का पालन करे।

एवं प्रोक्तात्र समयव्यतिक्रान्तिः समासतः।
विशेषस्तु जनैर्ज्ञेयो विशेषाच्छास्त्रसागरात्।।१२।।

इस प्रकार समय-व्यतिक्रान्ति (नियम-उल्लङ्घन) संक्षेप में यहाँ वर्णित किया गया। इस विषय में विशेष शास्त्र रूपी समुद्र (बृहदर्हन्नीति) से जानना चाहिए।

।। इति समयव्यतिक्रान्तिप्रकरणम् सम्पूर्णम्।।

—o—

तृतीय अधिकार

३.१४

स्त्रीग्रहप्रकरणम्

नत्वा श्रीकुन्थुतीर्थेशं स्वान्तध्वान्तनिवारकम्।
परस्त्र्याकर्षणाख्योऽयं विवादो वर्ण्यतेऽधुना।।१।।

अन्तस् अन्धकार को दूर करने वाले तीर्थङ्कर श्री कुन्थुनाथ का वन्दन कर अब परस्त्री आकर्षण शीर्षक इस प्रकरण का वर्णन किया जाता है।

(वृ०) पूर्वस्मिन् प्रकरणे समयव्यतिक्रान्तिः प्ररूपिता तत्सत्त्वे स्त्रीग्रहादयोऽपि दोषाः प्रादुर्भवन्ति इत्यत्र तावत् स्त्रीग्रहदोषो व्याख्यायते–

इस पूर्व प्रकरण में समयव्यतिक्रान्ति का निरूपण किया गया उसमें स्त्रीग्रह आदि दोष उत्पन्न होते हैं इसलिए यहाँ स्त्रीग्रहदोष का व्याख्यान किया जाता है–

पराङ्गनासमासक्तं न रुन्ध्याच्चेन्नरं नृपः।
महत्पापविभागो स्याद्राष्ट्रनाशो भवेत्पुनः।।२।।

परस्त्री में आसक्त पुरुष को यदि राजा नहीं रोकता है तो वह बड़े पाप का भागी होता है और राष्ट्र का विनाश होता है।

सन्ततिर्यत्प्रसङ्गेन जायते वर्णसङ्करा।[1]
तेन वर्णविनाशः स्यात्तन्नाशे धर्मसंक्षयः।।३।।

क्योंकि (परस्त्री आसक्ति के) प्रसङ्ग से सन्तान वर्णसङ्कर उत्पन्न होती है, उससे वर्ण (धर्म) का नाश होता है, उस (वर्ण) धर्म का नाश होने पर (मूल) धर्म का नाश होता है।

पराङ्गनाभिः संलापं यः कुर्याद्रहसि स्थितः।
स दण्डयो भूभुजा तूर्णमावेश्यस्तस्करालये।।४।।

जो (पुरुष) एकान्त में स्थित होकर परायी स्त्रियों के साथ अन्तरङ्ग वार्तालाप करे वह बन्दीगृह में डालकर राजा द्वारा शीघ्र दण्डित करने योग्य है।

---
१. वर्णशङ्करा प १, प २।।

अदृष्टपूर्वस्त्रीभिर्यो राजाध्वनि च संलपेत्।
केनापि हेतुना दण्ड्यो न स्यान्नो तद्व्यतिक्रमः।।५।।

जो पुरुष पहले न देखी गई स्त्रियों के साथ राजमार्ग में किसी प्रयोजनवश वार्तालाप करे तो वह दण्डित करने योग्य नहीं है, यह उल्लङ्घन नहीं है।

तीर्थे कूपे वने स्थाने विजनेऽभिलपेन्नरो।
अरण्ये च सर्वथा दण्ड्यः परिणामाश्रयो विधिः।।६।।

(यदि कोई) पुरुष तीर्थ, कूप, वन, निर्जन स्थान और जङ्गल में (परायी स्त्री से) वार्तालाप करे तो (वह पुरुष) सर्वथा दण्डनीय है क्योंकि नियम परिणाम के आश्रित होते हैं।

एकासत्राशनं देहे गन्धलेपनमम्बुना।
केली रहःसंलपनं तथा भूषणवाससाम्।।७।।

परिधानं स्वहस्तेनान्योऽन्यं स्पर्शनचुम्बने।
सह खट्वासनं चैतदुभयोर्दण्डकारणम्।।८।।

परायी स्त्री के साथ एक आसन पर भोजन, शरीर पर सुगन्धित (द्रव्य का) लेप करना, जल क्रीड़ा, एकान्त में अन्तरङ्ग वार्तालाप तथा अपने हाथ से आभूषण, वस्त्र और अधोवस्त्र पहनाना, परस्पर स्पर्श एवं चुम्बन करना और एक साथ खाट पर बैठना दोनों (पुरुष एवं स्त्री) के दण्ड का कारण है।

वर्णत्रयेषु यः कश्चित् सेवेत् ब्राह्मणीं यदि।
छित्वा लिङ्गं महीपस्तं देशान्निर्वासयेत्त्वरम्।।९।।

ब्राह्मणीमपि कृष्णास्यां कारयित्वा च भ्रामयेत्।
पुरे स्वानुचरैर्भूपः पुनर्निष्कासयेद्बहिः।।१०।।

तीनों वर्णों (क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) में से कोई (पुरुष) यदि ब्राह्मणी का भोग करे तो राजा द्वारा (उसका) लिङ्ग कटवाकर शीघ्र उसे देश से निर्वासित करना चाहिये। ब्राह्मणी को भी मुख में कालिख लगवाकर अपने भृत्यों से नगर में घुमाना चाहिये और पुनः (देश से) बाहर निष्कासित करना चाहिये।

ब्राह्मणो[१] यदि सेवेत क्षत्रियां भूमिपस्तदा।
ज्ञात्वा चरित्रं तद्द्रुतैरुभौ निष्कासयेत्पुरात्।।११।।

यदि ब्राह्मण क्षत्रिय स्त्री के साथ भोग करे तो राजा द्वारा उसके चरित्र को जानकर दोनों को शीघ्र नगर से निष्कासित करना चाहिये।

---

१. ब्राह्मणो भ १, भ २, प १।।

बन्दिचारणशैलूषा दीक्षिताः कारवस्तथा।
ये सज्जयन्ति स्वा नार्यस्तत्स्त्रीभिर्भाषणं नराः।।१२।।

कुर्वन्तो न निवार्याः स्युः राजलोकनरैः कदा।
प्रायशो वृत्तिरेतेषां स्त्र्यधीना प्रथिता भुवि।।१३।।

बन्दी, चारण, भाट, दीक्षित तथा कलाकार जो अपनी पत्नियों को सज्जित कर रखते हैं, उन स्त्रियों से वार्तालाप करते हुए पुरुषों को राजपुरुषों द्वारा कभी नहीं रोकना चाहिए क्योंकि प्रायः इन लोगों की जीविका ही स्त्रियों के अधीन है – यह जगत प्रसिद्ध है।

कन्याङ्गे विकृतिं या स्त्री कुर्यात्तच्छीर्षमुण्डनम्।
कारयित्वाङ्गुलि[१]च्छेदं चैनां निष्कासयेत् पुरात्।।१४।।

जो स्त्री कन्या के अङ्ग में विकृति करे उसका सिर मुड़ाकर और अङ्गुलि काटकर उसे नगर से निष्कासित करना चाहिए।

स्ववंशगुणदर्पेण भर्तारं या न मन्यते।
तां भिन्नां स्थापयेद्भूपो न पुनर्दर्शयेत्पतिम्।।१५।।

जो स्त्री अपने (पितृ) कुल की श्रेष्ठता के कारण पति को सम्मान नहीं देती है उस (स्त्री) को राजा अलग रखवा दे और पुनः पति (मुख) को न दिखावे।

परस्त्रीं सेवते वर्षाद[२]ज्ञातो यां च भूमिभृत्।
तदुदन्तं चरैर्ज्ञात्वा दण्डयित्वा विवासयेत्[२]।।१६।।

(कोई पुरुष यदि) वर्षपर्यन्त परायी स्त्री का भोग करता है और राजा को ज्ञात नहीं होता तो उसका चरित्र अपने गुप्तचरों द्वारा ज्ञात कर (राजा) उसे दण्डित करना चाहिये और नगर से निष्कासित कर देना चाहिये।

क्षत्रब्राह्मणवैश्यानां स्त्रीं वा कन्यां निषेवयेत्[३]।
शतैर्दमनमाद्ये तु लिङ्गभेदः परे स्मृतः।।१७।।

(यदि कोई पुरुष) क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्य की स्त्री अथवा कन्या के साथ भोग करे तो प्रथम (स्थिति) में सौ (मुद्रा) दण्ड और दूसरी (स्थिति में) लिङ्गच्छेदन (का दण्ड) कहा गया है।

दण्ड्यो द्विजो द्विजां गच्छन् सहस्ररजतैर्भवेत्।
क्षत्रियः क्षत्रियां गच्छन् दण्ड्यो युग्मसहस्रकैः।।१८।।

---

१. ०ङ्गुलीछेदं प १, प २।।
२. तर्षाद प १, प २।।
३. निषेवये भ १, भ २, प १, प २।।

(परायी) ब्राह्मणी के साथ (व्यभिचार) करता हुआ ब्राह्मण हजार रजत (मुद्राओं) से दण्डनीय है। (परायी) क्षत्राणी के साथ (व्यभिचार) करता हुआ क्षत्रिय दो हजार (रजत मुद्राओं) से दण्डनीय है।

सेवेत वैश्यां चेद्वैश्यो दण्ड्यस्तुर्यशतप्रमैः।
शूद्रस्तु शूद्रासेवी चेन्निष्कास्यो[१] भूभुजा पुरात्॥१९॥

यदि वणिक् (परायी) स्त्री के साथ भोग करे तो (वह) सौ मुद्रा प्रमाण से शीघ्र दण्डनीय है। शूद्र (स्त्री) का भोग करने वाला शूद्र राजा द्वारा नगर से निष्कासित करने योग्य है।

शूद्रासेवकवैश्योऽपि दण्ड्यः स्याच्छतराजतैः।
द्विजः शूद्रानुचारी चेन्निर्वास्यो नगराद्बहिः॥२०॥

शूद्र का सेवन करने वाला वैश्य भी सौ रजतमुद्राओं से दण्डनीय है। शूद्रा का सेवन करने वाला ब्राह्मण नगर से बाहर निष्कासित करने योग्य है।

चतुर्वर्णजनोद्भूतमपराधं समीक्ष्य चेद्।
भूपो न वारयेद्दण्डतर्जनाताडनादिभिः॥२१॥

तदा सर्वापराधानां नृपः स्वामी भवेत्खलु।
ततो राष्ट्रेऽतिदुःखं स्यादीतिदुर्भिक्षमृत्युजम्॥२२॥

चारों वर्ण के लोगों द्वारा कृत अपराधों की समीक्षा कर यदि राजा दण्ड, तिरस्कार, ताड़ना आदि द्वारा (उन्हें) रोके नहीं तो उन सब अपराधों का स्वामी (कर्त्ता) राजा ही होगा। तब देश में ईति (छः प्रकार की), दुर्भिक्ष, मारी से अत्यन्त दुःख उत्पन्न होगा।

दुरिताकराशुचिगृहं संप्रेक्ष्य रमातनुं सुधीः कोऽत्र।
प्रीतिं कुरुते बीभत्साकर[२]मशङ्करमत्यन्तदुर्गन्धम्॥२३॥

सङ्कट की खान, अपवित्रता का घर, वीभत्सता की खान, अकल्याण- कारी और अतिदुर्गन्धयुक्त, स्त्री-शरीर को देखकर कौन बुद्धिमान् इससे प्रेम करेगा।

सततमुदरं दृष्ट्वा कृमिमूत्रपुरीषपात्राबलानाम्।
विष्ठाघटमिव निन्द्यं त्यजत शरीरं विबुधोऽवश्यम्॥२४॥

निरन्तर कीड़ा, मूत्र, विष्ठा पात्र रूप स्त्रियों के उदर को देखकर बुद्धिमान् लोग मल के घड़े रूपी निन्दनीय शरीर का त्याग करें।

---

१. चेन्निकाश्यो प १॥
२. ०मसङ्करमसन्त० प १, ०साकरमसन्त० प २॥

सर्वथा स्वहितोद्युक्तैः सदा त्याज्याः परस्त्रियः।
पश्येतस्याः प्रभावेण प्रणष्टा रावणादयः।।२५।।

सब प्रकार से अपना हित चाहने वालों द्वारा परायी स्त्रियाँ सदा त्याग के योग्य हैं। (यह) देखना चाहिये इस (स्त्री) के प्रभाव से रावण आदि नष्ट हो गये।

इत्येवं वर्णिता नारीग्रहचिन्ता समासतः।
विशेषो बृहदर्हन्नीतिशास्त्राद्बोध्य आदरात्।।२६।।

इस प्रकार संक्षेप में (परायी) स्त्रीग्रहण विचार संक्षेप में वर्णित किया गया। विशेष बृहदर्हन्नीति से आदरपूर्वक जानना चाहिए।

।। इति स्त्रीग्रहप्रकरणम् सम्पूर्णम्।।

—o—

तृतीय अधिकार

३.१५

द्यूतविधिप्रकरणम्

नत्वारनाथं श्रीयुक्तमन्तरङ्गारिभेदकम्।
व्यवहारपदं द्यूतमभिधास्ये यथागमम्॥१॥

ऐश्वर्यवान, आन्तरिक शत्रुओं का नाश करने वाले तीर्थङ्कर अरनाथ की वन्दना कर शास्त्रानुसार व्यवहार मार्ग द्यूत का प्रतिपादन करूँगा।

(वृ०) पूर्वप्रकरणे स्त्रीग्रहो वर्णितस्ततो व्यसनसाहचर्याद् द्यूतमधुनाभिधीयते तत्र तावत् द्यूतस्वरूपमाह –

पूर्व प्रकरण में स्त्रीग्रह दोष वर्णित है उस व्यसन के साथ द्यूत का साहचर्य होने से अब द्यूत का वर्णन किया जाता है। इसलिए द्यूत के स्वरूप का कथन –

द्विपदापच्चतुष्पादखचरैर्देवनं हि यत्।
पणादि द्रव्यमुद्दिश्य तद् द्यूतमिति कथ्यते॥२॥

द्विपद (मल्ल आदि), अपद (पासा आदि), चतुष्पद (मेष, अश्व आदि), पक्षियों (मुर्गे, कबूतर आदि) के दाव से कौड़ियों या सिक्के (पण) आदि धन को लक्ष्य कर जो (क्रीड़ा होती है) उसे द्यूत कहा जाता है।

(वृ०) तत्र द्विपदा मल्लादयः अपदाः पाशकबध्नादयश्चतुष्पदा मेषहयादयः खचराः पक्षिणः कुक्कुटतित्तिरपारावताद्यास्तैर्द्रव्यादिपणनिबन्धेन क्रीडा द्यूतम्॥ अत्रैवाभिधानव्यपदेशविषयविशेषमाह –

उसमें दो पैर वाले मल्ल आदि, पैर रहित पाँसा, सीसा आदि, चार पैर वाले भेड़, घोड़े आदि, खचर अर्थात् मुर्गे, तित्तिर, कबूतर आदि पक्षियों के दाव से द्रव्य आदि धन से क्रीड़ा द्यूत है। यहाँ नाम-भेद के कथन से विषय-विशेष का कथन–

अचेतनैः क्रीडनं यत्तद्द्यूतमिति कथ्यते।
सचेतनैस्तु या क्रीडा सा समाह्वयसंज्ञिका॥३॥

जड़ पदार्थों के द्वारा जो क्रीड़ा है उसे द्यूत कहा जाता है। जो क्रीड़ा सचेतन प्राणियों के माध्यम से होती है वह 'समाह्वय' अर्थात् जानवरों की लड़ाई पर शर्त लगाना, संज्ञा वाली है।

(वृ०) इयं द्यूतक्रीडा राजनियमितसभिकस्थाने भवति इति सभिक आगतचतुवर्णीयजनान् मिष्टेष्टवचनैर्विश्वासयन्नशनादिभिश्च सन्तोषयन् रमयते सप्रतिबन्धकतयाप्रतिबन्धकतया वा त्वं शतमुद्रा जेष्यसि चेद् विंशतिमुद्रा अहं ग्रहीष्यामि इति सप्रतिबन्धकता अथवा यदा त्वं शतमुद्रा जेष्यसि तदा राजनियमितमुद्रापञ्चकं ग्रहीष्यामि इति अप्रतिबन्धकक्रीडा।

यह द्यूतक्रीड़ा राजा द्वारा निर्धारित सभास्थान में होती है। सभास्थान में आये हुए चारों वर्णों के लोगों को मधुर और प्रिय वचनों से विश्वस्त करते हुए, भोजन आदि से सन्तुष्ट करते हुए प्रतिबन्ध सहित या बिना प्रतिबन्ध के द्यूत खिलाया जाता है। यदि तुम सौ मुद्रा जीतोगे तो बीस मुद्रा मैं लूँगा इस प्रकार प्रतिबन्ध पूर्वक अथवा जब तुम सौ मुद्रा जीतोगे तब राजा द्वारा निश्चित पाँच मुद्रा ग्रहण करूँगा इस प्रकार प्रतिबन्ध रहित क्रीड़ा।

सभा च राजानुमत्या स्वद्रव्यनिर्मापितद्यूतस्थानम्।

राजा की अनुमति से अपने (व्यक्तिगत) धन से निर्माण किया गया द्यूत-क्रीड़ा स्थली सभा कही जाती है।

राजद्रव्य निर्मापितस्थानं वा सा विद्यते यस्य स सभिकः।

राजकीय धन से निर्माण कराई गई द्यूत-क्रीड़ा स्थली जिसकी होती है वह सभिक होता है।

तदेव दर्शयति –

वही वर्णित किया जाता है –

स्वकीये राजकीये वा स्थाने आगतमानवान्।
क्रीडयेदशनाद्यैश्च तोषयन्नभितो मुहुः।।४।।

अपने अथवा राजकीय स्थान में आये हुए व्यक्तियों को भोजन आदि से बार-बार सन्तुष्ट करते हुए द्यूत-क्रीड़ा करनी चाहिए।

अन्योऽन्यकलहादेश्च रक्षयन् जितमानवान्।
राज्यांशं च समुद्धृत्य स्वांशमादाय सर्वशः।।५।।

राज्यांशं तु प्रतिदिनं देयाद्राज्ये निरालसः।
स्वांशेन स्वं कुटुम्बं[1] हि पालयेन्निरुपद्रवम्।।६।।

---

१. स्वकुटुंवं भ १, भ २, प २।।

(द्यूतक्रीड़ा स्थल पर) जीतने वाले व्यक्तियों (जुआरियों) की परस्पर कलह आदि से रक्षा करनी चाहिए और पूर्ण रूप से राज्य का और अपना भाग निकाल कर, बिना आलस्य के राज्यांश को प्रतिदिन राज्य (राजकोष) में देना चाहिए और अपने भाग से अपने परिवार का निर्विघ्न पालन करना चाहिए।

जिते पराजितेऽन्योऽन्यं क्लेशो यदि भवेत्सभेट्।
तद्विमृश्य जितं द्रव्यं दापयेच्च पराजितात्॥७॥
यदि स्वं दापनेऽशक्तस्तदा भूपं निवेद्य सः।
दापयेन्नियतं रिक्थं नो हानिः स्याद्यतः पुनः॥८॥

(द्यूत क्रीड़ा में) जीतने और हारने पर यदि सभा में आपस में विवाद हो तो विमर्श कर हारे हुए जुआरी से जीता हुआ धन (जीतने वाले को) दिलवाना चाहिए। यदि धन दिलवाने में असमर्थ हो तब राजा से निवेदन कर वह नियत भाग (जीतने वाले को) दिलवाना चाहिए जिससे पुनः (द्यूत स्थल पर) हानि न हो।

राज्यस्थाने सति द्यूते कैतवेभ्यश्च रक्षणम्।
भवत्यतः सभास्थाने द्यूतक्रीडा सदोचिता॥९॥

राजकीय स्थल पर द्यूत (क्रीड़ा) होने पर कपटियों से सुरक्षा रहती है अतः राजकीय सभा स्थल में द्यूत क्रीड़ा सदैव उचित होती है।

प्रच्छन्नं स्वगृहे द्यूतं ये दीव्यन्ति सभेट् ततः।
राज्यांशं द्विगुणं गृह्णीयात्स्वांशं निर्णये सति॥१०॥

जब छिपे रूप से अपने घर में द्यूत खेलते हैं तब अपने भाग का निर्णय हो जाने पर राजा का भाग दो गुना लेना चाहिए।

एषा द्यूतक्रिया लोके सर्वव्यसननायिका।
श्वभ्रतिर्यग्गतेर्दूती स्मार्या शिष्टजनैर्न हि॥११॥

यह द्यूत क्रीड़ा संसार में सभी व्यसनों की नायिका है। शिष्ट लोगों द्वारा इसे नरक और तिर्यञ्चगति की दूती के रूप में स्मरण करना चाहिए। निश्चित रूप से व्यवहार में नहीं लाना चाहिए।

इत्थं समासतः प्रोक्ता द्यूतव्यवहृतिर्मया।
संसारस्योपकाराय भाग्याधिक्यप्रकाशिका॥१२॥

इस प्रकार संसार के उपकार के लिए भाग्य के आधिक्य को प्रकाशित करने वाली, द्यूत-क्रीड़ा का व्यावहारिक रूप मेरे द्वारा संक्षेप में वर्णित किया गया।

॥ इति द्यूतविधिप्रकरणम्॥

—०—

तृतीय अधिकार

३.१६

स्तैन्यप्रकरणम्

प्रणम्य श्रीयुतं मल्लिं मल्लं मोहादिताडने।
स्तैन्यप्रकरणं वक्ष्ये समुद्धृत्य श्रुतादहम्।।१।।

मोहादि (कषायों) के नष्ट करने में मल्ल रूप श्रीयुत् (तीर्थङ्कर) मल्लिनाथ का वन्दन कर आगम या शास्त्र से उद्धृत कर मैं स्तैन्य प्रकरण का वर्णन करूँगा।

(वृ०) पूर्वप्रकरणे द्यूतवर्णनोक्ता तत्र हारितश्चौर्याचरणं कोऽपि करोत्यतो व्यसनत्व साधर्म्यादधुना स्तैन्यवर्णनाधिक्रियते –

पूर्व प्रकरण में द्यूत का वर्णन किया गया, द्यूत में हारा हुआ कोई भी चोरी का आचरण करता है। इसलिए व्यसन की समानता से अब स्तैन्य-वर्णन का अधिकार कहा जाता है –

नृपतेः परमो धर्मः स्वप्रजापालनं सदा।
[1]स्तैन्यादिभ्यो यतः कीर्तिर्विस्तृता स्याद्दिगन्तरे।।२।।

चोरी आदि (दुष्कृत्यों) से सदा अपनी प्रजा का पालन करना परम कर्त्तव्य है जिससे दिशाओं में यश फैले।

लोकानां संसृतौ तुल्योऽभयदानेन नो वृषः।
तस्माज्जनैः सदा[2] यत्नोऽभये कार्यः समधिया[3]।।३।।

इस जगत में (जीवों को) शरण या रक्षा देने के समान कोई श्रेष्ठ (दान) नहीं है इस कारण लोगों को सदा समानता की बुद्धि से अभय देने का कार्य करना चाहिए।

---

१. पुरास्तै० भ १, भ २, प १, प २।।
२. ०स्तदाय० भ १, भ २, प १, प २।।
३. समधिवा भ १, भ २, प १, प २।।

प्रजास्वास्थ्ये नृपः स्वस्थस्तद्दुःखे दुःखितो नृपः।
तस्माद्यत्नं प्रजास्वास्थ्येऽहर्निशं कुरुते नृपः।।४।।

प्रजा के सुखी रहने पर राजा सुखी, उस (प्रजा) के दुःखी रहने पर राजा दुःखी, इस कारण राजा प्रजा के स्वास्थ्य के लिए दिन-रात प्रयत्न करे।

प्रजादानार्चनादीनां षष्ठांशं[1] लभते नृपः।
पुण्यात्ततो[2] ने[3]तिभयं कोषवृद्धिश्च जायते।।५।।
शिष्टानां पालनं कुर्वन् दुष्टानां निग्रहं पुनः।
पूज्यते भुवने सर्वैः सुरासुरनृयोनिभिः[4]।।६।।

प्रजा (द्वारा कृत) दान, पूजा आदि का छठाँ भाग राजा ग्रहण करता है। उस पुण्य से राजा को ईति – महामारी का भय नहीं होता और कोष में वृद्धि होती है। राजा सज्जन पुरुषों का पालन करता हुआ एवं दुष्टों का निग्रह (दण्डित) करता हुआ देव, दानव और मनुष्य सभी योनि के लोगों द्वारा पूजा जाता है।

लोभतः करमादत्ते प्रजाभ्यो यो महीधनः।
क्षुद्रकर्मणि यो दण्डं लाति स नरकं व्रजेत्।।७।।
चौरान् धूर्तान्निगृह्णन् यो भूपः[5] सन्न्यायरीतितः।
रोधनेन हि बन्धेन[6] स वै स्वर्गमवाप्नुयात्।।८।।
प्रजोपरि सदा क्षान्तीरक्षणीया महीभुजा।
बालातुरातिवृद्धानां क्षन्तव्यं कठिनं वचः।।९।।

जो राजा प्रजा से लोभवश दण्ड ग्रहण करता है और छोटे (अपराध) कार्यों में जो प्रजा से दण्ड लेता है वह नरक जाता है। जो राजा चोरों और धूर्तों को पकड़ता हुआ उत्तम न्याय रीति से कैद और बन्धन द्वारा (दण्डित करता है) वह अवश्य स्वर्ग प्राप्त करता है। राजा द्वारा प्रजा पर सदा क्षमाभाव रखना चाहिए। बालक, रोगी और वृद्धों के कर्कश वचनों को राजा को सहना चाहिए।

(वृ०) अथ प्रस्तुतमाह –

अब प्रस्तुत विषय का निरूपण –

---

१. षष्टांशं भ १, भ २, प १, प २।।
२. पुण्यत भ १, भ २, प १, प २।।
३. ०तिभवंभ १, भ २, ०तिभवंको० प १, प २।।
४. सुरासुरनृपादिभिः प १।।
५. भूयः भ १, भ २, प १, प २।।
६. वंधेन सोवैस्वर्गम० भ १, भ २, प १।।

यो हरेत्कूपतो रज्जुं घटं वस्त्राणि स्तैन्यतः।
ताडयित्वा कशाभिस्तं यथावस्थं विवासयेत्।।१०।।

जो (पुरुष) कुँए पर से रज्जु, घड़ा, वस्त्र चुरा ले जाता है उसे कोड़ों से मारकर उसी अवस्था में ग्राम से (बाहर) निर्वासित कर देना चाहिये।

स्तैन्यात् धान्यं हरन् क्षेत्रात्स्तेनो दण्डमवाप्नुयात्।
स्तेयाद्दशगुणं भूपो देशान्निर्वासयेच्च तम्।।११।।

राजा को खेत में से चोरी से धान्य ले जाने वाले चोर से चुराई हुई (सामग्री) का दस गुना (दण्ड) प्राप्त करना चाहिये और उसे देश से निर्वासित कर देना चाहिये।

जानंस्तस्करवृत्तान्तं प्रजादुःखं च शक्तिमान्।
यः पश्यन् क्षमते भूपो ध्रुवं प्राप्नोति दुर्गतिम्।।१२।।

जो शक्तिशाली राजा चोरी की घटना और प्रजा के दुःख को जानते एवं देखते हुए क्षमा करता है वह निश्चित रूप से दुर्गति को प्राप्त करता है।

हिरण्यरजतादीनां भूषणानां[१] च वाससाम्।
हर्तुः प्रदापयेन्मूल्यं सर्वं तत्स्वामिने नृपः।।१३।।
तं पुनःस्थापयेद्बन्दिगृहे वर्षत्रया[२]वधि।
[३]लोप्त्रा दाने तु [४]चेदेकाब्दं यावत्तत्र संस्थितिः।।१४।।

राजा स्वर्ण, रजत आदि के आभूषणों तथा वस्त्रों के चोर से सम्पूर्ण मूल्य (लेकर) उस (वस्तु) के स्वामी को प्रदान करे और उस (चोर) को तीन वर्ष की अवधि तक कारागार में रखे। यदि चुराई हुई वस्तु (वह चोर) वापस कर देता है तो वहाँ (कारागार में) उसे एक वर्ष तक रखना चाहिए।

मानवानामर्भकस्य कन्याया हरणेऽपि च।
तथा[५]नुपमरत्नानां चौरो [६]बन्दिगृहं विशेत्।।१५।।
तत्र वर्षत्रयं स्थाप्यो मोचयेत्साक्षितस्तकम्।
पुनः स्तेयस्य करणे वर्षषट्कावधिं पुनः।।१६।।

---

१. भूषणानां भ १, भ २, प १, प २ में अनुपलब्ध।।
२. वर्षजया० भ १, भ २, प १, प २।।
३. लोप्त्र भ १, भ २, प १, लोत्प्र प २।।
४. वेदैकांक्ष्यावक्षत्रतत्स्थितिः भ १, भ २, प २, चेदैकां० प १।।
५. ०नुयम० भ २।।
६. वन्दिगृ० भ २, वन्दिग् प २।।

[1]निधापयेद्बन्दिगृहे [2]यत्र न स्याच्च दर्शनम्।
[3]अन्यस्य लेखनं कारयित्वा तं च विमोचयेत्।।१७।।

(राजा) मानवों के शिशु और कन्या तथा अनुपम रत्नों के चुराने पर चोर को बन्दीगृह में रखे, तीन वर्ष तक वहाँ (बन्दीगृह में) रखकर साक्षी के साथ मुक्त करना चाहिए। दुबारा चोरी करने पर पुनः उसे छः वर्ष तक बन्दीगृह में (इस प्रकार) रखना चाहिए जिससे वह कुछ देख न सके। (छः वर्ष बीत जाने पर) किसी दूसरे से लेख लिखाकर अर्थात् दूसरे के लिखित दायित्व पर उसे छोड़ना चाहिए।

शास्त्रौषधिगवाश्वानां हर्ता भूपेन पीड्यते।
गृहीत्वा तद्धनं तस्मात्स्थाप्यो कारागृहे पुनः।।१८।।

राजा द्वारा शास्त्र, औषधि, गाय और घोड़ों की चोरी करने वाले को चोरी गया वह धन उससे लेकर कारागार में बन्द कर देना चाहिये।

गुडाज्यक्षीरदध्नां च सिता[4]कर्पासभस्मनाम्।
लवणस्य मृदश्चैव मृद्भाण्डानां तथैव च।।१९।।
तैलमोदकपक्वान्नगुल्मवल्लीप्रसूनकम् ।
कन्दमूलच्छदादीनां च हर्ता [5]वर्षत्रयं वसेत्।।२०।।

राजा द्वारा गुड़, घी, दूध, दही, शक्कर, कपास, भस्म, लवण, मिट्टी के पात्र, तेल, लड्डू, पक्वान्न, गुच्छ, लता, पुष्प, कन्दमूल तथा पत्रों की चोरी करने वाले को तीन वर्ष तक बन्दीगृह में रखना चाहिये।

धान्यं हरन् कृषेर्दण्ड्यः सबन्धी भक्षणाय चेत्।
सबन्धनत्वयोग्यः स्याच्चतुर्वर्णेषु कश्चन।।२१।।

चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) में से किसी की भी खेती का धान्य चोरी करने वाले को बन्दी बनाने के साथ दण्ड देना चाहिए। यदि खाने के (लिये चोरी किया हो तो केवल दण्ड देना चाहिए) बन्दी बनाने के साथ दण्ड अनुचित है।

दत्वा तु खातकं गेहे द्रव्यं हरति यो हठात्।
धनिने दापयित्वा स्वं तं च निर्वासयेत् पुरात्।।२२।।

---

१. निधाययेद् भ १, भ २, प २।।
२. पुत्रस्याच्च० प २।।
३. ०नस्य प २।।
४. कार्यास भ १, भ २, प १, प २।।
५. ०र्तु सत्रयं भ १, भ २, प १, प २।।

घर में सेंध देकर जो बलपूर्वक धन चोरी करता है (उस चोर से) धन के स्वामी को धन दिलाकर (उस चोर को) नगर से निर्वासित करना चाहिये।

यश्च जैनोपवीतादिकृतसूत्राणि संहरेत्।
संस्कृतानि नृपस्तं तु मासैकं बन्धके न्यसेत्।।२३।।

जो (मनुष्य जैन विधि से संस्कार कृत सूत्रों को चुराता है राजा द्वारा उसे एक मास तक बन्धन में रखना चाहिये।

भार्यापुत्रसुहृन्मातृपितृशिष्यपुरोहिताः ।
स्वधर्मविच्युता दण्ड्याः परं वाचा नृपेण वै।।२४।।

(यदि) पत्नी, पुत्र, मित्र, माता, पिता, शिष्य और पुरोहित, अपने धर्म से विचलित हों तो राजा द्वारा उन्हें वाचिक दण्ड देना चाहिये।

लोभतो मोचयेद् बद्धान् यो मुक्तान् बन्ध[1]येन्नरान्।
दासदास्यादिहर्ता च प्रवेश्यस्तस्करालये।।२५।।

स्तेनोपद्रवतो भूपः प्रजा रक्षति यः सदा।
यशोऽत्र प्राप्नुयाल्लोके परत्र स्वर्गगत च सः।।२६।।

बन्दीगृह अधिकारी (यदि) लोभवश बन्दियों को मुक्त कर दे और मुक्त बन्दियों को बन्दी बना ले और दास-दासियों की चोरी करने वाले को कारागार में डाले। जो राजा चोर के उपद्रव से सदा प्रजा की रक्षा करता है वह इस लोक में यश प्राप्त करता है और दूसरे लोक में वह स्वर्ग प्राप्त करता है।

वाचा दुष्टस्तस्करश्च मायावी विप्रलुञ्चकः।
धाटी मारण[2]कर्त्ता यो धाटीनां च निवासदः।।२७।।

तस्कराणां लुण्ठकानां द्यूतादिग्रसितात्मनाम्।
अशनस्थानदाता च दण्ड्यः कारागृहार्हकः।।२८।।

अशिष्टभाषी, चोर, कपटी, ठग, हमलावर और हत्यारे (आदि अप- राधियों को) निवास देने वाले और चोर, लुटेरे, द्यूतादि के व्यसनी लोगों को भोजन तथा स्थान देने वाले कारागार में (रखने के) दण्ड के पात्र हैं।

मैत्र्याल्लोभात्परोक्त्या चेदन्यथा कुरुते नृपेः[3]।
अयशोऽत्रमहदाप्नोति परत्र नरकं व्रजेत्।।२९।।

---

१. ० येन्नरो भ १, भ २, प १, प २।।
२. कर्ता भ १, प १, प २।।
३. नृपो भ १, प १, प २।।

मित्रतावश, लोभवश और दूसरे के कहने (सिफारिश) पर यदि राजा तथ्य से भिन्न व्यवहार करता है तो राजा इस लोक में भारी अपयश पाता है और परलोक में नरक में जाता है।

गुरुधर्म्यात्मवृद्धस्त्रीबालघातोद्यतं नरम्।
तस्करं प्रेक्ष्य चेच्छस्त्रं धारयेत् ब्राह्मणः खलु।।३०।।

न तदा दोष[1]भाक् सः स्यादाततायिनिवारणे।
धर्मस्त्याज्यो न हि प्राणान् संहरेत् घातकारिणः।।३१।।

गुरु, धर्मात्मा, वृद्ध, स्त्री, बालक की हत्या को उद्यत मनुष्य (एवं) चोर को देखकर यदि ब्राह्मण शस्त्र धारण करे, आततायी के निवारण में (शस्त्र उठाने पर भी वह ब्राह्मण) दोष का भागी नहीं होता। आक्रामक के प्राण हर ले परन्तु (रक्षा) धर्म का त्याग न करे।

एवं स्तैन्यादिदुःखेभ्यो रक्षणीयाः प्रजाः सदा।
यतः स्वस्थाः प्रजाः सर्वाः भवेयुर्धर्मतत्पराः।।३२।।

इस प्रकार चोरी आदि दुःखों से प्रजा सदा रक्षा करने योग्य है जिससे सभी प्रजा स्वस्थ रहकर धर्म में तल्लीन हो।

इत्थं समासतः प्रोक्तं स्तैन्यप्रकरणं वरम्।
ज्ञेयो [2]विशेषश्चैतस्य श्रुतपाथोधिमध्यतः।।३३।।

इस प्रकार संक्षेप में स्तैन्य प्रकरण कहा गया, इससे विशेष (यदि जानना है) तो उस शास्त्र समुद्र (बृहदर्हन्नीति) के मध्य से जानना चाहिए।

।। इति स्तैन्यप्रकरणम् सम्पूर्णम्।।

—o—

---

१. भाक्सस्यादाततायि भ १, भ २, प १, प २।।
२. विशेषएतस्य भ १, भ २, प १, प २।।

तृतीय अधिकार

३.१७

साहसप्रकरणम्

नत्वा श्रीसुव्रतं देवं दुःखानलपयोधरम्।
राजनीत्यनुसारेण वक्ष्ये साहसिकं क्रमम्॥१॥

दुःख रूप अग्नि (को शान्त करने में) बादल रूप भगवान् तीर्थङ्कर सुव्रतनाथ की वन्दना कर राजनीति के अनुसार 'साहस (अपराध) प्रकरण' का वर्णन करूँगा।

(वृ०) पूर्वप्रकरणे स्तैन्यदण्डो वर्णितस्तत्साहचर्यादत्र च साहसदण्डोऽभिधीयते अथसाहसस्वरूपमाह –

पूर्व प्रकरण में स्तैन्यदण्ड का वर्णन किया गया उससे सम्बन्धित होने से साहसदण्ड का कथन किया जाता है। साहस के स्वरूप का वर्णन –

मनुजैः सहसाकर्म क्रियते क्रोधतोऽर्थतः।
आपदां पदमित्येतत्साहसं सद्भिरुच्यते॥२॥

त्रिधा तल्लघुमध्यो[१]त्तमादिभेदैर्बुधैः स्मृतम्।
एतस्य विस्तृति[२]र्वृद्धार्हन्नीतौ समुदाहृता॥३॥

मनुष्य द्वारा क्रोधवश अथवा धन के लिए साहस (अपराध) कार्य किया जाता है। यह साहस सज्जनों द्वारा सङ्कट का स्थान कहा गया है। विद्वानों द्वारा साहस कर्म लघु, मध्यम तथा उत्तम – तीन भेद वाला कहा गया है। इसका विस्तार बृहदर्हन्नीति में निरूपित है।

क्रियापेक्षो हि दण्डोऽयं त्रिविधस्त्रिषु वर्णितः।
चन्द्रबाणवृषैरौप्यैः शतैर्वाल्पस्ततो भवेत्॥४॥

तीनों प्रकार के आपराधिक कार्यों में अपराध के अनुरूप एक सौ, पाँच सौ अथवा हजार मुद्राओं का अथवा उससे कम दण्ड होना चाहिए।

---

१. ०ध्योतमा प २॥
२. बृद्धार्ह० प २॥

तद्यथा–

क्षेत्रोपकृतिहेतूनां वस्तूनां छेदने तथा।
उदकबन्धविनाशे च प्रथमं साहसं स्मृतम्।।५।।

खेत के उपयोग के लिए (निर्मित) वस्तुओं के काटने तथा पानी के बाँध को नष्ट करना प्रथम (कोटि) का साहस (अपराध) कहा गया है।

लोभेन बालकन्याया भूषणानि दिवानिशि।
यश्चोर[1]यति तत्कृत्ये दण्डो मध्यमसाहसम्।।६।।

लोभ से बालक और कन्या के आभूषणों को दिन-रात में चुराता है तो उस अपराध के लिए मध्यम अपराध का दण्ड है।

विषशस्त्रभयाद्यैर्यः परदारान्निषेवते।
भूषणार्थं प्राणघातं करोत्युत्तमसाहसम्।।७।।

विष, शस्त्र आदि का भय दिखाकर जो स्त्री का सेवन करता है, आभूषण के लिए वध करता है (वह) उत्तम अपराध करता है।

तत्र सर्वस्वहरणं [2]तदङ्गछेदबन्धनम् वधः।
कुर्याच्छिरसि मुद्राङ्कं पुरान्निर्वासनं नृपः।।८।।

राजा द्वारा (उत्तम साहस की स्थिति में अपराधी का) सर्वस्व हरण कर, उसके अङ्ग का छेदन कर, उसका बन्धन कर और सिर पर मुद्रा अङ्कित कर नगर से निर्वासित करना चाहिये।

परद्रव्यापहरणे तन्मूल्याद्द्विगुणो दमः।
निह्नवे[3] तुर्यगुणितः प्रेरको दण्ड्यते[4] शतैः।।९।।

दूसरे के धन का चोरी करने पर उस (धन) के मूल्य से दुगुना दण्ड देना चाहिए। कपट (निह्नव) करने पर चार गुना और चोरी के लिए प्रेरित करने वाले पर सौ मुद्राओं का दण्ड देना चाहिए।

पूज्यापमानकृद् भ्रातृजायापीडनकार्यकृत्।
सन्दिष्टार्थाप्रदाता[5] च गृहमुद्राविभेदकः।।१०।।

---

१. श्चौर० भ १, भ २, प १, प २।।
२. तदंगछेदवंधनंवधः भ १, भ २, प १, प २।।
३. निन्हवो प २।।
४. दम्यते भ १, भ २, प १,।।
५. प्रदाना च भ २।।

उपक्षेत्रगृहाणां च सीमाभञ्जनपूर्वकम्।
स्वभूमौ मेलनं कर्त्ता दम्यते शतराजतैः।।११।।

सम्माननीय लोगों का अनादर करने वाले, भाई की पत्नी को पीड़ित करने वाले, वादा किये हुये धन को न देने वाले और घर का ताला तोड़ने वाले, समीपस्थ खेत और घर की सीमा तोड़ने के साथ उसे अपनी भूमि में सम्मिलित करने (का अपराध करने) वाले को सौ रजत मुद्राओं से दण्डित करना चाहिए।

स्वच्छन्दविधवा नारी विक्रोष्टा सज्जनैः सह।
निष्कारणविरोधी च चाण्डालश्चोत्तमान्स्पृशन्।।१२।।

दैवपैत्र्यान्नभोजी यः शूद्रप्रव्रजितान्नभुक्।
अयुक्तशपथं कुर्वन् अयोग्यो[१] योग्यकर्मकृत्।।१३।।

दण्ड्यो दशमितैरौप्यैर्भिन्नः कार्यः स्वजातितः।
प्रायश्चित्तं विना नैव ज्ञातौ स्थाप्या बहिष्कृताः।।१४।।

स्वेच्छाचारिणी विधवा स्त्री, सज्जनों के साथ वैर रखने वाले, अकारण विरोध करने वाले, श्रेष्ठ जातियों को स्पर्श करने वाले चाण्डाल, देव और पितरों का अन्न खाने वाले, शूद्र और सन्यासी का अन्न खाने वाले, अनुचित शपथ लेने वाले और योग्य कार्य के अनुरूप योग्यता न रखते हुए भी कार्य करने वाले को दस मुद्राओं से दण्डित करना चाहिए एवं अपनी जाति से बहिष्कृत करना चाहिए। जाति से बहिष्कृत को बिना प्रायश्चित्त के जाति में सम्मिलित नहीं करना चाहिए।

क्षुद्रतिर्यग्वृषादीनामश्वानां पुंस्त्वघातकः।
गर्भदास्यपहारी च दण्ड्यो युग्मशतैः सदा।।१५।।

क्षुद्र और तिर्यञ्च (पशु-पक्षी) प्राणी, सांड़ आदि तथा घोड़ों आदि का पुरुषत्व नाश करने वाले, गर्भ और दासी का हरण करने वाले को सदा दो सौ मुद्राओं से दण्डित करना चाहिए।

भ्रातृमातृपितृस्वसृ[२]गुरुशिष्यसुहृत्सुतान् ।
प्रयोगेन[३] वशीकुर्वन् दण्ड्यो रौप्यशतैर्भवेत्।।१६।।

भाई, माता, पिता, बहन, गुरु, शिष्य, मित्र और पुत्र को (मन्त्र के) प्रयोग से वश में करने वाले को सौ रजत मुद्राओं से दण्डित करना चाहिए।

---

१. अयोग्ये भ १, भ २, प १, प २।।
२. स्वस् भ २, स० प २।।
३. ०गेण भ १, भ २, प १, प २।।

(वृ०) आधिविषयेऽपि साहसं भवतीत्युच्यते –

आधि – धरोहर के विषय में भी अपराध होता है, इसका कथन किया जाता है –

निर्णेजकश्च रजको गृहीत्वान्यांशुकानि चेत्।
स्थापयेदाधिरूपेण लातुं राजतमुद्रिकाः।।१७।।

द्रव्यलोभाद्विवाहादौ परिधातुं च मानवम्।
कञ्चित्प्रति यदा देयादुत्तमान्यंशुकानि च।।१८।।

निह्नुते नूतनं वस्त्रं दातुमन्यं पुरातनम्।
शर्करादृषदां वृन्दे क्षालनान्नाशयेच्च यः।।१९।।

दण्डस्तेषां क्रमात् ज्ञेय आधौ च दशराजतैः।
रौप्यमेकं त्वन्यदाने निह्नवे[1] पञ्चभिर्दमः।।२०।।

शर्करा[2]दृषदां वृन्दे क्षालयन्नाशयेद्यदि।
वस्त्राणि रजकस्तर्हि यथादोषं च दण्डभाक्।।२१।।

वस्त्र धोने वाला धोबी यदि दूसरे के वस्त्रों को लेकर रजत मुद्रायें लेने के लिए धरोहर रूप में रख दे, धन के लोभ से किसी के उत्तम वस्त्र विवाह आदि में पहनने के लिए (दूसरे) पुरुष को दे दे, अन्य पुराना वस्त्र देने के लिये नया वस्त्र छिपाये और रेत अथवा पत्थर के ढेर में धोने से (वस्त्र) नष्ट कर दे तो उनका दण्ड क्रमशः धरोहर रख लेने पर दस रजत मुद्रा, दूसरे को देने पर एक रजत मुद्रा और (नया वस्त्र) छिपाने पर पाँच (रजतमुद्रा होना चाहिए)। रेत व पत्थर के ढेर में धोकर यदि वस्त्रों को नष्ट करे तो धोबी दोष के अनुसार दण्ड का भागी होता है।

वस्त्रे नष्टे सकृद्धौतेऽष्टमांशं[3] न्यूनमाप्नुयात्।
द्विकृत्वस्तु तदर्द्धांशं त्रिकृत्वः[4] पादमेव च।।२२।।

तुर्यकृत्वस्तदर्द्धांशमर्द्धे नष्टे च पादभाक्।
धनी जीर्णांशुके क्षीणे न हि किञ्चिदवाप्नुयात्।।२३।।

(धोबी से) पूरा वस्त्र नष्ट हो जाने पर (केवल) एक बार धुले (वस्त्र के मूल्य का) आठवाँ भाग कम (धोबी से) ग्रहण करना चाहिये। दो बार (धुले वस्त्र के

---

१. निन्हवे प २।।
२. दृश० भ २।।
३. ०ष्टंमाश० प २।।
४. ०कृत्वा भ १, प १, प २।।

मूल्य) का आधा, तीन बार (धुले वस्त्र के मूल्य) का चौथाई और चार बार (धुले वस्त्र के मूल्य) का उस (चौथाई) का आधा अर्थात् आठवाँ भाग और जीर्ण वस्त्र के नष्ट हो जाने पर स्वामी को कुछ भी प्राप्त न हो।

(वृ०) निर्णेजकः शुचिकारः रजकश्च परकीयोत्तमवासांसि द्रव्य-ग्रहणार्थमाधिरूपतया स्थापयेत् तदा दशरजतदण्डः।

यदि धुलाई करने वाला, स्वच्छ करने वाला धोबी दूसरे के उत्तम वस्त्रों को धन ग्रहण करने के लिए धरोहर रूप में रखता है तो उसका दण्ड दस रजत।

अथवा विवाहाद्युत्सवे कस्माच्चिद्द्रव्यं गृहीत्वोत्तमवस्त्राणि परिधातुं ददाति चेदेकरजतदण्डः।

अथवा विवाह आदि उत्सव में किसी से धन लेकर यदि उसे पहनने के लिए उत्तम वस्त्र दे देता है तो एक रजत दण्ड।

नूतननिह्नवे पुराणदाने च पञ्चरजतदण्डः।

नये वस्त्र को छिपाकर पुराना देने पर पाँच रजत दण्ड।

यदि रजकः प्रमादात् शर्कराद्दृष्टाद्गणे वस्त्राणि धावमानो नाशयति तदा यथादोषं दण्डः।

यदि धोबी असावधानीवश धोते हुए कङ्कड़ी अथवा शिला से वस्त्रों का नष्ट कर देता है तो दोष के अनुसार दण्ड देना चाहिए।

यथाष्टरजतक्रीतस्य सकृद्धौतस्य वाससो नाशेऽष्टमभागोनं सप्त रजतमौल्यं देयम्।

जैसे आठ रजत में क्रय किये गये, एक बार धोये गये वस्त्र के नष्ट हो जाने पर आठवाँ भाग कम सात रजत मूल्य देना चाहिए।

द्विर्धौतस्य तदर्द्धं

दो बार धोये गये वस्त्र का उसका आधा (मूल्य देना चाहिए)।

त्रिर्धौतस्य तदर्द्धं

तीन बार धोये गये वस्त्र का उस का आधा (मूल्य देना चाहिए)।

चतुर्धौतस्य तदर्द्धं

चार बार धोये गये वस्त्र का उसका आधा (मूल्य देना चाहिए)।

अर्द्धे नष्टे तदर्द्धं

वस्त्र के आधा नष्ट होने पर उसका आधा

जीर्णे तु नष्टे रजको न दोषभाक्

पुराने वस्त्र के नष्ट हो जाने पर धोबी दोष का भागी नहीं होता है।

अथ पितृपुत्रविवादे साहसेन साक्ष्यदाने दण्डमाह –

पिता-पुत्र के विवाद में औद्धत्यपूर्वक साक्षी देने पर दण्ड का वर्णन –

तातपुत्रकलहे च साक्षितां साहसात्कलहवर्द्धयेऽधमो यो ददाति न च वारयेत् कलिं दण्ड्यते त्रिकपणैश्च भूभुजा।

पिता-पुत्र के विवाद में कलह बढ़ाने के लिए जो अधम व्यक्ति साहस पूर्वक साक्षी देता है और क्लेश का निवारण नहीं करता है उस अधम व्यक्ति को राजा तीन मुद्राओं से दण्डित करे।

अथ कूटव्यवहारदण्डमाह –

अब कूट व्यवहार दण्ड के लक्षण का कथन–

कूटमानतुलाभिर्यः शासनैर्नाणकेन[1] च।
कूटव्यवहृतिं कुर्याद्दण्ड्य उत्तमसाहसैः।।२४।।

जो खोटे माप-तौल, नकली राज्य नियमों और खोटे सिक्के (नाणक) से खोटा व्यवहार करता है उसे शासन द्वारा उत्तम साहस (अपराध) का दण्ड देना चाहिये।

अकूटं कूटमेवं च कूटं ब्रूते ह्यकूटकम्।
यो नाणकं तु लोभेन स दण्ड्यः परसाहसैः।।२५।।

जो पुरुष लोभवश खोटे सिक्के (नाणक) को असली सिक्के (नाणक) और असली को खोटा बताता है उसे अधम अपराध के रूप में दण्डित करना चाहिए।

तिर्यङ्मनुजभूपानां[2] चिकित्सां कुरुतेऽभिषक्।
स दण्ड्यः क्रमशश्चाद्यमध्यमोत्तमसाहसैः।।२६।।

जो वैद्य (वैद्यक शास्त्र को न जानते हुए) पशु-पक्षी, मनुष्य और राजा की चिकित्सा करता है उसे क्रमशः अधम, मध्यम और उत्तम अपराध के दण्ड से दण्डित करना चाहिए।

(वृ०) यो वैद्यःशास्त्रमजानन् प्रपञ्चेनाहं भिषग् इति वदन् तिरश्चां चिकित्सां कुर्वन्नाद्यसाहसेन दण्ड्यः

---

१. ०र्माणकेन भ १, भ २, प १ ०र्मानकेन प २।।
२. भौपानां भ २, प १, प २।।

वैद्यक शास्त्र को न जानते हुए मायापूर्वक 'मैं वैद्य हूँ' यह कहते हुए तिर्यकों की चिकित्सा करने वाले वैद्य को आद्य साहस से दण्डित करना चाहिए।

मनुष्याणां चिकित्सां कुर्वन्मध्यमसाहसेन दण्ड्यः।

मनुष्यों की चिकित्सा करने वाले उक्त वैद्य को मध्यम साहस से दण्डित करना चाहिए।

भौपानां राजसम्बन्धिनां चिकित्सां कुर्वन्नुत्तमसाहसेन दण्ड्यः

राजाओं अथवा राजा के सम्बन्धियों की चिकित्सा करते हुए उक्त वैद्य को उत्तमसाहस से दण्डित करना चाहिए।

यश्च वध्नात्यबद्धं वै बद्धं यश्च विमुञ्चति।
अनिवृतकृतिं[1] भूपाज्ञामृते वरसाहसम्।।२७।।

जो अधिकारी बन्धन की राजाज्ञा के बिना किसी को बाँधता है, जो बाँधने के योग्य है उसको मुक्त कर देता है और जो अपना दायित्व पूरा नहीं करता है वह उत्तम अपराध के दण्ड का पात्र है।

(वृ०) स्पष्टम् –

यो मानसमयेऽष्टांशं व्रीहि[2]कार्पासयोर्हरेत्।
पुनर्हानौ तथा वृद्धौ प्राप्नुयाद्द्विशतैर्दमम्।।२८।।

जो चावल या कपास तौलते समय आठवाँ भाग ग्रहण कर ले उससे अधिक या कम होने पर उस (तौलने वाले) से दो सौ द्रम (रुपया) दण्ड प्राप्त करना चाहिये।

गन्धधान्यगुडस्नेहभेषजादिषु यः क्षिपेत्।
न्यूनद्रव्यं स्वलोभेन दण्ड्यः स्याद्दशराजतैः।।२९।।

लोभवश जो सुगन्धित पदार्थ, धान्य, गुड़, तेल और औषधि में अल्प द्रव्य मिश्रित कर विक्रय करता है उसे सौ रजत मुद्राओं से दण्डित किया जाना चाहिये।

साहसेन तु यः कुर्यात्समुद्राधानविक्रयम्।
कुङ्कुमादिपरावर्तो[3] दण्ड्यो विंशतिभिस्त्रिभिः।।३०।।

जो मनुष्य अपराध में मुद्रा से युक्त वस्तु का विक्रय करे अथवा कुमकुम आदि पदार्थों की अदला-बदली करे उसे साठ रुपये से दण्डित करना चाहिये।

---

१. अनिवृतकृतिं भ १, भ २, प १, प २।।
२. कार्यासयो भ १, भ २, प १, प २।।
३. परावर्ते भ १, परावर्तो भ २, परावता प १, परावर्तो प २।।

प्रस्था[१] दिवट्टान्निर्माता भिन्नान् राजप्रचारतः।
पणस्य हानौ वृद्धौ वा दण्ड्यो द्विशतराजतैः।।३१।।

राजा द्वारा प्रचलित बाट से भिन्न बाट का निर्माता जिससे व्यापार में हानि या वृद्धि हो उसे दो सौ रजत मुद्राओं से दण्डित किया जाना चाहिये।

परस्परानुमत्या [२]यो वणिग् वस्तुमहर्घताम्।
करोति चेत्समे दण्ड्याः प्रोक्ता उत्तमसाहसैः।।३२।।

व्यापारी आपसी स्वीकृति से वस्तु का मूल्य बढ़ाकर बेचता है उसे उत्तम अपराध के समान दण्ड देना चाहिये।

एवं संक्षेपतः प्रोक्ता साहसस्य च वर्णना।
यत्फलज्ञानतो जीवाः स्युस्तत्त्यागसमुद्यताः।।३३।।

इस प्रकार साहस का संक्षेप में वर्णन है जिसका फल जानते हुये लोग उसके त्याग की ओर तत्पर हों।

।। इति साहसप्रकरणम्।।

—o—

३. ०दिवदान्नि० भ १, भ २, प १, प २।।
४. ज्ञो वाः भ १, ज्ञो याः भ २, प १, प २।।

तृतीय अधिकार

३.१८

दण्डपारुष्यप्रकरणम्

नत्वा नमिजिनं सम्यग् धर्मतीर्थप्रवर्तकम्।
वक्ष्यामि दण्डपारुष्यं प्रजास्थितिनिबन्धनम्।।१।।

धर्म रूपी तीर्थ का प्रवर्तन करने वाले तीर्थङ्कर नमि की भलीभाँति वन्दना कर प्रजा की स्थिति के नियन्त्रण रूप दण्डपारुष्य – दण्ड की कठोरता – का कथन करूँगा।

(वृ०) पूर्वप्रकरणे साहसदण्डो निरूपितः तत्साहचर्य्याद्दण्डपारुष्यमधुना निरूप्यते–

पिछले प्रकरण में साहस दण्ड का निरूपण किया गया है। इसके साथ साहचर्य के कारण अब दण्डपारुष्य का निरूपण किया जाता है –

येनान्त्यजोऽङ्गेन कुधीः कस्याङ्गं छेदयेत् हठात्।
तदङ्गं छेदयित्वास्य पुरात्कार्यं प्रवासनम्।।२।।

कोई कुत्सित बुद्धिवाला बलपूर्वक किसी के अङ्ग का छेदन करे तो (अपराधी) के उसी अङ्ग को काटकर नगर से निष्कासित कर देना चाहिये।

[1]क्षत्रियद्विजयोर्मोहात् काष्ठधातुविनिर्मिते।
आसने वैश्यशूद्रौ चेदुप[2]विष्टौ तदा भृशम्।।३।।

कषाविंशतिभिर्वैश्यं[3] पञ्चाशद्भिश्च शूद्रकम्।
ताडयेन्न्यायमार्गेण मर्यादारक्षणे नृपः।।४।।

यदि क्षत्रिय और ब्राह्मण के लिए लकड़ी और धातु से निर्मित आसन पर

---

१. क्षत्विय भ २, प २।।
२. ०पविष्टौ प १, प २।।
३. ०भिर्वेश्यं भ १, भ २, प २।।

वैश्य और शूद्र बैठें तो न्यायपूर्वक मर्यादा की रक्षा के लिए राजा द्वारा वैश्य को बीस और शूद्र को पचास कोड़े लगवाना चाहिए।

चतुर्वर्णेषु यः कश्चिद्दृष्ट्वा कञ्चिन्नरोत्तमम्।
निष्ठीवति हसेद्वापि[1] दम्यते दशराजतैः।।५।।

चार वर्णों में से जो कोई (पुरुष) किसी श्रेष्ठ व्यक्ति को देखकर थूके अथवा हँसे भी तो (राजा) दस रजत मुद्राओं द्वारा उसे दण्डित करे।

प्राणघाताभिलाषी यो ग्रीवां मुष्कं [2]शिरस्तथा।
गृह्णाति दर्पतः [3]क्रोधाद्दण्ड्यते [4]स्वर्णनिष्कतः।।६।।

घमण्ड या क्रोध से वध की इच्छा से जो किसी की गर्दन, मुष्क (अण्डकोष) तथा सिर पकड़े तो उसे सोने के (सिक्के) निष्क से दण्डित किया जाता है।

[5]मांसापकर्षकस्तुर्यैस्त्वग्भेत्ता दशराजतैः।
[6]असृक्प्रचालने विप्रो दण्ड्यो युग्मशतेन वै।।७।।

ब्राह्मण को (किसी का) माँस खींचने पर चार (रजत मुद्राओं), चमड़ा काटने पर दस रजत (मुद्राओं) तथा रक्त बहाने पर दो सौ मुद्राओं से दण्डित करना चाहिए।

आरामं गच्छता येन दर्पादुत्पाटिता लता।
त्वक्पत्रदण्डपुष्पाद्याः स दण्ड्यो दश[7]राजतैः।।८।।

उपवन की ओर जाते हुए धृष्टता से जिसके द्वारा लता उखाड़ी गई हो, (वृक्ष की) छाल, पत्ते, डाली, फूल आदि (तोड़ा गया हो) वह दस रजत (मुद्राओं) से दण्डनीय है।

पुष्पचौरो[8] दशगुणैः प्रवास्यो[9]वृक्षभेदकः[10]।
मनुष्यगोप्रहर्ता च प्रवास्यो ग्रामतो ध्रुवम्।।९।।

---

१. हसेच्चापि भ २।।
२. शर भ २।।
३. क्रोधा भ २।।
४. ०दम्यते भ १, भ २, प १, प २।।
५. स्वर्णा० भ २।।
६. ०रसक भ १, भ २, प १, प २।।
७. राजनैः भ १, भ २, प १,।।
८. चौरौ प १।।
९. प्रवास्यौ प १।।
१०. भेदके प १।।

फूल चुराने वाले को (मूल्य के) दस गुने से, वृक्ष काटने वाले को (नगर से) निष्कासित करना चाहिये और मनुष्य तथा गाय का अपहरण करने वाले को निश्चित रूप से गाँव से निष्कासित कर (दण्डित करना चाहिए)।

यादृशोपद्रवं कुर्यात्तादृशं[१] दण्डमाप्नुयात्।
यावता तन्निवृत्तिः [२]स्यात्तावद्द्रव्यं च दापयेत्।।१०।।

(व्यक्ति) जैसा उपद्रव करे उसी के अनुसार दण्ड प्राप्त करे। जितना (द्रव्य व्यय करने पर) उस (उपद्रव) की शान्ति हो उतना द्रव्य (उपद्रवी से) दिलवाना चाहिए।

घातकाद्घातशान्त्यर्थमौषधाद्यमर्थमेव च।
अनुचर्यार्थमपि ग्राह्यं यादृक्कर्म तथा फलम्।।११।।

घायल की पीड़ा आदि दूर करने अथवा उसकी औषधि आदि और सेवा के लिए भी हानि पहुँचाने वाले से व्यय ग्रहण किया जाना चाहिए, जैसा कर्म वैसा फल (राजा सुनिश्चित करे)।

[३]वित्तं यस्य वृथा दुष्टो नाशये[४]द् ज्ञानतोऽथवा।
अज्ञानतस्तत्प्रसत्तिश्च कार्या तन्नाशकेन वै।।१२।।

जिसका धन कोई दुष्ट मनुष्य जान बूझकर अथवा भूलवश व्यर्थ में नष्ट करे तो उस नष्ट करने वाले के द्वारा उस (क्षति) की पूर्ति की जानी चाहिए।

ऋणी स्वयं न दत्ते चेद्भूपो[५] निश्चित्य साक्षिभिः।
दापयित्वा धनं तस्माद्दमं गृह्णाति स्वोचितम्।।१३।।

यदि कर्जदार स्वयं (ऋण वापस) नहीं देता है तो साक्षियों द्वारा निश्चित कराकर धन (वापस) दिलाकर उस (कर्जदार) से राजा अपने लिए उचित दण्ड ग्रहण करता है।

वादित्रनाशने दण्डो ज्ञेयो दशगुणः सदा।
मृद्धातुकाष्टपात्राणां नाशे पञ्चगुणः स्मृतः।।१४।।

वाद्ययन्त्र नष्ट करने पर सदा (उसके मूल्य का) दस गुना दण्ड जानना

---

१. कुर्यातादृशं प २।।
२. गतकाद्वात प २।।
३. विज्ञं प २।।
४. त दज्ञे प २।।
५. भूयो प १, प २।।

चाहिए। मिट्टी, धातु और काष्ठ के पात्रों को नष्ट करने पर (उसके मूल्य का) पाँच गुना (दण्ड) कहा गया है।

मार्गे यानादिभिर्नाशे सारथिं दण्डयेन्नृपः।
मदहेतुविमुक्तश्चेदन्यथा न हि दण्डयुक्॥१५॥

(दुर्घटना के कारणों को छोड़कर) मार्ग में वाहनादि से क्षति होने पर राजा सारथी को दण्डित करे। निश्चित् रूप से अकस्मात् क्षति होने पर दण्ड का योग नहीं है।

(वृ०) केऽष्टौ हेतवः इत्याह –

(क्षति होने पर दण्ड न पाने के) आठ कारण कौन से हैं, यह कथन–

युगाक्षयन्त्रचक्राणां भञ्जने राशिभङ्गके।
वृषे तु सम्मुखं प्राप्ते भूवैषम्ये दृषद्गणे॥१६॥

गच्छगच्छेतिपूत्कारे कृते सारथिनाऽसकृत्।
न दण्ड्या यानयानेशस्वामिनः स्युर्नृपेण वै॥१७॥

युग, अक्षयन्त्र और चक्कों के टूटने, राशि टूटने, सामने साँड़ के आने, भूमि असमतल होने, पत्थर का ढेर आने और वाहन चालक द्वारा बार-बार 'हटो-हटो' चिल्लाने की स्थिति में दुर्घटना होने पर गाड़ी, गाड़ी वाले तथा स्वामी को राजा द्वारा दण्डित नहीं किया जाना चाहिए।

अज्ञत्वात् सारथेर्युग्ममन्यत्राकर्षयेद्रथम्[1]।
परवस्तुविनाशे च स्वामी दण्ड्यो न सारथिः॥१८॥

युग्ममुद्राशतं दण्डं गृह्णीयाद्भूपतिस्ततः।
सारथिः कुशलश्चेत्सो दण्ड्यः[2] स्वामी न दोषभाक्॥१९॥

सारथि की अज्ञानता से यदि बैल रथ को दूसरी ओर खींच ले जाये तो दूसरे की वस्तु के नष्ट होने पर स्वामी दण्डनीय है वाहन चालक नहीं। (इस स्थिति में) राजा स्वामी से दो सौ मुद्रा दण्ड ग्रहण करे। यदि वाहन चालक निपुण हो तो वही दण्डित किया जाना चाहिए, स्वामी दोष का भागी नहीं है।

मूर्खत्वे[3] सारथेर्दण्ड्यो[4] युग्मे भूपेन सारथेः।
शतमुद्रां गृहीत्वा [5]प्राग्यानमीशं च दापयेत्[6]॥२०॥

---

१. ०येद्रव्यं भ १, भ २, प १, प २॥ २. दण्ड्ये प १, प २॥
३. मूर्खेत्वे भ २॥
४. दण्ड्यो युग्मो भ १, भ २, प १, प २॥
५. प्रग्घानिमोशंच भ १, भ २, प १, प २॥
६. विधाययेत् भ १, विधापयेत् भ २, प १, प २॥

वाहन चालक के मूर्ख होने पर राजा द्वारा (वाहन चालक और स्वामी) को दण्डित करना चाहिए। वाहन चालक से सौ मुद्रा लेकर पहले यान के स्वामी को देना चाहिए।

यानान्तरेण गोऽश्वादिरुद्धे मार्गे तु सारथिः।
अशक्तो [1]वृषरोधादौ न दण्ड्यः स्याच्च सर्वथा।।२१।।

गाय, घोड़े आदि द्वारा वाहन का मार्ग अवरुद्ध होने और साँड़ द्वारा मार्ग अवरुद्ध आदि होने पर तो वाहन चालक असमर्थ है और वह किसी भी प्रकार दण्डनीय नहीं है।

जीवनाशे तु दण्ड्यः स्यात्सूतो भूपेन केवलम्।
वस्तुनाशे तत्प्रसत्तिं नृपस्तेन प्रदापयेत्।।२२।।

(वाहन के नीचे, धक्का लगने से) प्राणी के घायल, मृत्यु आदि होने पर राजा द्वारा वाहन चालक दण्डनीय है। वस्तु के नष्ट होने पर राजा द्वारा उस (चालक) से उसकी क्षतिपूर्ति दिलवानी चाहिए।

मर्त्यनाशे महत्पापं[2] चौरवद्दण्डमाप्नुयात्।
गोगजाश्वोष्ट्रमहिषोघाते[3] स्वामिप्रसन्नता।।२३।।

(दुर्घटना में) प्राणी की घायल अथवा मृत्यु होना पाप है (इस स्थिति में) चोर (चोरी के अपराध करने वाले) के समान दण्ड देना चाहिए। गाय, हाथी, अश्व, उष्ट्र, भैंस के मरने पर (उसके मूल्य के बराबर धन आदि देकर) स्वामी की प्रसन्नता ही दण्ड है।

कारणीया ततो दण्डो गृह्यते पृथिवीभुजा।
यथा पुनर्न कोऽपि स्यादी[4]दृशो जीवघातकृत्।।२४।।

राजा यान-चालक को ऐसा दण्ड दे जिससे कि पुनः इस प्रकार जीव हत्या करने वाला कोई भी न हो।

भार्यापुत्रप्रेष्यदाससोदराश्चापराधिनः ।
तेषां नाथेन दण्डेन स्तैन्यकर्मणि भूभृता।।२५।।

यदि पत्नी, पुत्र, दूत, दास, सहोदर (भ्राता), चौरकर्म के अपराधी हों तो राजा द्वारा नाथ (बैल की नाक में पिरोई जाने वाली रस्सी और) दण्ड से उनकी पिटाई हो।

---

१. तृषरोधा प १, प २।।
२. महत्पापी भ १, भ २, प १, प २।।
३. ०याते भ १, ०द्याते भ २, प २।।
४. स्तासांना० भ १, भ २, प १, प २।।

एषः समासतः प्रोक्तो दण्डपारुष्यनिर्णयः।
जीवमात्रे कृपादृष्टी रक्षणीया मनीषिणा।।२६।।

यह संक्षेप में दण्ड की कठोरता के निर्णय का कथन किया गया। बुद्धिमानों द्वारा प्राणिमात्र पर कृपादृष्टि रखनी चाहिए।

।। इतिदण्डपारुष्यप्रकरणम्।।

—o—

तृतीय अधिकार

३.१९

स्त्रीपुरुषधर्मप्रकरणम्

नेमिं नत्वा मुदा नेमिं [1]सर्वारिष्टविभेदने।
स्त्रीपुंधर्मव्यवहृतिः संक्षेपेणात्र वर्ण्यते।।१।।

सम्पूर्ण अमङ्गल या अशुभ के विदारण में चक्र रूप (बाईसवें तीर्थङ्कर) नेमिनाथ का हर्षपूर्वक वन्दन कर स्त्री-पुरुष के धर्म-व्यवहार का संक्षेप से वर्णन किया जाता है।

(वृ०) पूर्व प्रकरणे दण्डपारुष्यवर्णनं कृतम् –

पूर्व प्रकरण में दण्ड-पारुष्य का वर्णन किया गया –

(वृ०) दण्डस्तु धर्मरक्षार्थं जायतेऽतोऽधुनास्त्रीपुरुषधर्मप्ररूपणाधिक्रियते –

दण्ड सदा धर्म की रक्षा के लिए होता है इसलिए अब स्त्री-पुरुष के धर्म की प्ररूपणा की जाती है –

पित्रादयः स्वबुद्ध्या यं [2]सुन्दरं प्रेक्ष्य कन्यकाम्।
दद्युः सा निर्गुणं चापि पूजयेद्देववत्तकम्।।२।।

पिता आदि (स्वजनों) द्वारा अपनी बुद्धि से जिस पुरुष को सुन्दर देखकर (अपनी) कन्या दी जाती है गुणरहित होने पर भी वह उसे देवता के समान पूजती है।

भर्त्रापि मिष्टवचनैः सन्तोष्या सा नवाङ्गना।
पक्वान्नदधिदुग्धाद्यैः पोषणीया निरन्तरम्।।३।।

स्वामी के द्वारा भी वह नवविवाहिता स्त्री मधुर वचनों से सन्तुष्ट की जानी चाहिए। पकवान, दूध, दही आदि से वह निरन्तर पोषित की जानी चाहिए।

---

१. सर्वा० प २।।

२. सुन्दर भ २, प २।।

बालत्वे रक्षकस्तातो यौवने रक्षकः पतिः।
वृद्धत्वे [1]सति सत्पुत्रः स्त्री स्वाधीना भवेन्नहि।।४।।

बालावस्था में स्त्री का रक्षक पिता होता है, युवावस्था में रक्षक पति होता है, वृद्ध होने पर पुत्र रक्षा करता है, निश्चित रूप से स्त्री (कभी) स्वतन्त्र नहीं होती है।

अतीचाराद्बुधैर्नित्यं रक्षणीया कुलाङ्गना।
आतुर्यवासरं[2] कस्याप्यास्यं पश्ये[3]दृतौ न हि।।५।।

बुद्धिमानों द्वारा कुलीन स्त्रियों की अतिचार (मर्यादा-उलङ्घन) से सदैव रक्षा की जानी चाहिए। ऋतु (रज-स्राव) में पूरे चार दिनों तक कोई भी इसका (मुख) न देखे।

चतुर्थदिवसे स्नात्वेक्षेतास्यं पत्युरेव च।
ऋतुस्नाने न पश्येत्स्त्री परभर्त्यमुखं कदा।।६।।

चौथे दिन स्नान के समय अपने पति का ही मुख देखे। रजोदर्शन के बाद (ऋतु-) स्नान कर वह कभी अन्य पुरुष का मुख न देखे।

यतः – क्योंकि –

स्नानकाले निरीक्षेत सुरूपं च विरूपकम्।
पुरुषं जनयेत्पुत्रं तदाकारं मनोरमा।।७।।

स्नानकाल में वह सुन्दरी सुन्दर या असुन्दर जैसे पुरुष का मुख देखेगी वैसे ही आकार का पुत्र उत्पन्न करेगी।

यादृश[4]मुप्यते बीजं क्षेत्रे कालानुसारतः।
तत्पर्यायगुणैर्युक्तं तादृगुत्पद्यते फलम्।।८।।

उचित समय पर खेत में जैसा बीज बोया जाता है – पर्याय गुण से युक्त उसी प्रकार का फल उत्पन्न होता है।

यद्यज्जातीयपुरुषं यद्यत्कर्मकरं नरम्।
पश्यति स्नानकाले सा तादृशं जनयेत्सुतम्।।९।।

स्नान के समय जिस-जिस जाति तथा जिस-जिस कार्य को करने वाले पुरुष का मुख वह देखती है उसी प्रकार का पुत्र उत्पन्न करती है।

---

१. वृद्धत्वेवति भ १, भ २, प १, प २।।
२. आतुर्यवारं भ १, भ २, प १, प २।।
३. ०दतोनहि भ १, भ २, ०दतौनहि प १, प २।।
४. वप्यते भ १, भ २, प १, प २।।

न स्पृशेद्वस्तुमात्रं हि न भुंक्ते कांस्यभाजने।
गृहाद्बहिर्न गन्तव्यं देवतायतनेऽपि न।।१०।।
शयीत न हि [1]खट्वायां पुष्टान्नं नैव भक्षयेत्।
आदर्शालोकनं नैव ऋतौ कुर्यात्कुलाङ्गना।।११।।

ऋतुकाल में कुलवधू न ही किसी वस्तु का स्पर्श करे, न ही कांसे के पात्र में भोजन करे, घर से बाहर भी न जाय और मन्दिर भी न जाये। निश्चित रूप से न तो वह पलङ्ग पर शयन करे, न ही पौष्टिक अन्न ग्रहण करे और न ही दर्पण का अवलोकन करे।

शरीरसंस्कृतिं नैव कुर्यादुद्वर्त्तनादिभिः।
न काष्ठघर्षणं दन्ते दिवा स्वापं च वर्जयेत्।।१२।।

उबटन आदि (प्रसाधनों से) शरीर का संस्कार नहीं करना चाहिए। दाँतों को काष्ठ (लकड़ी) से नहीं घिसना चाहिए और दिन में निद्रा का त्याग करना चाहिए।

चतुर्थेऽह्नि कृतस्नाना दृष्ट्वा स्वीयधवाननम्।
कृतसर्वसुसंस्कारा कुर्यात् क्षीरान्नभोजनम्।।१३।।

चौथे दिन स्नान कर अपने पति का मुख देखकर सभी सुसंस्कारों को सम्पन्न कर खीर का भोजन करे।

तद्दिने चित्तविक्षेपं क्रोधं वा न करोति वै।
कृतमङ्गलनेपथ्याभूषालङ्कृतविग्रहा ।।१४।।
कृताञ्जनादिसंस्कारा पुष्प[2]सुगन्धवासिता।
स्वस्थचित्ता सुशय्यायां [3]शेते पतिना सह।।१५।।

उस (ऋतु काल के चौथे) दिन वह मन में विक्षोभ अथवा क्रोध न करे, मङ्गल वस्त्र धारण कर, आभूषण से शरीर को सुशोभित कर, आँखों में अञ्जन आदि लगाकर, पुष्प और सुगन्धित द्रव्य से सुवासित तथा स्वस्थचित्त हो पति के साथ शयन करे।

समायां निशि [4]पुत्रः स्याद्विषमायां तु कन्यका।
वीर्याधिक्येन पुत्रः स्याद्रक्ताधिक्येन पुत्रिका।।१६।।

---

१. खटायां भ २, प १, प २।।
२. सौगन्ध्यवासिंत्ता भ २, प १, प २।।
३. शेरतेपतिनासह भ १, भ २, प १, प २।।
४. पुत्राः भ २, प २।।

सम (संख्या वाली) रात्रि में गर्भ धारण हो तो पुत्र और विषम (संख्या वाली) रात्रि में गर्भ धारण हो तो कन्या, वीर्य की अधिकता से पुत्र तथा रक्त की अधिकता होने से पुत्री उत्पन्न होती है।

जीवोत्पत्तेरियं भूमिर्योनिः प्रोक्ता हि शाश्वती।
बीजानामिव तद्वृद्धिर्भूम्याश्रयतया भवेत्।।१७।।

यह योनि जीव उत्पत्ति के लिए शाश्वत भूमि रूप है। बीजों की ही भाँति उसकी (जीव) की भी वृद्धि भूमि के आश्रय से होती है।

जायन्तेऽनेकरूपाणि यान्युप्तानि [1]कृषीवलैः।
एकक्षेत्रेऽपि कालेन बीजानि स्वभावतः।।१८।।

कृषकों द्वारा एक क्षेत्र में बोये गये बीज समयानुसार अपने स्वभाव से अनेक रूपों में उत्पन्न होते हैं।

शालिगोधूममुद्गाश्चणकालसिकुलत्थका ।
यथाबीजं प्ररोहन्ति स्वपर्यायानुसारतः।।१९।।

धान, गेहूँ, मूँग, चना, अलसी, कुलत्थ आदि बीज के अनुसार अपनी-अपनी (जाति) पर्याय के अनुसार अङ्कुरित होते हैं।

अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते।
उप्यते येन यद्बीजं तत्तथैव प्ररोहति।।२०।।

जो बीज बोया जाता है उसी प्रकार वह अङ्कुरित होता है अन्य धान्य बोने पर अन्य (धान्य) उत्पन्न नहीं होता है।

तत्प्राज्ञेन विचार्यैवं धर्मशास्त्रानुसारतः।
वृद्धिकामेन वप्तव्यं न जातु परयोषिति।।२१।।

अतः बुद्धिमान द्वारा इस प्रकार विचार कर धर्मशास्त्र के अनुसार वृद्धि की कामना से बोना चाहिए, परस्त्री में कभी भी नहीं (वीर्य-वपन करना चाहिए)।

विधिना महिला सृष्टा पुत्रोत्पादनहेतवे[2]।
भर्तुः सपर्या परमो धर्मः स्त्रीणां प्रकीर्त्तितः।।२२।।

पतिसेवा सुतोत्पत्तिस्तद्रक्षा गृहकर्म च।
स्त्रीणां कर्माणि चैतानि निर्दिष्टानि प्रधानतः।।२३।।

---

१. कृष्टीवलै-भ २, प १, प २।।
२. हेतुवे भ १, भ २, प १, प २।।

पुत्र उत्पादन के लिए ब्रह्मा ने स्त्री की रचना की। पति की सेवा स्त्रियों का परम कर्त्तव्य कहा गया है। पति की सेवा, पुत्र की उत्पत्ति, उसकी रक्षा और गृहकार्य – ये मुख्य रूप से स्त्रियों के कर्म बताये गये हैं।

[१]भर्त्रर्द्धदेहसंलीना भर्तृभक्तिपरायणा।
पतिमेव प्रभुं मन्या प्रोक्ता सा तु पतिव्रता।।२४।।

पति के आधे शरीर में लीन, पति-भक्ति में तत्पर, पति को परमेश्वर मानने वाली पतिव्रता कही जाती है।

निःस्नेहा[२] चलचित्तत्वात्पौंश्चल्या[३] दुष्टनोदनात[४]।
कुसङ्गतो भवेन्नारी कुसङ्गं वर्जयेत्ततः।।२५।।

स्त्री बुरी सङ्गत के कारण चित्त की चञ्चलता और दुष्ट की प्रेरणा से स्नेहरहित एवं कुलटा हो जाती है अतः कुसङ्ग का त्याग करना चाहिए।

स्वकीयकुलरीतिस्तु रक्षणीया प्रयत्नतो यतः।
कुलद्वये [५]यथा न स्यान्मलिनत्वं कुलस्त्रियाः।।२६।।

कुलीन स्त्रियों को प्रयत्नपूर्वक अपनी कुलपरम्परा की रक्षा करनी चाहिए जिससे स्त्री के दोनों कुलों (पतिकुल तथा पिताकुल) में मलिनता न (उत्पन्न) हो।

देवयात्रोत्सवे रङ्गे चत्वरे जागरे कलौ।
कुलस्त्रिया न गन्तव्यमेकाकिन्या कदाचन।।२७।।

देव की यात्रा, उत्सव, नाटक, चतुष्पथ या बाजार, जागरण और कलहयुक्त स्थान में कुलीन स्त्री को कभी एकाकी नहीं जाना चाहिए।

स्नानोद्वर्त्तनतैलाद्यभ्यङ्गलेपनकानि नो।
कारयेत्परहस्तेन शीलरक्षणतत्परा।।२८।।

शील की रक्षा में तल्लीन स्त्री स्नान, उबटन, तैल आदि से मालिश दूसरे के हाथों से न कराये।

गणिका लिङ्गिनी दासी स्वैरिणी कारुकाङ्गनाभिः।
कार्यो न हि संसर्गो यशोहेतोः कुलस्त्रिया।।२९।।

---

१. भर्त्रद्वदे भ १, भ २, प १, प २।।
२. निस्नेहा भ १, भ २, प १, प २।।
३. पौंश्चली प १, प २।।
४. दुष्टनोदना भ १, भ २, प १, प २।।
५. यतः कुलद्वयेनस्यान्मलीनत्वं भ १, भ २, प १, प २।।

कुलीन स्त्री को अपनी प्रतिष्ठा के लिए वेश्या, योगिनी, दासी, कुलटा तथा शिल्पी स्त्रियों के साथ घनिष्ठता नही करनी चाहिये।

तद्धर्म[1]गुणवृत्तीः सा धारयिष्यति सङ्गतः।
तस्मादाचारशुद्ध्यर्थं नृभिः रक्ष्याः सदा स्त्रियः॥३०॥

वह कुलीन स्त्री (उक्त स्त्रियों की) सङ्गति से उनके धर्म, गुण और आचरण अपना लेगी इस कारण आचार-शुद्धि के लिए पुरुषों द्वारा सदा स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए।

पूजार्हा पुत्ररत्नेज्या रूपलावण्यमण्डिता।
श्रीषु स्त्रीषु विशेषो न गृहिणामस्ति कश्चनः॥३१॥

स्त्रियाँ पूजा के योग्य हैं, पुत्र रूपी रत्न को उत्पन्न करने वाली हैं, रूप और सौन्दर्य से सुशोभित हैं, गृहस्थजनों के लिये लक्ष्मी तथा स्त्रियों में कोई भेद नहीं है।

[2]नार्ताश्नीयान्मधुं तैलमुच्छिष्टं कोद्रवं तथा।
विद्धमन्नं परान्नं [3]चाशौचान्नं न च माषकान्॥३२॥

मलोत्सर्गं न सा मार्गे कुर्याद्भस्मनि गोकुले।
न क्षेत्रे संस्कृते चैव [4]श्मशाने न च पर्वते॥३३॥

देवस्थाने च सरिनि गर्ते सत्त्वयुते [5]द्रहे।
सूर्याग्निचन्द्रायतनसम्मुखं न कदाचन॥३४॥

रजस्वला स्त्री मधु, तेल, जूठा भोजन, कोदों, विद्ध अन्न, परकीय अन्न, अपवित्र अन्न तथा उड़द का भक्षण न करे। वह मार्ग, राख, गोकुल (गायों के रहने के स्थान), जुते हुए खेत, श्मशान, पर्वत, मन्दिर, नाली, गड्ढे और जीवयुक्त छोटे दह (छिछले गड्ढे) में तथा सूर्य, अग्नि, चन्द्र और देवमन्दिर के सामने मुख करके मलोत्सर्ग नहीं करे।

अथ पुरुषधर्मः

प्रसन्नचित्त एकान्ते भजेन्नारीं [6]मनोरमाम्।
प्रसन्नचित्तां सस्नेहां पुत्रार्थं न हि कामतः॥३५॥

---

१. तद्धर्मगुणावृक्षीः भ २, प १, प २॥
२. वार्ताश्रीयान्मधुं भ १, वार्त्ताश्रीयान्मधुं भ २, प १॥
३. चाशोचन्नं भ १, भ २, प १, प २॥
४. स्मशाने भ १, भ २, प १, प २॥
५. इह भ १, प १, इहे भ २, प २॥
६. मनोरमाः भ २, प २॥

पुरुष प्रसन्नमन हो एकान्त में रमणीया, प्रसन्नचित्तवाली और स्नेहिल नारी को पुत्र के लिए सेवन करे, भोग के लिए नहीं।

प्रसन्नतास्थितो गर्भो जातश्चेद्भाग्यवान् भवेत्।
सुमुहूर्त्ते च विख्यातः स्वातिजं मौक्तिकं यथा।।३६।।

प्रसन्नतापूर्वक धारण किये गर्भ से उत्पन्न (सन्तान उसी प्रकार) भाग्यवान होती है, जैसे स्वाति नक्षत्र में शुभ मुहूर्त में उत्पन्न मोती प्रसिद्ध होता है।

नोपगच्छेत् प्रमत्तोऽपि नारीमार्तवदर्शने।
एकस्मिन् शयनीये च न शयीत तया सह।।३७।।

स्त्री का ऋतु-दर्शन होने पर प्रमत्त (काम विह्वल) होने पर भी (पुरुष को उसके) समीप नहीं जाना चाहिए और न ही उस (राजस्वला स्त्री) के साथ एक शय्या पर सोना चाहिए।

नरो रजोऽभिलिप्ताङ्गां सेवेत स्वां वधूमधीः।
प्रज्ञाकीर्त्तिर्यशस्तेजस्तत् क्षणे च विलीयते।।३८।।

जो बुद्धिहीन पुरुष रज से अभिलिप्त (रजस्वला) अपनी स्त्री का भोग करता है उसकी बुद्धि, कीर्ति, यश तथा तेज एक क्षण में नष्ट हो जाता है।

नाश्नीयात्तया[१] सार्द्धं नाश्नन्तीं तां निरीक्षयेत्।
न जृम्भमाणां नो सुप्तां नाशौचादिक्रियापराम्।।३९।।

पुरुष स्त्री के साथ बैठकर न भोजन करे, न उसे खाते हुए , न उसे जँभाई लेते हुए, न सोते हुए और न शौच आदि क्रिया करते समय देखे।

सूर्यास्तोत्तरकाले च न किञ्चिदपि भक्षयेत्।
नग्नो न हि स्वपेत् कुत्र नोच्छिष्टास्यः क्वचिच्छ्रजेत्।।४०।।

पुरुष सूर्यास्त के बाद कुछ भी ग्रहण न करे, न नग्न होकर सोये, न ही कहीं पर जाये।

न वसेत् षण्डकैः क्लीबैर्निषादैः पतितैरपि।
नान्त्यैर्भ्रष्टैर्मदाविष्टैर्न मन्दैश्चापराधिभिः।।४१।।

(पुरुष) अशक्त, नपुंसक, चाण्डाल, पतित, अन्त्यज, भ्रष्ट, व्यसनी, मन्दबुद्धि और अपराधियों के साथ न रहे।

नोभयाभ्यां च पाणिभ्यां कुर्याच्छिरसि खर्जनम्।
न स्पृशेन्नरमस्पृश्यं न च स्नायाच्छिरो विना।।४२।।

१. ०न्नातया भ १, भ २, प १, प २।।

पुरुष दोनों हाथ से सिर का खर्जन न करे, न ही अस्पृश्य का स्पर्श करे और न ही सिर को छोड़कर स्नान करे।

रतेश्शान्ते[1] चिताधूमस्पर्शे दुःखप्रदर्शने[2]।
क्षौरकृत्ये वमे पञ्च स्नायात्पूतजलैर्नरः।।४३।।

सम्भोग के बाद, चिता के धुँए का स्पर्श करने, दुःख प्रदर्शन करने, क्षौर कर्म और वमन के पश्चात् पुरुष पवित्र जल से स्नान करे।

इत्यादिगुणसम्पन्नः स्वधर्मे तत्परः सुधीः।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय प्रभुं पञ्चनमस्कृतिम्।।४४।।

स्मृत्वा भूत्वा शुचिः कृत्वावश्यकादिक्रियां नरः।
शौचस्नानादिकं कृत्वा अर्च्चित्वा जिनपद्युगम्।।४५।।

नत्वा गुरुं धर्मशास्त्रं श्रुत्वा नियममाचरेत्[3]।
ततः स्वोचितव्यापारे प्रवृत्तो मानवो भवेत्।।४६।।

उपर्युक्त गुणों से युक्त, स्वधर्म में संलग्न बुद्धिमान् मानव ब्रह्म मुहूर्त में उठकर पञ्चपरमेष्ठि को नमस्कार कर, स्मरण (ध्यान) कर, पवित्र होकर, आवश्यकादि क्रिया कर, शौच स्नानादि कर, तीर्थङ्कर के युगल चरणों की पूजाकर, गुरु को नमस्कार कर और धर्म- शास्त्र सुनकर नियम का आचरण करे, तत्पश्चात् अपने उचित व्यापार में प्रवृत्त हो।

धर्मकर्माविरोधेन सकलोऽपि कुलोचितः।
निस्तन्द्रेण विधेयोऽत्र व्यवसायः सुमेधसा।।४७।।

पुरुष आलस्य रहित होकर सद्बुद्धि से धर्म और कर्म के अनुकूल, कुल परम्परा के अनुरूप सम्पूर्ण व्यवसाय को सम्पादित करे।

धर्मराज्यं विरुद्धं [4]लोकविरुद्धं च यद्भवेत्।
तत्कृत्यं न हि कुर्याद्वै [5]बहुलाभेऽपि सर्वथा।।४८।।

जो कार्य धर्म, राज्य और लोक के प्रतिकूल हो सब प्रकार से प्रचुर लाभदायक होने पर भी उसे न करे।

---

१. रतेवान्ते भ १, प १, रत्तेवान्ते भ २, प २।।
२. दुःखप्रदशर्न प २।।
३. माचरे भ २, प १, प २।।
४. लौकवि० भ २, प १, प २।।
५. कुस्नाने भ १, भ २, प १, प २।।

भोजनावसरे भुक्त्वा गुरुदानावशिष्टकम्।
सुखं कृत्वा मुहूर्त्तं च कुर्याद्व्यवहृतिं पुनः।।४९।।
दिवसस्याष्टमं भागं यावत्सत्प्रतिभान्वितः।
ततो भुक्त्वावश्यकादिक्रियां कुर्याद्विचक्षणः।।५०।।

गुरु को दान देने के बाद बचे अन्न का समय पर भोजन कर, मुहूर्त भर विश्राम कर पुनः कार्य में संलग्न होना चाहिए। दिन का आठवाँ भाग शेष रहे तब भोजन कर सद्बुद्धि युक्त बुद्धिमान् पुरुष आवश्यकादि क्रिया करे।

स्त्रीपुंधर्मविचारोऽयं समासेन निरूपितः।
सर्वजीवोपकाराय लोकद्वयहितावहः।।५१।।

इस लोक तथा परलोक दोनों में सभी प्राणियों के परोपकार के लिए यह स्त्री-पुरुष कर्त्तव्य-विचार का संक्षेप में निरूपण किया गया है।

।। इति स्त्रीपुंधर्मप्रकरणम्।।

(वृ०) इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते चौलुक्यवंशभूषणपरमार्हत्-कुमारभूपालशुश्रूषिते लघ्वर्हन्नीतिशास्त्रे व्यवहारनीतिवर्णनो नाम तृतीयोऽधिकारः।

यह चौलुक्यवंशभूषण परमार्हत कुमारपाल राजा के श्रवण की इच्छा से आचार्य श्री हेमचन्द्र विरचित लघु-अर्हन्नीतिशास्त्र में व्यवहारनीतिवर्णन नामक तृतीय अधिकार है।

—o—

चतुर्थ अधिकार

४

प्रायश्चित्तम्

चिदानन्दमयं योगिध्यानतानैकलक्षितम्।
नष्टाष्टदुष्टकर्मारिं श्रीपार्श्वं प्रणिदध्महे।।१।।

चिदानन्दरूप, योगियों के ध्यान के लक्ष्य, आठ कलुषित कर्म रूपी शत्रुओं का नाश करने वाले (तेईसवें तीर्थङ्कर) श्री पार्श्वनाथ की वन्दना करता हूँ।

(वृ०) पूर्वाधिकारान्त्ये प्रकरणे स्त्रीपुंधर्मो निरूपितः ततः स्खलने प्रायश्चित्तस्यावश्यकतातो लौकिकप्रायश्चित्तस्य लौकिकव्यवहाराङ्गत्वेन ज्ञातिदण्डनीतिरूपत्वेन च नीतिसाहचर्याद्वर्णनात्राधिकारे क्रियते –

पूर्व अधिकार के अन्तिम प्रकरण में स्त्री-पुरुष धर्म का निरूपण किया गया। स्त्री-पुरुष धर्म के मार्ग से विचलित होने पर प्रायश्चित्त की आवश्यकता होने से लौकिक प्रायश्चित्त जो लौकिक व्यवहार के साधन जाति द्वारा प्रदत्त दण्डनीति के रूप में होने से नीति से सम्बन्ध होने के कारण इस अधिकार में प्रायश्चित्त का वर्णन किया जाता है –

मातङ्गयवनादीनां म्लेच्छानां [१]सङ्घट्टने नरः।
कुर्याद्यो भोजनं तस्य प्रायश्चित्तमिदं भवेत्।।२।।

चाण्डाल, यवन आदि म्लेच्छों के संसर्ग में जो पुरुष भोजन करे उसका प्रायश्चित्त इस प्रकार होना चाहिए।

उपवासाश्च पञ्चाशदेकभक्तास्तथैव च।
पञ्चैव तीर्थयात्राश्च तथा सधर्मिवत्सलाः।।३।।

पञ्चपूजाजिनानां च शान्तिकापौष्टिकादयः।
सङ्घभक्तिर्गुरौभक्तिर्दानानि च यथाविधि।।४।।

---

१. संघट्टने नरः भ १, भ २, प १, प २।।

जिनोपवीतसंस्कारस्तथा कोशस्य वर्द्धनम्।
जिनज्ञानौषधादीनां तथा च ज्ञातिभोजनम्।।५।।

इति कृत्वा तथा स्नात्वा तीर्थमृत्साजलेन च।
[1]सर्वौषधिविमिश्रेण शुद्धो जायेत मानवः।।६।।

अन्यथा ज्ञातिबाह्यत्वान्नोपवेश्यः स्वपंक्तिषु।
सहभोज्योऽपि तेन स्यात्तुल्यो ज्ञातिबहिष्कृतः।।७।।

पचास उपवास, उसी प्रकार पचास एकाशनायें (दिन में एकबार भोजन), पाँच तीर्थ-यात्रायें तथा पाँच ही साधर्मिक वात्सल्य, शान्ति स्नात्र सहित पाँच तीर्थङ्कर पूजा, विधिपूर्वक सङ्घ-भक्ति, गुरु-भक्ति और दान, जिन शास्त्र-सम्मत यज्ञोपवीत या उपनयन संस्कार तथा (देवद्रव्य) कोश, ज्ञान, औषधद्रव्य आदि में वृद्धि और बन्धु-बान्धवों को भोजन – यह करके सभी औषधियों के मिश्रण से युक्त तीर्थ की मिट्टी एवं तीर्थजल से स्नान कर मनुष्य को शुद्ध हो जाना चाहिये। अन्यथा (उपरोक्त रीति से प्रायश्चित्त न करने पर) जाति से बाहर होने से वह अपनी (जाति की) पंक्तियों में बैठने (भोजन करने) योग्य नहीं है। उसके साथ बैठकर भोजन करने वाला व्यक्ति भी जाति से बहिष्कृत के समान माना जाये।

किरातचर्मकारादिगृहे यो भुक्तिमाचरेत्।
तस्य शुद्धिरियं प्रोक्ता जैनशास्त्रविशारदैः।।८।।

भिल्ल, चर्मकारादि के घर में बैठकर जो भोजन करे उसकी शुद्धि जैन शास्त्रवेत्ताओं द्वारा इस प्रकार कही गई है।

चत्वारिंशच्चोपवासास्तथैवैकाशनानि च।
चतस्रस्तीर्थयात्राश्च त्रयः सधर्मिवत्सलाः।।९।।

चतस्रस्त्वर्हतां पूजाः शान्तिकाद्याश्च पूर्ववत्।
सङ्घपूजा गुरोः पूजा तथा दानान्यनेकधा।।१०।।

संस्कारो ह्युपवीतस्य कोशवृद्धिस्तथैव च।
भोजनं ज्ञातिलोकस्य स्नानं तीर्थमृदादिभिः।।११।।

पूर्वोक्तं सकलं कृत्यं कृत्वा शुद्धो भवेत्स हि।
अन्यथाचारभ्रष्टत्वात् ज्ञातिबाह्यः स जायते।।१२।।

चालीस उपवास, चालीस एकाशनायें, चार तीर्थयात्राओं, तीन साधर्मिक वात्सल्य, पूर्व की भाँति स्नानादि सहित चार तीर्थङ्कर पूजायें, सङ्घपूजा, गुरुपूजा

१. सर्वोषधिविमिश्रेण भ १, भ २, प १, प २।।

तथा अनेक प्रकार के दान, यज्ञोपवीत संस्कार, उसी प्रकार (पूर्वोक्त) देवद्रव्य आदि में वृद्धि, जातीय लोगों को भोजन, तीर्थ की मिट्टी आदि से स्नान आदि उपरोक्त सम्पूर्ण कृत्य सम्पादित कर वह शुद्ध हो अन्यथा आचार-भ्रष्ट होने से वह जाति बहिष्कृत हो जाता है।

अष्टादशानां जातीनां गृहे भोजनकारकः।
प्रायश्चित्तमिदं तस्य चतुर्थास्त्वेकविंशतिः।।१३।।

एकाशनानि तावन्ति तीर्थयात्रात्रिकं तथा।
गुरुसङ्घविदां पूजा पात्रदानं तथैव च।।१४।।

कोशवृद्धिर्जातिभुक्तिर्जिनोपवीतधारणम्।
तीर्थौषधिजलस्नानं सर्वं पूर्ववदाचरेत्।।१५।।

तदा शुद्धिं च संप्राप्तः पंक्तियोग्यो भवेत्स हि।
अग्निपातादिमरणजन्यदोषे समागते।।१६।।

तच्छुद्ध्यर्थमयं दण्डः प्रोक्तश्च जिनशासने।
एकभक्तानि पञ्चाशच्चतुर्थाः पञ्चविंशतिः।।१७।।

आचाम्लाश्च दशख्याताः तीर्थयात्रात्रयं तथा।
साधर्मिकानां वात्सल्यत्रयं च ज्ञातिभोजनम्।।१८।।

जिनपूजास्तथा तिस्रः सत्पात्रे दानमुत्तमम्।
गुरुसङ्घसपर्या च सर्वमन्यच्च पूर्ववत्।।१९।।

इति कृत्वा भवेच्छुद्धोऽन्यथा पंक्तिबहिष्कृतः।
ब्रह्महत्यादिकर्त्तानां तच्छुद्ध्यर्थमयं विधिः।।२०।।

चतुर्थभक्ताः द्वात्रिंशत्पञ्चाशत् चैकभुक्तयः।
आचाम्लाः वर्द्धमानाश्च गुरोरालोचना क्रिया।।२१।।

तीर्थयात्रापञ्चकं च जिनोपचितिपञ्चकम्।
सङ्घपूजा गुरोर्भक्तिर्वात्सल्यं समधर्मिणाम्।।२२।।

ज्ञानमानं जातिमानं सप्तक्षेत्रे धनव्ययः।
पात्रदानं भावशुद्ध्या विधायेति भवेच्छुचिः।।२३।।

अठारह जातियों के घर में भोजन करने वाले का प्रायश्चित्त यह है – इक्कीस चतुर्थभक्त (उपवास), इक्कीस एकाशनायें, तीन तीर्थयात्रायें, गुरु, सङ्घ और विद्वानों की पूजा, पात्रदान (पूर्वोक्त रीति से) देवद्रव्य वृद्धि, जातिभोज,

जिनोपवीत धारण, तीर्थ एवं औषधियुक्त जल से स्नान आदि सभी पूर्व की भाँति करना चाहिए। इसके बाद वह शुद्ध होकर पंक्ति में बैठने के योग्य होता है।

अग्नि में गिरने से हुई अस्वाभाविक मृत्यु तथा इसी प्रकार के अन्य कारणों से हुई दुष्काल मृत्यु से उत्पन्न दोष की शुद्धि के लिए जिन शासन में इस प्रकार दण्ड बताया गया है – पचास एकाशनायें, पच्चीस उपवास, दस आयम्बिल, तीन प्रसिद्ध तीर्थों की यात्रायें, तीन साधर्मिक वात्सल्य और ज्ञाति भोजन, तीन जिनपूजा तथा सत्पात्र को उत्तम दान, गुरु और सङ्घ की पूजा और पूर्वोक्त अन्य सभी (कृत्य) सम्पादित कर शुद्ध होना चाहिए अन्यथा पंक्ति से बहिष्कार करना चाहिए। जिसने ब्रह्म-हत्या आदि किया हो उसकी शुद्धि के लिए यह विधान निर्धारित है–

बत्तीस उपवास, पचास एकाशनायें, वर्धमान तप के आयम्बिल, गुरु के समक्ष आलोचना क्रिया, पाँच तीर्थयात्रायें, पाँच जिन पूजा, सङ्घपूजा, गुरुभक्ति, साधर्मिक वात्सल्य, ज्ञान का मान, जाति का मान, सात क्षेत्रों में धन-व्यय, शुद्ध भाव से पात्र दान कर पवित्र होवे नहीं तो जाति के बहिष्कृत किया जाये।

अन्यथा पंक्तिहीनः स्यात् ज्ञातिदण्ड्यो हि सर्वथा।
आद्यवर्णत्रयाणां च शूद्रादीनां प्रसङ्गतः।।२४।।

भवेन्मिश्रं चान्नपानं तस्य शुद्धिरियं स्मृता।
पूजैका तीर्थयात्रैका नवाचाम्ला निरन्तरम्।।२५।।

पात्रदानं सङ्घभक्तिर्गुरुभक्तिश्च निर्मला।
एवं कृत्वा विमुक्तः स्यात् ज्ञातिदण्डेन नान्यथा।।२६।।

मिथ्यादृक् शूद्रसंसक्तं भोजनं यस्य सम्भवेत्।
तस्य शुद्ध्यै जिनैः ख्याता आचाम्लानां च विंशतिः।।२७।।

द्वादशोपवासानि स्युस्त्रिंशदेकाशनानि च।
सङ्घसेवा पात्रदत्तिर्गुरुसेवा तथा परा।।२८।।

तीर्थयात्रात्रिकं ज्ञातिभोजनं जिनपूजनम्।
एवंकृते भवेच्छुद्धो ज्ञातिबाह्योऽन्यथा भवेत्।।२९।।

प्रथम तीन अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णो का प्रसङ्गवश शूद्रादि वर्णों के साथ भोजन-पान यदि मिश्र हो जाय तो उसकी शुद्धि इसप्रकार कही गयी है –

एक पूजा, एक तीर्थयात्रा, निरन्तर नौ आयम्बिल, योग्य व्यक्ति को दान,

सङ्घ भक्ति और निर्मल गुरुभक्ति कर जाति दण्ड से मुक्त होना चाहिये इसके अभाव में वह मुक्त नहीं हो सकता।

मिथ्या दृष्टि एवं शूद्र के स्पर्शवाला भोजन करने पर अपवित्र हुए व्यक्ति की शुद्धि के लिए तीर्थङ्करों द्वारा बीस आयम्बिल, द्वादश उपवास, तीस एकाशनायें, सङ्घ की सेवा, पात्र को दान, गुरु सेवा तथा तीन तीर्थयात्रायें, जाति भोजन और तीर्थङ्कर पूजा करके शुद्ध हो अन्यथा जाति से बहिष्कृत हो।

दुहितृमातृचाण्डालीसम्भोगे पातकं भवेत्।
तन्नाशार्थं तु पञ्चाशदुपवासाः प्रकीर्तिताः।।३०।।

आचाम्लाश्च त्रयत्रिंशद्दशषष्ठा नवाष्टमाः।
एकाशनानि पञ्चाशत् स्वाध्यायस्य तु लक्षकम्।।३१।।

पञ्चैव तीर्थयात्राश्च पूजाः पञ्चार्हतामपि।
गुरुपूजा सङ्घपूजा पात्रदानादि पूर्ववत्।।३२।।

इति कृत्वा भवेच्छुद्धोऽन्यथा स्यात्पंक्तिवर्जितः।
कारुगृहे च वसतः शुद्धिः पञ्चोपवासकैः।।३३।।

तद्गृहे भुञ्जतः शुद्धिश्चतुर्थैर्दशभिस्तथा।
गोब्रह्मभ्रूणसाधुस्त्रीघातिनामन्नभोजने ।।३४।।

शुद्ध्यै दशोपवासा हि कथिता मुनिपुङ्गवैः।
भेषजार्थं च गुर्वादिनिग्रहे परबन्धने।।३५।।

महत्तराभियोगे च तथा प्राणार्त्तिभञ्जने।
यद्यस्य गोत्रे नो भक्ष्यं न पेयं क्वापि जायते।।३६।।

पुत्री, माता तथा चाण्डाली के साथ सम्भोग करने से हुए पाप के नाश के लिए पचास उपवास कहे गये हैं। तैंतीस आयम्बिल, दस षष्ठ भक्त, नौ अष्टभक्त, पचास एकाशनायें और एक लाख स्वाध्याय, पाँच तीर्थयात्रायें, पाँच जिन पूजा, पूर्वोक्त गुरुपूजा, सङ्घपूजा, पात्र-दान आदि कर शुद्ध हो नहीं तो जाति से बहिष्कृत हो। कारीगर के घर में रहने वाले की शुद्धि पाँच उपवास करने और उसके घर भोजन करने पर दस उपवास से शुद्धि होती है। गाय, ब्राह्मण, भ्रूण, साधु और स्त्री का घात करने वाले (पापियों) का अन्न ग्रहण करने पर मुनि और श्रेष्ठ पुरुषों को दस उपवास के द्वारा शुद्धि करनी चाहिए।

चिकित्सकीय कार्य हेतु गुरु आदि को बाँधना या दबाना, दूसरों को बाँधना, महान पुरुषों के अभियोग तथा प्राण सम्बन्धी कष्ट को दूर करने, जिस जाति के

साथ भोजन और पान वर्जित है उसके साथ भोजन करने पर तीन उपवासों से शुद्धि मानी गयी है।

तद्भक्षणे कृते शुद्धिरुपवासत्रयान्मता।
म्लेच्छदेशनिवासेन म्लेच्छीभूय तदाग्रहात्॥३७॥

म्लेच्छकारानिवासाद्वा यश्चाभक्ष्यस्य भोजनम्।
तथा पानमपेयस्य म्लेच्छादि सह भोजनम्॥३८॥

परजातिप्रवेशं च विवाहकारणादिभिः।
महाहिंसादिकं कुर्यादज्ञानेन च मानवः॥३९॥

विशोधनाद्धि तच्छुद्धिः प्रायश्चित्ताद्भवेदिति।
विशोधनामथ ब्रूमो विस्तरेण निशम्यताम्॥४०॥

मनुष्य यदि म्लेच्छ देश में निवास होने से उन (म्लेच्छों) के आग्रह (दबाव) से म्लेच्छ रूप में रहे अथवा म्लेच्छों की कैद में रहे, अभक्ष्य का ग्रहण तथा अपेय पदार्थ का पान, म्लेच्छादि के साथ भोजन, विवाह आदि कारण से जाति में सम्मिलित हो जाये और अज्ञानवश महाहिंसा आदि पाप करे तो विशोधन से उसकी शुद्धि या प्रायश्चित्त होती है। इसके पश्चात् (उक्त पापों की विशुद्धि का) मैं विस्तार से प्रतिपादन करता हूँ सुनें –

वमनं त्र्यहमाधाय विरेकं च त्र्यहं चरेत्।
वमने लङ्घनं प्राहुर्विरेके यवचर्वणम्॥४१॥

ततश्चैव हि सप्ताहं भूमौ निक्षिप्य चोपरि।
ज्वलनज्वालनं कुर्यात् काष्ठैरुदुम्बरैरपि॥४२॥

तीन दिन वमन करावें, तीन दिन विरेक (रेचक), वमन के दिनों में उपवास कराने और रेचक के दिनों में यव (अन्न-विशेष) का चर्वण कराने का विधान है। उसी प्रकार (इसके पश्चात्) सात दिन भूमि पर सुलाकर ऊपर जलावन से आग कर उसे तपाना चाहिए।

(वृ०) विशोधनप्रायश्चित्तस्वरूपं त्वित्थं –

अर्थात् विशोधन प्रायश्चित्त का स्वरूप इस प्रकार है –

गावं वृषं च संयोज्य कुर्वीत हलवाहनम्।
ज्वलनज्वालने चैव तथा च हलवाहने॥४३॥

कुर्याच्चतुर्दशानि मुष्टिमात्रयवाशनम्।
ततः शिरसि कूर्चे च कारयेदपि मुण्डनम्॥४४॥

सप्ताहं च ततः स्नानं पञ्चगव्येन चाचरेत्।
तत्रापि गव्यदुग्धेन प्राणाधारो न चान्यथा।।४५।।

पञ्चाहं पञ्चगव्यं च त्रिस्त्रिचलुभिराचमेद्।
विधाय मुण्डनं तस्मात् तीर्थोदकसमुच्चयैः।।४६।।

अष्टोत्तरशतेनैव घटानां स्नपयेच्च तम्।
देवस्नानोदकेनापि गुरुपादोदकेन च।।४७।।

तथा शुद्धो देवगुरून्नमस्कुर्यात्समाहितः।
ततः साध्वर्चनं सङ्घार्चनं कुर्याद्विशुद्धधीः।।४८।।

दानं दद्यात्ततः कुर्यात्तीर्थयात्रात्रयं सुधीः।
एवं विशोधनारूपं प्रायश्चित्तमुदीर्यते।।४९।।

बैल तथा गाय को साथ जोड़कर (उनसे) हल कर्षण करावे तो (सात दिन तक) आग सुलगाकर ताप लेना तथा सात दिन हल जोतना चाहिये। चौदह दिन मात्र एक-एक मुट्ठी यव (अन्न-विशेष) का भोजन करना चाहिये। तत्पश्चात् सिर और दाढ़ी का मुण्डन भी कराना चाहिये। इसके बाद एक सप्ताह पञ्चगव्य-गाय से प्राप्त होने वाले पाँच पदार्थ दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर से स्नान करना चाहिये और उस (सप्ताह में) मात्र गाय का दूध ही जीवन का आधार होना चाहिये, कोई अन्य पदार्थ नहीं अर्थात् इन सात दिनों तक केवल गाय का दूध ही ग्रहण करना चाहिये। आगे पाँच दिन तक तीन अञ्जलि पञ्चगव्य से आचमन करना चाहिये, सिर का मुण्डन कराकर, पुनः तीर्थ के जल से एक सौ आठ घड़ों से तथा जिस जल से देवमूर्ति का स्नान कराया गया हो और गुरु के चरणों को प्रक्षालित किया गया हो उस जल से उसे स्नान कराना चाहिये। शुद्ध होकर, दत्तचित्त होकर देव और गुरु को नमस्कार करना चाहिये। इसके पश्चात् निर्मल बुद्धि से साधु और सङ्घ की पूजा करनी चाहिये, दान देना चाहिये, तीन तीर्थयात्रायें करनी चाहिये। इसप्रकार अशुद्धि के विशोधन रूप प्रायश्चित्त का वर्णन किया जाता है।

इत्येवं वर्णिता त्वत्र विशुद्धिः सर्वदेहिनाम्।
समासतो विशेषस्तु ज्ञेयो ग्रन्थान्तराद्बुधैः।।५०।।

इस प्रकार समस्त मनुष्यों की विशुद्धि यहाँ संक्षेप में वर्णित की गई। विद्वानों को विशुद्धि के विषय में विशेष विवरण अन्य ग्रन्थों से जानना चाहिए।

(वृ०) इति लौकिकप्रायश्चित्तस्वरूपम्

अथ ग्रन्थोपसंहारमाहित्थम् –

चतुर्विंशतितीर्थनाथस्तुत्या विघातौघविनाशभावात्।
यत्सूत्रितं सर्वजनोपकृत्यैभूयात्प्रजाभूमिपबोधहेतुः।।५१।।

इस प्रकार चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति द्वारा विघ्न समूह के विनाश के भाव से समस्त जनों के उपकार के लिये जिस अर्हन्नीतिशास्त्र को सूत्र रूप में निबद्ध किया गया वह प्रजा और राजा दोनों के ज्ञान के लिये हो।

(वृ०) अत्रादिमङ्गलाचरणे प्रथमचरमतीर्थङ्करनमस्कृत्या ग्रन्थान्तःकरणेषु मध्यमद्वाविंशतितीर्थकृदनुत्या चतुर्विंशतिस्तवो ज्ञेयः।

इस लघुअर्हन्नीतिशास्त्र में आरम्भ के मङ्गलाचरण में प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर को नमस्कार कर ग्रन्थ के अन्दर मध्य के बावीस तीर्थङ्करों की वन्दना की गई है अतः चौबीस तीर्थङ्करों का मङ्गलस्तवन जानना चाहिए।

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते चौलुक्यवंशभूषणपरमार्हत्कुमारभूपाल-शुश्रूषिते लघ्वर्हन्नीतिशास्त्रे लौकिकप्रायश्चित्तविधिवर्णनो नाम चतुर्थोऽधिकारः।।४।।

चौलुक्यवंशभूषण परमार्हत कुमारपाल राजा की श्रवण-इच्छा से आचार्य श्री हेमचन्द्र विरचित लघुअर्हन्नीतिशास्त्र में लौकिक प्रायश्चित्त विधि वर्णन नाम का चतुर्थ अधिकार है।

।। समाप्तोऽयं ग्रन्थः।।

।। लघु-अर्हन्नीतिशास्त्रम् समाप्तम्।।

—o—

श्लोकानुक्रमणिका

अकूटं कूटमेवं च कूटं ३.१७.२५
अगम्यास्पृश्यनारीणां विधेयो १.३३
अङ्गरक्षान्सौविदल्लान् १.४५
अङ्गीकृतेऽपि क्षेत्रे नो कृषिं ३.६.३१
अचेतनैः क्रीडनं यत्तद्द्यूत ३.१५.३
अज्ञत्वात् सारथेर्युग्यमन्यत्र ३.१८.१८
अज्ञानेन प्रमादेन यो नाशयति ३.६.२७
अतीचाराद्बुधैर्नित्यं रक्षणीया ३.१९.५
अत्यास्तिक्यादिमतिषु १.६४
अदत्तग्राहको लोभात्तथादेयस्य ३.४.१७
अदासस्त्वमतो जातो दासत्वं ३.७.१६
अदृष्टपूर्वस्त्रीभिर्यो राजाध्वनि ३.१४.५
अधमर्णः स्वयं लाति मिषम् ३.२.३७
अनपत्ये मृते पत्यौ सर्वस्य ३.५.११४
अनिश्चिते वेतने तु कार्या ३.७.१८
अनुजानां लघुत्वेऽनुमतौ ३.५.२०
अनेककृतकार्ये तु दद्याद्भृत्याय ३.७.२०
अनेकसाध्ये कार्ये तु देयं ३.७.२२
अन्यथा ज्ञातिबाह्यत्वान्ना ४.७
अन्यथा पंक्तिहीनः स्यात् ४.२४
अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येत ३.१९.२०
अन्योऽन्यकलहादेश्च रक्षयन् ३.१५.५
अपराधसहस्रेऽपि योषिद् १.३७
अपुत्रपुत्रमरणे तद्द्रव्यं ३.५.१११
अपुत्रे निधनं प्राप्तेऽनेकै ३.३.६
अप्रजा मनुजः स्त्री वा ३.५.५८
अप्रमादाः प्रसन्नाश्च प्रायः १.९३
अभक्ष्यभक्षके विप्रे दण्ड २.२.१५
अयुध्यमानं शत्रुं २.१.६३
अर्जितं येन यत्किञ्चित्त ३.५.१३४
अर्थिना स्वयमानीतो यः ३.१०.३५
अर्थिनोऽनुचरो मित्रं ३.१.५२
अर्थिन्यसत्ये दण्डचः स ३.१०.१३
अर्थिप्रतिज्ञां दृष्ट्वैव प्रत्यर्थी ३.१.३०
अर्थिप्रत्यर्थिनोः स्यातां ३.१.६४
अर्थी स्वनामयुक्लेखपत्रं ३.२.६
अवत्सानां स्थितानां च चरित्वा ३.९.३
अवार्यवीर्यो गाम्भीर्यौदार्य १.३०
अविनाश्य पितुर्द्रव्यं भ्रातृणाम ३.५.१३२
अविभक्तं क्रमायातं श्वसुरस्वं ३.५.१००
अविभक्ता सुताभावे कार्ये ३.५.१२५
अविभागे तु भ्रातृणां व्यवहार ३.५.१२९
अव्यङ्गो १ लक्षणैः पूर्णः १.२५
अशक्ताः स्थविरा बाला कुलजा ३.१.२२
अष्टादशानां जातीनां गृहे ४.१३
अष्टावमी पुत्रकल्पा जैने ३.५.७२
अष्टोत्तरशतेनैव घटानां ४.४७
असन्दिग्धमिति प्रोक्तं सूत्तरं ३.१.३१
असंस्कृतान्यपत्यानि संस्कृत्य ३.५.१९
असाध्यमप्रसिद्धं च निरुद्धं ३.१.१६
आगतश्चेत्कोऽपिभूपो निश्चित्य ३.३.१०
आगत्य च सभामध्ये १.७४
आगत्य सर्व्वलोकेभ्यस्ताम्बूल ३.५.६२
आगत्य साक्षिणो ब्रूयुः ३.१.४३

आचाम्लाश्च दश ख्याता	४.१८	इत्यादिगुणसम्पन्नः स्वधर्मे	३.११.४४
आचाम्लाश्च त्रयस्त्रिंशद्	४.३१	इत्येते षड्गुणा नित्यं	२.१.८
आचार्यं पाठकं चापि गां	२.२.३२	इत्येवं कैतवं कृत्वा भयं	३.१०.२४
आचार्यं पितरं बन्धुं मातरं	३.१२.१७	इत्येवं दण्डनीतीनां	२.२.३५
आत्मजो दत्रिमादिश्च विद्याभ्यासे	३.५.८२	इत्येवं वर्णितस्त्वत्र दायभागः	३.५.१४६
आत्मनश्चेन्नृपः पश्येद्	२.१.९	इत्येवं वर्णिता चात्र युद्ध	२.१.७३
आत्मानं यदि दुर्गोऽपि रक्षितुं	२.१.१४	इत्येवं वर्णिता त्वत्र विशुद्धिः	४.५०
आत्मा वै जायते पुत्रः पुत्रेण	३.५.३१	इत्येवं वर्णिता नारीग्रहचिन्ता	३.१४.२६
आदानाह्वो नियोगाह	३.२.१७	इत्येवं वेतनादानस्वरूपं	३.७.२७
आधिस्तु नैव भोक्तव्यो भुक्ते तु	३.२.३०	उत्तमो दण्ड इत्युक्तः	२.२.२६
आध्यादिद्रव्यं लोभान्निह्नुते	३.२.६२	उदरमुपस्थं जिह्वा हस्तौ	२.२.२४
आप्रतिज्ञान्तमेकापि न दत्ता /	३.२.११	उद्याने विजने गत्वा प्रासादे	२.१.३
आप्राप्तव्यवहारेषु तेषु माता	३.५.१०	उन्मत्तश्च तथा कुद्धः	३.५.१८
आरामं गच्छता येन दर्पा	३.१८.८	उन्मत्तो व्याधितः पङ्गुः षण्डो	३.५.९१
आर्तातिवृद्धबालास्वाधीनो	३.२.५१	उपक्षेत्रगृहाणां च सीमा	३.१७.११
आर्यवेदचतुष्कं हि जगत्स्थित्यै	१.१९	उपजीव्यधनं लुञ्चन्	२.२.१९
आवश्यकक्रियोद्युक्ता उन्मत्ता	३.१.२३	उपवासाश्च पञ्चाशदेकभक्ता	४.३
आसिद्धिकर्मोद्योगी च	१.२८	उपायार्जितराजश्री	१.२९
आहवे सैव प्राची दिक् यतः	२.१.४९	उभयोः साक्षिणोऽसत्याः	३.१.६१
आहूतगृह्यगुरुणा कारयेज्जात	३.५.६३	उभयोः साक्षिणो ग्राह्या निस्पृहाः	३.१.४२
आहूतान् साक्षिणः सर्वान्	३.१.४४	उभानुमतिमादाय कार्यः साक्षी	३.१.६३
इति कृत्वा तथा स्नात्वा	४.६	एककृत्ये प्रतिभुवः बहवः	३.२.२६
इति कृत्वा भवेच्छुद्धा	४.३३	एकदा वीरभगवान् राजगृहाद्	१.८
इति कृत्वा भवेच्छुद्धो	४.२०	एकपक्षस्वरूपाप्तिं साक्ष्यं	३.१.५१
इति प्रथमप्रश्नस्योत्तरं	१.२३	एकानेका च चेत्कन्या	३.५.२४
इति संक्षेपतः प्रोक्त ऋणादानक्रमो	३.२.६४	एकासनाशनं देहे गन्धलेपनं	३.१४.७
इति संक्षेपतः प्रोक्तो निक्षेपविधिः	३.१०.४१	एकाशनानि तावन्ति तीर्थयात्र	४.१४
इति संक्षेपतः प्रोक्तः सीमावादस्य	३.६.३२	एकैकविषयासक्तो	३.१.१८
इत्थं चतुर्विंशतितीर्थनाथ	४.५१	एतत्स्त्रीधनामादातुं न शक्तः	३.५.१४२
इत्थं समासतः प्रोक्तं वाक्पारुष्यं	३.१२.१८	एतद्द्वयं निगदितं बुधैरु	१.५२
इत्थं समासतः प्रोक्तं स्तैन्य प्रकरणं	३.१६.३३	एताः सत्त्वे भियोगस्यासत्त्वे	२.२.५
इत्थं समासतः प्रोक्ता	३.१५.१२	एवं देयविधिः प्रोक्तः सभेदो	३.४.१८
इत्थं समासतः प्रोक्तो	३.१.६८	एवं पूर्वोक्तविधिना जयं	२.१.७१

एवं प्रोक्तात्र समयव्यतिक्रान्तिः ३.१३.१२
एवमन्येपि भेदाः स्युः ३.१.९
एवं सङ्गच्छतस्तस्य २.१.४१
एवं संक्षेपतः प्रोक्ता साहसस्य ३.१७.३३
एवं स्तैन्यादिदुःखेभ्यो ३.१६.३२
एषः समासतः प्रोक्तो दण्ड ३.१८.२६
एषा द्यूतक्रिया लोके ३.१५.११
एषां तु पुत्रपत्न्यश्चेच्छुद्धा ३.५.९३
ऋक्थिनो स्वगृहे कस्माद्धनं ३.२.५५
ऋक्थी वासांसि भूषाश्च ३.२.४५
ऋणादानं च सम्भूयोत्थानं ३.१.५
ऋणाद्युत्तरदाने चावधौ ३.१.२७
ऋणी स्वयं न दत्ते चेद्भूपो ३.१८.१३
औरसो दत्रिमश्चेति मुख्यौ ३.५.६८
कदापि न हि मोक्तव्यो १.४३
कन्याङ्गे विकृतिं या स्त्री कुर्यात् ३.१४.१४
कन्यामृतौ व्ययं शोध्य देयं ३.५.१२७
कर्मोदयेन मर्त्यस्य सन्ततिर्न ३.१०.२
कलासु कृतकर्म्मा च १.२६
कश्चिच्चोपनिधेर्हर्ता भूपेन ३.१०.२१
कषाविंशतिभिर्वैश्यं ३.१८.४
काञ्जिकं क्वथितान्नं च १.३६
काणान्धखन्जकुष्ठ्यादीन् ३.१२.१६
कामचारे त्वयं दण्डोऽकामे ३.९.६
कारणीया ततो दण्डो गृह्यते ३.१८.२४
कारयित्वा च सर्वस्वम् २.२.२९
कारुण्याद्युग्मजातानां छित्वा १.१५
कार्पासे सौत्रिके चौर्णे ३.८.१०
कार्यं मुहुर्मुहुः पृष्टो कार्य ३.१०.३६
कार्यसिद्धिं विधायाशु गणकार्य ३.१३.७
कार्यसिद्धिः प्रियालापैः साम २.१.१७
कालचक्रेण सोऽनूढः ३.५.१२१
काले व्यतीते नियते ३.२.५
किन्तु त्राता न कोऽपिस्यात्तदा ३.५.८१
किरातचर्मकारादिगृहे ४.८
कुटुम्बपालने शक्ता ज्येष्ठा या ३.५.५३
कुटुम्बार्थं कृतं पित्रा ज्येष्ठभ्रात्रा ३.२.५२
कुटुम्बावनधर्मापन ३.२.३
कुमारपालक्ष्मापालाग्रहेण १.६
कुर्यात्पितावशिष्टं तु भागं धर्म्ये ३.५.३८
कुर्याच्चतुर्दशाहनि मुष्टि ४.४४
कुर्वन्तो न निवार्याः स्यु ३.१४.१३
कुलक्रमागतं मात्रं नृपयोग्य १.६६
कुलजातिवयोवर्षमास ३.१.२६
कुलशुद्धाः सर्वमान्याः कार्यचिन्ता ३.१३.१०
कुलीनः कुशलो धीरो दाता १.६१
कुलीनाः कुशला धीराः शूराः १.९०
कुल्याः कुल्यविवादेषु विज्ञेयास्ते ३.१०.३०
कूटमानतुलाभिर्यः शासनै ३.१७.२४
कृतमासप्रतिज्ञोऽपि मिषं ३.२.१४
कृतस्नानार्चनान्पूर्वं ३.१.४५
कृताञ्जनादिसंस्कारा पुष्प ३.१९.१५
कृतापराधसौदर्ये शत्रावपि १.६३
कृत्वा प्राभातिकं कृत्यं स्नात्वा १.७२
कृषिवाणिज्यशिल्पादि १.१६
कोशवृद्धिर्ज्ञातिर्भुक्ति ४.१५
क्रयक्रीतो भवेत्-क्रीतः ३.५.७०
क्रयेतरानुसन्तापो विवादः ३.१.६
क्रयेतरानुसन्तापः संक्षेपेणात्र ३.८.१३
क्रियापेक्षो हि दण्डोऽयं ३.१७.४
क्रीतं प्रत्यर्पितुं वस्तु ग्राहक ३.८.६
क्रीतमूल्यं वेतनं च प्रीत्या ३.४.६
क्रेता पणेन पण्यं यः क्रीत्वा ३.८.२
क्रोधाल्लोभात्तथोत्सेका १.६७
क्षत्रब्राह्मणवैश्यानां स्त्रीं ३.१४.१७
क्षत्राक्रोशे शतं सार्धं वैश्या ३.१२.१२

क्षत्राज्जातः सवर्णायामर्ध	३.५.३९	घातकाद्घातशांत्यर्थमौषध	३.१८.११
क्षत्रियद्विजयोर्मोहात् काष्टधातु	३.१८.३	चक्रसागरव्यूहाद्यैर्विविधा	२.१.५०
क्षुद्रजीवविनाशे तु द्विशतं	२.२.१३	चक्रवृद्धिः स्मृता चाद्या	३.२.१०
क्षुद्रतिर्यग्वृषादीनाम	३.१७.१५	चतस्रस्त्वर्हतां पूजाः	४.१०
क्षेत्रग्रामतडागादि वाटस्वं	३.२.४६	चतुर्थदिवसे स्नात्वेक्षेतास्यं	३.१९.६
क्षेत्रोपकृतिहेतूनां वस्तूनां	३.१७.५	चतुर्थभक्ताः द्वात्रिंशत्	४.२१
खड्गकुन्तादिशस्त्रैः	२.१.५२	चतुर्थेऽह्नि कृतस्नाना	३.१९.१३
गच्छगच्छेतिपूत्कारे कृते	३.१८.१७	चतुर्वर्णजनोद्भूतमपराधं	३.१४.२१
गणिका लिङ्गिनी दासी	३.१९.२९	चतुर्वर्णेषु यः कश्चित् दृष्ट्वा	३.१८.५
गणेशान् पुण्डरीकादीन्	१.३	चत्वारः प्रथमे तत्र शुभकर्मकराः	३.७.३
गतप्रत्यागते भृत्ये	२.१.३६	चत्वारिंशच्चोपवासा	४.९
गत्वाभिप्रायसर्वस्वं राजानं	३.२.१६	चिह्नं निर्णयकृत्तत्र द्रष्टव्यं	३.६.६
गन्धधान्यगुडस्नेह	३.१७.२९	चिह्नज्ञाता न कोऽप्यस्ति	३.६.२३
गावं वृषं च संयोज्य कुर्वीत	४.४३	चिदानन्दमयं योगध्यानता	४.१
गुडाज्यक्षीरदध्नां च सिता	३.१६.१९	चेत्साक्षिणोऽनृतं ब्रूयुः	३.६.२२
गुप्तसाक्षी स विज्ञेयोऽर्थिनः	३.१०.३९	चेदस्त्यं द्वयोर्वाक्यं राज्ञा	३.१०.१८
गुरुदेवभिदः शत्रून् चौरान्	१.५९	चेद्द्वयस्त्वद्गृहस्थानि वस्तूनि	३.१०.२३
गुरुधर्म्यात्मवृद्धस्त्रीबाल	३.१६.३०	चौरान् धूर्तान्निगृह्णन् यो भूपः	३.१६.८
गुरुश्चेत्तर्हि तत्पादनतिं	१.७३	चौरैर्हृत्वा तु विक्रीतो बला	३.७.८
गुल्मान्प्रधानपुरुषाधिष्ठितानि	२.१.४५	छत्राधस्तं च संस्थाप्य मार्जयित्वा	३.७.१५
गृहारामादिवस्तूनि स्थावराणि	३.५.४	जगन्नाथं सनाथं चाद्भुत	२.१.१
गृहीतद्रव्यो निःस्वश्चेत्	३.२.२५	जयकुञ्जरमारूढः	२.१.४८
गृहीते दत्तके जात औरस	३.५.६६	जयपत्रं ततो देयं सीमा	३.६.२५
गृहीत्वा दत्तकं पुत्रं	३.५.१२०	जयवादित्रनिर्घोष	२.१.७२
गृहीत्वार्णं ऋणी गच्छेद्	३.२.१५	जये च लभ्यते लक्ष्मीर्मरणे	२.१.१६
गृह्णाति जननीद्रव्यमूढा च	३.५.३२	जये जाते नृपो दद्याद्यो	२.१.६९
गृह्णीयाद्दत्तकं पुत्रं	३.५.१०९	जलाशयाः प्रभूताश्च तृण	२.१.४२
गोऽजाविमहिषीदासाश्चाधिं	३.२.३९	जलाग्निचौरैर्यन्नष्टं तन्निक्षेप्ता	३.१०.१६
गोप्यभोग्यतया सोऽपि द्विविधः	३.२.२९	जागरूको दीर्घदर्शी सर्वशास्त्र	१.८०
गोर्वधे ताडने स्तेये पारुष्ये	३.२८	जातिदोषं वदेन्मिथ्या ब्राह्मणे	३.१२.१३
गौर्वत्समिव भूपोऽपि प्रीत्या	३.३.११	जाते महापराधेऽपि	२.२.१०
ग्रामीणः प्राड्विवाकश्च भूपश्च	३.१०.२९	जातेनैकेन पुत्रेण पुत्रवत्यो	३.५.९७
ग्राह्यस्याग्रहणाद्भूयो	३.२.५७	जाते विवादे दण्ड्या स्युः	३.३.५

जानंस्तस्करवृत्तान्तं प्रजादुःखं	३.१६.१२	तत्र सीमा भवेद्भूमिमर्यादा	३.६.२
जामाता भागिनेयश्च	३.५.११७	तत्रादावुपयोगित्वान्नृपाणां	१.२४
जामातृभागिनेयेभ्यः सुतायै	३.५.१२२	तत्राद्यं दण्डनीतीनां त्रिकं	२.२.६
जायन्तेऽनेकरूपाणि	३.१९.१८	तत्रापि यदि शङ्का स्यात्सो	२.१.१५
जिते पराजितेऽन्योऽन्यं	३.१५.७	तत्समाख्याहि भगवन् कृपां	१.१२
जिनपूजास्तथा तिस्रः	४.१९	तथा कुर्याद्यथा न स्याद्विग्रहो	२.१.२७
जिनोपवीतसंस्कारस्तथा	४.५	तथापीशो व्ययं कर्तुं न	३.५.१०३
जीवत्पितामहे तातो दातुं	३.५.७	तथा शुद्धो देवगुरून्नमस्कुर्या	४.४८
जीवनाशाविनिर्मुक्तः	३.५.४५	तदभावे च ज्ञातियैस्तदभावे	३.५.७४
जीवनाशे तु दण्डयः स्यात्	३.१८.२२	तदागमनवृत्तान्तं श्रुत्वा	१.९
जीवोत्पत्तेरियं भूमिर्योनिः	३.१९.१७	तदार्य्यैस्तत्परित्यज्य	१.२१
जेतव्यवर्षे निम्नोच्चजल	१.८४	तदालोच्य पुनश्चार्थी	३.१.३४
ज्ञात्वेति साधनं ब्रूयुः साक्षिणस्ते यथायथम्		तदा शुद्धिं च संप्राप्तः	४.१६
ज्ञानमानं जातिमानं सप्तक्षेत्रे	४.२३	तदा सर्वापराधानां नृपः	३.१४.२२
ज्ञापयित्वा तदुदन्तमृणी	३.२.३४	तदीयाज्ञां गृहीत्वा च सर्वैः	३.५.८७
ज्ञायते युद्धसज्जः स	२.१.४४	तदुद्धृत्य समानीतं लब्धं	३.५.१३३
ज्येष्ठ एव हि गृह्णीयात्	३.५.२३	तदैवापणभूवास्तुग्राम	३.५.६४
ज्येष्ठादिपुत्रदायादाभावे	३.५.११५	तद्गृहे भुञ्जतः शुद्धि	४.३४
तं पुनःस्थापयेद्बन्दिगृहे	३.१६.१४	तद्दिने चित्तविक्षेपं क्रोधं	३.१९.१४
तच्छुद्ध्यर्थमयं दण्डः	४.१७	तद्देववह्नियात्रापोगुरूणां	३.१.६४
ततः कुटुम्बपुष्ट्यर्थं स्तैन्यादि	३.१०.३	तद्द्रव्यमतियत्ने रक्षणीयं	३.५.५०
ततः परमनायाते तत्सबन्धिनि	३.३.७	तद्धर्मगुणवृत्तीः सा धरयिष्यति	३.१९.३०
ततश्चैव हि सप्ताहं भूमौ	४.४२	तद्रक्षणे कृते शुद्धि	४.३७
ततो जगाद भगवान् शृणु	१.१३	तन्मृतौ तद्भवः स्वामी	३.५.११६
ततो मूल्यं स आप्नोति	३.११.८	तस्कराणां लुण्टकानां	३.१६.२८
तत्तु कालान्तरे भ्रष्टं जातं	१.२०	ताड्यो गोपस्तु गोमी च	३.९.५
तत्पुत्रो भरतश्चक्रे निधाय	१.१८	तानाश्रित्य जनो लोकव्यवहारे	१.२२
तत्प्राज्ञेन विचार्यैवं धर्मशास्त्रा	३.१९.२१	तार्क्ष्यशूकरव्यूहाभ्यां	२.१.३८
तत्र जैनागमे दण्डनीतयः	२.२.२	तिथिवारादिकं सर्वश्रुतं जातिं	३.१२.१५
तत्र द्विजे मेति दण्डः हेति	२.२.९	तिर्यङ्मनुजभौपानां चिकित्सां	३.१७.२६
तत्र प्रभूत्साहमन्त्राः शक्तयः	१.५५	तीर्थे कूपे वने स्थाने विजने	३.१४.६
तत्र वर्षत्रयं स्थाप्यो मोचयेत्	३.१६.१६	तीर्थयात्रापञ्चकं च जिनो	४.२२
तत्र सर्वस्वहरणं तदङ्गछेदनं	३.१७.८	तीर्थयात्रात्रिकं ज्ञातिभोजनं	४.२९

तुर्यकृत्वस्तदर्द्धांशमर्द्धे ३.१७.२३
तुर्यांशं प्रदाप्यैव दत्तः कार्यः ३.५.६७
तुल्येन कर्मणा दास्यान्मुच्ये ३.७.१२
तेऽपि रक्तांशुकं धार्य ३.६.१७
तेषां विज्ञापनं सम्यक् श्रुत्वा १.१०१
तैलमोदकपक्वान्नगुल्मवल्ली ३.१६.२०
तं संस्करोति चेत्काऽपि तर्हि ३.६.३०
त्रिधा तल्लघुमध्योत्तमादि ३.१७.३
त्रिंशद्भागक्षयो रोमजाते ३.८.१२
त्वया परबलावेशो बुध्या १.८६
दण्डस्तेषां क्रमात् ज्ञेय ३.१७.२०
दण्डो हि वधपर्यन्तोऽपकारः २.१.१८
दण्ड्यः सप्तमभागेन लग्नात्पूर्वं ३.७.२५
दण्ड्या न लोभतः केचिन्न १.४१
दण्ड्यो दशमितैरौप्यैर्भिन्नः ३.१७.१४
दण्ड्यो द्विजां द्विजो गच्छन् ३.१४.१८
दत्तगृहादिकं सर्वं कार्यं ३.५.१०८
दत्तं द्रव्यं च यत्तद्वै वस्तुता ३.४.९
दत्वा तु खातकं गेहे द्रव्यं ३.१६.२२
दत्वा लेखं स्वनामाङ्कं ३.५.४६
ददद्द्वितीये दिवसे पण ३.८.७
द्रव्यं दत्वा च यः सम्यगादातुं ३.४.३
दानपूजादिजं पुण्यमसत्येन ३.१.४८
दानं दद्यात्ततः कुर्यात्तीर्थं ४.४९
दापयेद्‌ऋणिना द्रव्यं साक्षिणस्ते ३.१.५९
दायश्च विक्रयश्चापि स्वाम्य ३.११.४
दायो भवति द्रव्याणां तद्द्रव्यं ३.५.३
दासं स्वीयमदासं यः कर्त्तु ३.७.१४
दासाः पञ्चदश ख्याता गृहजः ३.७.५
दास्यां जातोऽपि शूद्रेण भागमाक् ३.५.४४
दिनं सप्तदिनं पक्षश्चात्र ३.८.५
दिवसस्याष्टमं भागं यावत् ३.१९.५०
दिव्ये गृहीतेअ सत्यत्वं साक्षिणां ३.१.५३
दिव्येन वा शोधयित्वा वस्तु ३.११.९
दीनान्महार्घवस्तूनां क्रेता ३.११.५
दुःखागारे हि संसारे पुत्रो ३.५.११
दुरिताकराशुचिगृहं संप्रेक्ष्य ३.१४.२३
दुष्टस्य दण्डः सुजनस्य पूजा १.४४
दुहिता पूर्वमुत्पन्ना सुतः ३.५.२९
दुहितृमातृचाण्डालीसम्भोगे ४.३०
दूतद्वारेण यज्ज्ञातं परोयोद्धुं २.१.२६
देयं तदेव विज्ञेयं यस्यापर ३.४.१३
देवद्विजगुरूणां च लिङ्गिनां १.३८
देवयात्रोत्सवे रङ्गे चत्वरे ३.१९.२७
देवस्थाने च सरिति गर्ते ३.१९.३४
देवान् गुरून् द्विजांश्चैव १.३१
देवान्गुरूंश्च शस्त्राणि पूजयित्वा २.१.४६
देवान् गुरूंश्च सम्पूज्य दाने २.१.६६
देवार्याय नमस्तस्मै १.२
देशकालानुसारेण कृत्य ३.१.२४
देशं कालं बलं पक्षं षड्गुण्यं १.८८
देशस्थानाख्यजाति ३.१.१४
दैवपैत्र्यान्नभोजी च शूद्र ३.१७.१३
द्रव्यलोभाद्विवाहादौ ३.१७.१८
द्वादशोपोषणानि स्युस्त्रिंश ४.२८
द्वारमार्गविवादेषु जलश्रेणि ३.२.५८
द्विजोऽयं चौर इत्युक्त्वा ३.१२.६
द्विधा कृत्वा बलं स्वीयं २.१.७
द्विपदापच्चतुष्पादखचरै ३.१५.२
धनापहः शस्त्रपाणिः वह्निदो २.२.३३
धनी नो दद्याद्वृद्धिं तु ३.२.४१
धर्मकर्माविरोधेन सकलो ३.१९.४७
धर्मतश्चेत् पिता कुर्यात्पुत्रान् ३.५.१६
धर्मपत्न्यां समुत्पन्न औरसो ३.५.६९
धर्मराज्यविरुद्धं लोकविरुद्धं ३.१९.४८
धर्मार्थकामान् सन्दध्या १.३९

धर्मार्थमुपदेशं हि दातुं ३.१२.१४
धर्मिणः प्रतिभायुक्ताः शुचयो ३.१३.९
धान्यं हरन् कृषेर्दण्ड्यः ३.१६.२१
धारणार्थमलङ्कारो भर्त्रा दत्तो ३.५.१४३
न गृह्णीयादनादेयं क्षीणशक्ति ३.२.५६
न तदा दोषभाक् सः स्यात् ३.१६.३१
नद्यादिध्वस्तचिह्नेषु भूप्रदेशेषु ३.६.१८
नद्या भूपेन वा क्षेत्रं हृतं ३.२.३२
नत्वा गुरुं धर्मशास्त्रं श्रुत्वा ३.१९.४६
नत्वा नमिजिनं सम्यग् धर्म ३.१८.१
नत्वारनाथं श्रीयुक्तमन्तरङ्ग ३.१५.१
नत्वा श्रीकुन्थुतीर्थेशं स्वान्त ३.१४.१
नत्वा श्रीशीतलं देवं संसारां ३.७.१
नत्वा श्रीसुव्रतं देवं दुःखानल ३.१७.१
न पक्षपातो नोद्वेगस्त्वया १.४९
न भोक्तव्योऽशुकाद्याधिः ३.२.४४
नरो रजोऽभिलिप्ताङ्गां ३.१९.३८
न वसेत् षण्डकैः क्लीबै ३.१९.४१
न विभाज्यं न विक्रेयं स्थावरं ३.५.५
न शक्नोति नियोगं ३.१.५५
नष्टं चापहृतं वस्तु मदीयमिति ३.११.७
नष्टं चापहृतं वस्तु समासाद्य ३.११.१०
नष्टे तु मौल्यं देयं स्याद् ३.२.३१
न स्पृशेद्वस्तुमात्रं हि न ३.१९.१०
न स्पृष्टं क्वापि भोक्तव्यं १.३२
न हन्यात्तापसं विप्रं २.१.६१
न हि सापि व्ययं कर्तुं ३.५.१०६
नातिरूक्षैर्विषाक्तैर्न २.१.५९
नायाति कोऽपि चेद्भूयो भूप ३.३.९
नायुध्यमानं नो सुप्तं रोगार्तं २.१.६२
नार्ताश्नीयान्मधु तैलमुच्छिष्टं ३.१९.३२
नाशयेद् भूमिलोभेन सीमा ३.६.२६
नाश्नीयान्न तया सार्द्धं नाश्नन्ती ३.१९.३९
निःक्रोधाश्च निरालस्या धर्मज्ञाः ३.१.३९
निःस्नेहा चलचित्तत्वात् ३.१९.२५
निकुञ्जे द्रुमसङ्कीर्णे बाणैः २.१.५३
निक्षिप्तं यो धनं ऋक्थी ३.१०.१९
निक्षेपापह्नुतिं कर्त्रो समाधैः ३.१०.१७
निक्षेप्त्रा लेखपत्रे चेत्पुत्रनाम ३.१०.१५
निजमुद्राङ्कितं बन्धं कृत्वा ३.१०.१४
नित्यमाचारनिरतः १.६५
निधापयेद्वन्दिगृहे यत्र न स्याच्च ३.१६.१७
निरुत्तरः क्रियाद्विष्टो ३.१.३६
निर्णेजकश्च रजको गृहीत्वा ३.१७.१७
निर्यातौ नोभयौ चेत्तत् ३.६.१६
निर्लोभाश्च विजातीयाः श्रुता ३.१०.३३
निर्वाहमात्रं गृह्णीयात् तद ३.५.१०२
निह्नुते कोऽपि चेज्जाते ३.५.१२८
निह्नुते नूतनं वस्त्रं दातु ३.१७.१९
नीतियुद्धेन योद्धव्यं २.१.६०
नीतिस्त्रिधा युद्धदण्डव्यवहारैः २.१.५
नृपतेः परमो धर्मः स्वप्रजा ३.१६.२
नृपस्तत्रैव सीमाया लिङ्गानि ३.६.१५
नृपस्याक्रोशकर्त्तारं २.२.१६
नृपाज्ञापत्रं तत्रैव गच्छेद् ३.१.२१
नृपामात्यौ यदि स्यातां १.७०
नृपेण ग्रामलोकैश्च रक्षणीया ३.९.११
नृपो लेखं निरीक्ष्यैव विविच्य ३.२.३८
नेत्रभेदनकर्त्ता यो २.२.२१
नेमिं नत्वा मुदा नेमिं ३.१९.१
नैवारोप्या गुरून्मुक्त्वा १.३५
नोपगच्छेत् प्रमत्तोऽपि नारी ३.१९.३७
नोभयाभ्यां च पाणिभ्यां ३.१९.४२
पञ्चपूजा जिनानां च शान्ति ४.४
पञ्चमाषैस्तु दण्ड्यः २.२.१४
पञ्चाहं पञ्चगव्यं च त्रिस्त्रिचलु ४.४६

पञ्चैव तीर्थयात्राश्च पूजा ४.३२
पतिसेवा सुतोत्पत्तिस्तद्रक्षा ३.१९.२३
पत्नी पुत्रश्च भ्रातृव्याः ३.५.७३
पद्मप्रभं जिनं नत्वा पद्माभं ३.३.१
पद्मव्यूहे निवासे हि सदा २.१.४०
परजातिप्रवेशं च विवाह ४.३९
परतन्त्रेण मन्देन प्रतिलाभे ३.४.८
परद्रव्यापहरणे तन्मूल्याद् ३.१७.९
परस्त्रीं सेवते वर्षादज्ञातो ३.१४.१६
परस्परानुमत्या यो वणिग् ३.१७.३२
परस्य मङ्गलं प्राप्य कार्या १.८७
पराङ्गनाभिः संलापं यः कुर्यात् ३.१४.४
पराङ्गनासमासक्तं न रुन्ध्या ३.१४.२
पराजितो पि यो मन्ये २.२.२२
परामर्शं विधायोच्चैः १.६९
परापेक्षाविनिर्मुक्ताः गुरु १.९२
परिक्रमणकाले यद्दत्तं ३.५.१४१
परिणाहोऽभितो रक्ष्यो ३.९.१२
परिधानं स्वहस्तेनान्योऽन्यं ३.१४.८
परिभाषणमाक्षेपान् मागा २.२.४
परिव्रज्यागृहीतैकेना ३.५.८९
परीक्षापूर्वकं क्रीतं क्रय्यं ३.८.८
परेण भुज्यमाने ज्यां पश्यन्यो ३.२.६०
परोक्षनिन्दा व्यसना १.४८
पश्चात् प्रवृत्ता अपरा भरतेन २.२.७
पश्येत्सभागतान्सर्वान् १.७५
पात्रदानं सङ्घभक्तिर्गुरुभक्ति ४.२६
पादौ कार्यौ सविस्तारौ २.१.५५
पारितोषिकदानेन तं २.१.६८
पालयेच्च प्रजाः सर्वाः १.५८
पिछिला मिथिला राजलता ३.६.३
पिता भ्राता न पौत्रो वा ३.१.२५
पितामहार्जिते द्रव्ये निबन्धे ३.५.९६
पिता स्वीयार्जितं द्रव्यं स्थावरं ३.५.८
पितुरूर्ध्वं निजाम्बायाः ३.५.२७
पितुरूर्ध्वं विभक्तेषु पुत्रेषु ३.५.३६
पितुर्मातुर्द्वयोःसत्त्वे पुत्रैः ३.५.८४
पितृभ्यां प्रतिकूलःस्यात्पुत्रो ३.५.८५
पित्रादयः स्वबुद्ध्या यं ३.१९.२
पित्रोरूर्ध्वं तु पुत्राणां भागः ३.५.१४
पिशुनो रन्ध्रदर्शी च प्रद्योतश्च २.२.३४
पुनश्चाधिकारी तल्लेखं ३.१.३७
पुनः पितृगृहाद्वध्वानीतं ३.५.१३८
पुनर्भ्रातुः सकाशाद्यत्प्राप्तं ३.५.१४०
पुनश्चतुर्विधं दानं प्रोक्तं ३.४.५
पुनर्वृद्धेश्च वृद्धिः स्यात् मध्ये ३.२.४८
पुत्रयुग्मे समुत्पन्ने यस्य ३.५.२८
पुत्रस्त्रीवर्जितः कोऽपि मृतः ३.५.९०
पुत्रस्त्वेकस्य सञ्जातः सोदरेषु ३.५.९१
पुत्रीकृत्य स्थापनीयोऽन्यं ३.५.८८
पुरा स्वामिन् राजनीतिमार्गः १.११
पुष्पचौरो दशगुणैः प्रवास्यो ३.१८.९
पूजार्हा पुत्ररत्नेज्यारूपलावण्य ३.१९.३१
पूज्यापमानकृद् भ्रातृजाया ३.१७.१०
पूर्णेऽवधौ पुनः प्राप्ते वित्ते ३.२.४०
पूर्वं संप्रेष्यते दूतश्चतुर्मुखः २.१.२१
पूर्वजेन तु पुत्रेण अपुत्रो ३.५.२१
पूर्वाधिकारे यत्प्रोक्तं हिताहित २.१.२
पूर्वार्ज्जिता यदा शक्तिबलहीनः २.१.१२
पूर्वोक्तशिक्षया युक्तः १.७१
पूर्वोक्तं सकलं कृत्यं ४.१२
पृष्ट्वा तद्वचसा कृत्वा सीमा ३.६.९
पैतामहार्जिते वस्तौ साम्यं ३.२.६३
पैतामहं वस्तुजातं दातुं शक्तो ३.५.९५
पैतामहे च पौत्राणां भागाः ३.५.९८
पोष्यपोषणकार्ये च मा १.५१

पौत्रदौहित्रयोर्मध्ये भेदोऽस्ति ३.५.३३
पौनर्भवश्च कानीनः प्रच्छन्नः ३.५.७१
प्रच्छन्नं परकीयस्य नष्ट ३.११.२
प्रच्छन्नं स्वगृहे द्यूतं ये दीव्यन्ति ३.१५.१०
प्रजादानार्चनादीनां षष्ठांशं ३.१६.५
प्रजाधने नृपस्वे च न कार्या १.९६
प्रजा न पीडनीयास्तु स्वयं १.९५
प्रजास्वास्थ्ये नृपः स्वस्थस्तद्दुःखे ३.१६.४
प्रजोपरि सदा क्षान्तीरक्षणीया ३.१६.९
प्रणम्य परमा भक्त्या २.२.१
प्रणम्य श्रीयुतं मल्लिं मल्लं ३.१६.१
प्रणवतूर्यनिस्वान २.१.४७
प्रणिपत्य जगन्नाथमुपविश्य १.१०
प्रणिपत्य मुदा शान्तिं शान्तं ३.१३.१
प्रतिकूला कुशीला च निर्वास्या ३.५.७५
प्रतिग्रहो ह्यदेयस्य सप्रकाशो ३.४.१५
प्रतिज्ञातं तथान्यस्मै एतन्नव ३.४.११
प्रतिभूः सदृशस्तस्य भावः ३.२.२४
प्रतिभूरधमर्णार्थं गृह्यात् ३.२.२७
प्रतिमासं धान्यवृद्धिः प्रस्थयुग्मं ३.२.४७
प्रतिमासं मिषं दद्यात् वृद्धौ ३.२.४
प्रतीपो न समायातो २.१.४३
प्रत्यर्थ्युत्तरमादाय ३.१.३३
प्रत्याहर्त्तुमशक्तश्चेच्चौराद्भूपो ३.२.२०
प्रभ्वसत्वे कुटुम्बार्थमृणं ३.२.५४
प्रमाणमागमं चैव कालं ३.६.१९
प्रव्रज्याप्रच्युतं तत्र दासं ३.७.१३
प्रसङ्गादागतः साक्षी वा ३.१०.३८
प्रसन्नचित्त एकान्ते भजेन्नारी ३.१९.३५
प्रसन्नतास्थितो गर्भो जातश्च ३.१९.३६
प्रस्थादिवट्टान्निर्माता भिन्नान् ३.१७.३१
प्रस्थाने नियतो भृत्यो लग्ने ३.७.२४
प्राचीनमन्त्रिणो वृद्धान् गोपालांश्च ३.६.७
प्राणघाताभिलाषी यो ग्रीवां ३.१८.६
प्राणिपीडानिदानं यल्लोक ३.१२.३
प्रातर्गृहीता यावन्तः गवादि ३.९.८
प्रातिवेश्मिकतापन्नान् सत्यधर्म ३.६.८
प्राप्नुवन्ति तदा सर्वे यथाभागं ३.३.८
प्राप्याधिकारं पुरुषः परासौ ३.५.४७
प्राभृतं च यथाशक्ति विधाय ३.५.६१
प्रीत्या दत्तं तु यद्द्रव्यं ३.२.२१
प्रीत्या स्नुषायै यद्दत्तं श्वश्र्वा ३.५.१३९
बन्दिचारणशैलूषा दीक्षिताः ३.१४.१२
बलिष्ठेन न योद्धव्यं २.१.२९
बलोपचितमात्मानं तुष्टा २.१.१०
बालत्वे रक्षकस्तातो यौवने ३.१९.४
बुद्धिशक्तिं कलाशक्तिं निर्गमं २.१.२५
ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्रान् शुल्क ३.२.८
ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्रा वदन्तः ३.१२.५
ब्राह्मणक्षत्रियविशः कृत्ये ३.१.६२
ब्राह्मणस्य चतुर्वर्णाः स्त्रियः ३.५.३७
ब्राह्मणीमपि कृष्णास्यां ३.१४.१०
ब्राह्मणेन द्विजाक्रोशे आक्रुष्टे ३.१२.८
ब्राह्मणो यदि सेवेत क्षत्रियां ३.१४.११
भयात् क्रोधेन शोकेनोत्कोच ३.४.७
भर्त्रर्द्धदेहसंलीना भर्तृभक्ति ३.१९.२४
भर्त्राऽपि मिष्टवचनैः सन्तोष्या ३.१९.३
भवेच्चेत्प्रतिकूलश्च मृतवध्वाः ३.५.४८
भवेन् मिश्रं चान्नपानं तस्य ४.२५
भाण्डं तु नाशयेत्किं ३.७.२३
भार्यापुत्रप्रेष्यदाससोदर ३.१८.२५
भार्यापुत्रसुहृन्मातृपितृ ३.१६.२४
भाव्युपाध्याधिदानप्रतिग्रह ३.४.१६
भिन्द्यात् प्राकारपरिखा २.१.६४
भुक्तिदासोऽपि तद्भुक्तद्रव्यं ३.७.११
भूतावेशादिविक्षिप्ता ३.५.७७

भूपः सदसि संवेगभावम् ३.१.१०
भूपप्रजाहितार्थं हि शीघ्रस्मृति १.७
भूपप्रतीपतापन्नं जिह्वा छित्वा २.२.१७
भूपाज्ञापूर्वकं कृत्वा स्वाधिकार- ३.५.४९
भृत्यस्तु त्रिविधस्तत्रायुधिकः ३.७.४
भृत्याय स्वामिना देयं यथा ३.७.१७
भेदयेन्निखिलान्तस्य २.१.६५
भोजनावसरे भुक्त्वा गुरुदान ३.१९.४९
भ्रष्टे नष्टे च विक्षिप्ते पतौ ३.५.५२
भ्रातृजैश्च सपिण्डैश्च बन्धुभि ३.५.७९
भ्रातृणामाविभक्तानां दम्पत्योः ३.२.२३
भ्रातृमातृपितृस्वसृगुरु ३.१७.१६
भ्रातृवद्विधवा मान्या भ्रातृ- ३.५.१३०
भ्रातृव्यं तदभावे तु स्वकुटुम्बा- ३.५.५४
मण्डले बन्धनं काराक्षेपणं २.२.३
मनुष्यप्राणहर्ता च चौरवद् २.२.१२
मदान्धा स्मृतिहीना च धनं ३.५.७८
मध्ये तत्र हृते चौरैर्गोधने ३.२.४३
मध्वाम्लकटुतिक्तेषु वाग्भेदेषु १.९७
मनुजैः सहसाकर्म क्रियते ३.१७.२
मन्त्रभेदे कार्यभेदः पार्थिवानां २.१.४
मन्त्रिभिः सेवकैश्चैव १.४०
मन्त्रिसामन्तसन्मित्र २.१.३४
मर्त्यनाशे महत्पापं चौरवद् ३.१८.२३
मलोत्सर्गं न सा मार्गे ३.१९.३३
महत्तराभियोगे च तथा ४.३६
महिषी त्वष्टमाषैश्च परशस्य ३.९.२
महीपालस्ततः सम्यक् परीक्ष्य ३.१.६७
माकन्दपिचुमन्दैश्च किंशुका ३.६.११
मातङ्गयवनादीनां म्लेच्छानां ४.२
मातापितरौ वृद्धौ पुत्रो बालः ३.४.१२
मातृस्वस्रादिभिर्दत्तं तथैव ३.५.१३६
मानवानामर्भकस्य कन्याया ३.१६.१५
मान्त्रिकेषु च शस्त्रेषु २.१.५७
मार्गार्द्धं समतिक्रान्तं कुर्वन्तं ३.७.२६
मार्गे यानादिभिर्नाशे सारथिं ३.१८.१५
मासकृतप्रतिज्ञायां नो ३.२.१३
मासपक्षदिनेष्वेतद् ३.२.१२
मासपक्षावधिं कृत्वा कारयेत् ३.१.६५
मांसापकर्षकस्तुर्यैस्त्वग् ३.१८.७
मिथ्यादृक् शूद्रसंसक्तं भोजनं ४.२७
मिथ्याभियोगी पक्षार्थं ३.१.५६
मिषं वृद्धितया ग्राह्यं ३.२.९
मूकश्च मातृविद्वेषी महाक्रोधो ३.५.९२
मूर्खत्वे सारथेर्दण्डश्चे युग्मे ३.१८.२०
मूर्खाणां चैव लुब्धानां मा १.५०
मृताङ्गोत्सृष्टविक्रेता २.२.२०
मृते पितरि तत्पुत्रैः कार्यं ३.५.४२
मृते स्वामिनि तत्पुत्रो लेखं ३.२.४९
मैत्र्याल्लोभात्परोक्त्या ३.१६.२९
म्लेच्छकारानिवासाद्वा ४.३८
यः कृत्यस्यादिमन्तं च ३.१०.२७
यः सेतुः पूर्वनिष्पन्नः संस्कारार्हो ३.६.२९
यच्च दत्तं स्वकन्यायै यज्जामातृ ३.५.८०
यत्किञ्चिद्वस्तुजातं हि ३.५.१३१
यथापराधं देशं च कालं २.२.८
यथार्थवादी निर्लोभः ३.१.४९
यथा स्युः सुस्थिताः सर्वाः प्रजाः १.६०
यदि केनाप्युपायेन परस्त्यजति २.१.२८
यदि स दत्तकः पित्रोः ३.५.५७
यदि सा शुभशीला स्त्री ३.५.१०४
यदि स्वदापनेऽशक्तस्तदा ३.१५.८
यद्देहावयवजनितो अपराध २.२.२५
यद्यज्जीतीयपुरुषं यद्यत्कर्मकरं ३.१९.९
यवनादिलिपौ दक्षो म्लेच्छ १.७८
यशस्कारै रमाभिश्च पूरयेत् १.५३

यश्च जैनोपवीतादिकृत ३.१६.२३
यश्च वध्नात्यबद्धं वै बद्धं ३.१७.२७
यस्माल्लब्धं हृतं नष्टं तद्वृत्तम ३.११.११
यस्मै प्रतिश्रुतं यच्च तत्तस्मै ३.४.१४
यस्य पुण्यं बलिष्ठं स्यात्तस्य ३.५.१२
यस्यैकायां तु कन्यायां ३.५.३०
याचितेन धनिनाथ केनचित् ३.२.२
याच्यमानं स्वकीयं स्वं निक्षेप्ता ३.१०.८
यात्रार्थमुद्यतेनापि क्षिप्यते ३.१०.४
यादृशमुप्यते बीजं क्षेत्रो ३.१९.८
यादृशोपद्रवं कुर्यात् तादृशं ३.१८.१०
यानान्तरेण गोऽश्वादिरुद्धे ३.१८.२१
यावतांशेन तनया विभक्ता ३.५.२६
यावद् द्रव्यं च निक्षिप्तं तावद्देया ३.१०.७
युक्तं वै स्थापितुं पुत्रं ३.५.१२३
युगाक्षयंत्रवक्राणां भञ्जने ३.१८.१६
युग्ममुद्राशतं दण्डं गृह्णीयाद् ३.१८.१९
युद्धे पणे च विजित ऋणभाग् ३.७.६
येनान्त्यजोऽङ्गेन कुधीः कस्याङ्गं ३.१८.२
येनोपयोगो जीवस्य शुद्धमार्गात् ३.१२.२
योऽन्यायेन कृतो दण्डः २.२.२३
यो नरः कूटसद्भावं जानन्नपि ३.१.६०
योगीन्द्रं सच्चिदानन्दं स्वभावे ३.६.१
यो नियोगेऽर्थिनो जातो व्ययः ३.१०.२०
यो न्यायं नेच्छते कर्तुमन्यायं ३.१.४
यो मानसमयेऽष्टांशं व्रीहि ३.१७.२८
यो शक्तो पालितुं नैव मानवो ३.२.१९
यो हरेत्कूपतो रज्जुं घटं ३.१६.१०
रजतशते दत्ते खलु रौप्ययुगं ३.२.३५
रतेश्चान्ते चिताधूमस्पर्शे ३.१९.४३
रदितः स्मारितश्चैव यदृच्छागत ३.१०.३१
रमणोपार्जितं वस्तु जङ्गम- ३.५.११२
राजमुद्राङ्कितं पत्रं स्थावरे ३.१.१५
राजमुद्राङ्कितं सम्यक्कारयित्वा ३.५.५९
राजाज्ञातो विरुद्धं यत्कृत्यं ३.३.४
राजा निःस्वामिकमृक्थ ३.११.१२
राज्यगेहे श्रुतं मित्र नृपः ३.१०.२२
राज्यस्थाने सति द्यूते ३.१५.९
राज्याधिकारिणा कार्यं तत्सीमा ३.६.१२
राज्यांशं तु प्रतिदिनं देया ३.१५.६
रिपुं बलिष्ठं दुर्धर्षं यदा २.१.१३
लक्षणानि स्वकर्माणि चैषां १.७६
लक्ष्यमणातनयं नत्वा द्युसदे- ३.५.१
लञ्चादिलोभानाकृष्टः १.८३
लब्ध्वा स्वमन्यविक्रीतं क्रेतृ ३.११.६
ललाटेङ्को भिशप्तस्य खरे २.२.२७
लेखयित्वा धनी देयाद् ३.२.७
लोकाधिकारिभिर्दिव्यं ३.१.६६
लोकानां संसृतौ तुल्योऽभय ३.१६.३
लोभतः करमादत्ते प्रजाभ्यो ३.१६.७
लोभतो मोचयेद् बद्धान् यो ३.१६.२५
लोभादिकारणाज्जाते कलौ ३.५.१३
लोभी गद्गदवाग् दुष्टो ३.१.५०
लोभेन बालकन्याया भूषणानि ३.१७.६
वणिजां श्रेणिपाषण्डि ३.१३.११
वमनं त्र्यहमाधाय विरेकं ४.४१
वर्जयेत्मृगयां द्यूतं वेश्यां १.४६
वर्णत्रये यदा दासीवर्गशूद्रात्मजो ३.५.४१
वर्णत्रयेषु यः कश्चित् सेवेत् ३.१४.९
वर्णितोऽयं समासेनऽस्वामि ३.११.१३
वर्षाजलप्रवाहैश्च सीमां निर्णीय ३.६.२४
वस्त्रे नष्टे सकृद्धौतेऽष्टमांशं ३.१७.२२
वह्नौ स्वर्णस्य नो हानीरजतस्य ३.८.९
वाक्पारुष्यं च समयव्यतिक्रान्तिः ३.१.७
वाचा कन्यां प्रदत्वा चेत्पुन ३.५.१२६
वाचा दुष्टस्तस्करश्च मायावी ३.१६.२७

वाचा सत्यापि या लोके ३.१२.४
वादित्रनाशने दंडो ज्ञेयो ३.१८.१४
वादिनः साक्षिणोऽसत्यं ३.१.५७
वाद्युक्तं चेद्वचः सत्यं तदा भूपो ३.१०.१२
वाला जातास्तथाजाता ३.५.९
वासुपूज्यजिनं स्तुत्वा दुष्टाराति ३.९.१
वाहनायुधवर्मादिसामग्रीं २.१.३२
विक्रीय द्रव्यं यो मन्येन्मूल्य ३.८.३
विचारपूर्वकाभाषो यथावसर १.७९
विज्ञप्तिर्नहि श्रोतव्या क्रियाभेद ३.१.१७
वित्तं यस्य वृथा दुष्टो ३.१८.१२
विदित्वैषां समासेन सर्वेषां २.१.६७
विद्याः सर्वाः क्रियाः सर्वाः १.१७
विधवा स्वौरसाभावे ३.५.५६
विधवा हि विभक्ता चेत् ३.५.१२४
विधिना महिला सृष्टा पुत्रो ३.१९.२२
विनीताः स्वामिभक्ताश्च १.९८
विपक्षपक्षदलनोत्साह २.१.११
विप्रं यज्ञोपवीतेन क्षत्रियं ३.१.४६
विभक्तधनव्ययीकरणे तु ३.५.१०७
विभक्ता अविभक्ता वा सर्व्वे ३.५.१५
विभक्तानविभक्तान् वै ३.५.२१
विभक्ता वा अविभक्ता वा इति शेषः ३.२.५३
विभक्ते तु व्ययं कुर्याद् ३.५.१०१
विभागोत्तरजातस्तु पुत्रः ३.५.३५
विरुद्धमन्यथा पूर्वापरत्वेन ३.१.३५
विवाददर्शनार्थं यः स्वयं ३.१०.३७
विवादोऽत्र भवेत् षोढा नास्ति ३.६.४
विवादोऽयं किमन्योऽन्यं नायं ३.१०.९
विवाहकाले वा पश्चात् पित्रा ३.५.१३५
विवाहिता च या कन्या भागो ३.५.२५
विवाहिता च या कन्या ३.५.३४
विवाहितोऽपि चेद्दत्तः पितृभ्यां ३.५.९४
विवाहे यच्च पितृभ्यां ३.५.१३७
विवीतेऽपि हि पूर्वोक्त एव ३.९.४
विशदशारदसोमसमाननः ३.१.१
विंशोधनाद्धि तच्छुद्धिः ४.४०
विश्रम्भाय प्रभोर्वस्तु दत्वा ३.२.२८
विषशस्त्रभयाद्यैर्यः परदारा ३.१७.७
वृथार्थदण्डपारुष्यं वाद्यं १.४७
वृद्धं बहुश्रुतं बालं २.२.३१
वेषान्तरधरैश्चारै २.१.३५
वैश्यश्चेत्मांसविक्रेता २.२.११
वैश्याक्रोशे तदर्धं स्याच्छूद्रा ३.१२.७
वैश्याक्रोशे तु विप्रस्य पणानां ३.१२.९
वैश्याक्रोशे तु वैश्यस्य ३.१२.११
वैश्याज्जातः सवर्णायां पुत्रः ३.५.४०
वैश्येन ब्राह्मणाक्रोशे मुद्रासार्ध ३.१२.१०
व्यग्रचित्तोऽतिवृद्धश्च ३.५.१७
व्यवहारविधौ देयविधिः स ३.४.१
व्यवहारे न कस्यापि पक्षः १.६८
व्यवहारो द्विधा प्रोक्तः ३.१.३
व्याधौ धर्मे च दुर्भिक्षे ३.५.१४४
व्यापारे स्वामिवित्तस्य हानि ३.७.१९
शक्तित्रिकमुपायानां चतुष्कं १.५४
शताद्गवां वत्सतरा द्विशता ३.९.१०
शत्रौ मित्रे समाः शान्ताः ३.१.३८
शयनं परशय्यायामासनं १.३४
शयीत न हि खट्वायां ३.१९.११
शरीरसंस्कृतिं नैव कुर्यादु ३.१९.१२
शर्कराद्दषदां वृन्दे क्षालयत्र ३.१७.२१
शालिगोधूममुद्गाश्च– ३.१९.१९
शास्त्रौषधिगवाश्वानां हर्ता ३.१६.१८
शिष्टानां पालनं कुर्वन् दुष्टानां ३.१६.६
शुद्ध्यै दशोपवासा हि ४.३५
शूद्रस्य स्त्री भवेच्छूद्री नान्या ३.५.४३

शूद्रासेवकवैश्योऽपि दण्ड्यः	३.१४.२०	सप्तव्यसनसंसक्ताः सोदरा	३.५.११९
शोधयेद्वादिपत्रं च यावत्	३.१.२९	सप्ताहं च ततः स्नानं	४.४५
शौर्याभिमानिनः शूरान्	२.१.५६	समदः प्रेक्षमाणो सौ	३.१.११
श्रीमदर्हंतमानम्यानन्तं	३.११.१	समर्थनः पुमर्थानां त्रयाणां	१.२७
श्रीमद्धर्मजिनं नत्वा सर्वकर्म	३.१२.१	समर्थो व्यसनापेतः कुर्याद्रीतिं	३.५.८३
श्रीमन्तं नाभिजं वन्दे प्रथमं	१.१	समवायस्तत्र मुख्यो वणिग्गौणा	३.३.३
श्रीविमलस्य पादाब्जरनखा	३.१०.१	समस्तास्ते हि पृष्टाश्च वदन्त्येकां	३.६.२१
श्रीश्रेयांसं नमस्कृत्य वादि	३.८.१	समायां निशि पुत्रः स्याद्विष	३.१९.१६
श्रीसुपार्श्वजिनं नत्वा सप्तमं	३.४.१	समुदायस्य राज्ञां च धर्मः	३.१३.४
श्रुतं देवीं सद्गुरूंश्च नतिर्मे	१.५	सम्प्रतिज्ञं धृतं यच्चेत्	३.२.४२
श्रुत्वोभौ साधनाज्ञां तां	३.१.४१	सम्प्राप्ते वेतने भृत्यः स्वकं	३.७.२१
श्रोतव्या यदि विज्ञप्तिस्तस्यामाज्ञां	३.१.२०	सम्बोधितोऽपि सद्वाक्यैर्न	३.५.८६
श्वपदाङ्कः स्तैन्यकृत्ये	२.२.२८	सम्भवेदत्र वैचित्र्यं देशाचारादि	३.५.१४५
श्वश्रूसत्त्वे व्ययीकर्तुं शक्ता	३.५.११३	सम्भूयोत्थानमेतश्च	३.३.१२
षड्गुणाश्च समाख्याता	१.५७	सम्यग् दत्तं च यद्द्रव्यमाहर्तुं	३.४.४
षण्डोत्सृष्टागन्तुकाश्च पशवः	३.९.७	सवर्णास्त्र्यौरसोत्पत्तौ तुर्यांशार्हो	३.५.६५
संक्षेपेणात्र गदितो विवादः	३.९.१३	सवृद्धिधनदानाद्वै आधिता	३.७.१०
संस्कारो ह्युपवीतस्य	४.११	सर्वतो भयसत्वे च दण्ड	२.१.३७
स एव कल्पद्रुमफले क्षीणे	१.१४	सर्वथा स्वहितोद्युक्तैः सदा	३.१४.२५
स तु भूयः कियत्काले निक्षेपं	३.१०.६	सर्वव्यसननिर्मुक्ताः शुचयोः	१.९१
सत्सु पुत्रेषु तेनैव ऋणं	३.२.२२	सर्वव्यसननिर्मुक्तो दण्ड	१.६२
सत्यं जल्पति यो लिङ्गं नष्टप्राप्तस्य	२.२.३०	सर्वार्थाभिनियोगे च बलिष्ठा	३.२.५९
सत्यौरसे तथा दत्ते सुविनित	३.५.५१	सर्वेषां द्रव्यजातानां पिता	३.५.६
स दण्ड्यो भूमिपालेन	३.१०.२५	सर्वैर्मिलित्वा लाभार्थं वणिजो	३.३.२
सदा सामयिकं धर्मं स्वधर्मं	३.१३.३	स साक्षी द्विविधः स्वाभाविको	३.१०.२८
सधवागीततूर्यादिमङ्गला	३.५.६०	साक्षिणो वादिनः सत्या असत्याः	३.१.५८
स निक्षेपविधिः प्रोक्ताः	३.१०.५	साक्षिणः सोम्नि प्रष्टव्या	३.६.२०
सन्ततमुदरं दृष्ट्वा कृमिमूत्र	३.१४.२४	साक्षिनिश्चितनिक्षेपविवादे	३.१०.२६
सन्ततिर्यत्प्रसङ्गेन जायते	३.१४.३	साक्षीसाक्षी स विज्ञेयः साक्षिणां	३.१०.४०
सन्दिग्धं प्रकृताद्भिमति	३.१.३२	साक्ष्यभावे महीपालः स्थापयेद्	३.६.१४
सन्दिग्धो विजयो युद्धे	२.१.२०	साक्ष्यादिहेतुभिः सिद्धं	३.१.१९
सन्धाने प्रतिभिन्नानां	१.८५	साक्ष्युक्तं प्राड्विवाकश्च	३.१.५४
सन्धिर्व्यवस्था वैरं च विग्रहः	२.१.६	साधारणं च निक्षेपः पुत्रो	३.४.१०

साधारणं च यद्द्रव्यं	३.५.११८
साधारणं च यद्द्रव्यं तद्धरेत्	३.१३.५
साध्यप्रमाणसंख्यावद्देश	३.१.१३
सानुकूला च सर्वेषां भर्तुं	३.५.१०५
सामादित्रितयासाध्ये	२.१.२१
साम्ना दाम्ना च भेदेन	२.१.१९
सार्थकं च समग्रार्थं	३.१.१२
सावहित्थस्यापि तूर्णं	१.८१
साहसेन तु यः कुर्यात्	३.१७.३०
सिद्धासिद्धौ तदाकारैः	२.१.२४
सिंहाहिविद्युदाग्नै मृतश्चौरै	३.९.९
सीमावादे समुत्पन्ने राजकर्मा	३.६.५
सीमासन्धिषु गर्तासु कारीषा	३.६.१३
सुधर्मस्वामिनं स्तौमि पञ्चमं	१.४
सुमुहूर्त्ते सुशकुने मार्गादौ	२.१.३३
सुराकैतवद्यूतार्थं परस्त्रीहेतुकं	३.२.५०
सुवर्णवर्णोऽभ्रनरेन्द्रसूनुः क्रौंचाङ्कितः	३.२.१
सुशीलाप्रजसः पोष्या योषितः	३.५.७६
सूक्ष्मसूत्रैश्च निष्पन्ने वृद्धिर्हि	३.८.११
सूचीव्यूहेन भूभर्ता	२.१.३९
सूर्यास्तोत्तरकाले च न	३.१९.४०
सेतुः कूपश्च क्षेत्रेऽपि न	३.६.२८
सेतुना च तडागेन देवता	३.६.१०
सेनापतिर्भवेद्दक्षः यशोराशि	१.७७
सेवकाः पञ्चधा प्रोक्ताः शिष्यां	३.७.२
सेवेत वैश्यां चेद्वैश्यो दण्ड्यः	३.१४.१९
सोऽपि गत्वाथ मधुरैः	२.१.२३
सौवर्णं राजतं चाधिं लात्वा	३.२.३६
स्तेनोपद्रवतो भूपः प्रजा	३.१६.२६
स्तैन्यात् धान्यं हरन् क्षेत्रात्	३.१६.११
स्त्रीणां साक्ष्ये स्त्रियः कार्याः	३.१०.३४
स्त्रीदोह्यबीजवाह्यायोरत्नपुंसां	३.८.४
स्त्रीपुंधर्मविचारोऽयं समासेन	३.१९.५१
स्त्रीपुंधर्मविभागश्चेत्येते	३.१.८
स्त्रीबालगर्भघाते यज्जीवानाम्	३.१.४७
स्थानान्यालीढवैशाख	२.१.५४
स्थितिर्हिनैगमादीनां समय	३.१३.२
स्थितो यः स्वयमागत्य	३.७.७
स्नानकाले निरीक्षेत सुरूपं	३.१९.७
स्नानोद्वर्त्तनतैलाद्यभ्यङ्ग	३.१९.२८
स्मृत्वा भूत्वा शुचिः कृत्वा	३.१९.४५
स्यन्दनाश्वगजामोघरत्न	२.१.७०
स्वकीयकुलरीतिस्तु रक्षणीया	३.१९.२६
स्वकीये राजकीये वा स्थान	३.१५.४
स्वक्षेत्रविषये वादो न कार्य	३.२.३३
स्वच्छन्दविधवा नारी विक्रोष्टा	३.१७.१२
स्वधर्मनिरताः शस्याः कुलीनाश्च	३.१०.३२
स्वभर्त्रोपार्जितं द्रव्यं	३.५.११०
स्वयं समर्पणीयं तद्गणकार्य	३.१३.८
स्वराष्ट्रदुर्गरक्षार्हप्रधानं	२.१.३१
स्वल्पान्तसंहतान्कृत्वा	२.१.५१
स्ववंशगुणदर्पेण भर्तारं या	३.१४.१५
स्ववंशो लज्यते येन न तत्कुर्वीत	
स्वस्त्रीकलङ्कभीत्या च	३.२.१८
स्वस्वत्वापदानं दायः स तु	३.५.२
स्वस्वामिने जयो देयः	१.८९
स्वस्वामिने वृथोत्साहो	१.९९
स्वामिकार्यहितोद्युक्तैः पुरुषैः	३.१०.११
स्वामिनं मोचयेद्यस्तु प्राण	३.७.९
स्वामिना यदि यत्कर्म न्यस्तं	१.९४
स्वामिन्मम तु न ह्यस्ति	३.१०.१०
स्वामिप्रतापसंवृद्धिः कार्या	१.१००
स्वामिभक्तः प्रजां प्रेष्ठः	१.८२
स्वाम्यज्ञातकृते कोऽपि विक्रीणा	३.११.३
स्वाम्यमात्यसुहृत्कोश	१.५६
हस्त्यश्वादिधनस्यापि मर्यादा	३.२. ६१

हितवादिवचो मान्यं समूहे ३.१३.६
हित्वालस्यं सदा कार्यं १.४२
हिरण्यधान्यवस्त्राणां ३.२.१८
हिरण्यरजतादीनां भूषणानां ३.१६.१३
हीनेनापि न योद्धव्यं स्वयं २.१.३०
हृष्टत्वं च मलीनत्वं सम्यक् २.१.५८
हेमपीठसमासीनः सभ्यमन्त्रियुतो ३.१.२

—o—

ग्रन्थानुक्रमणिका

मूल ग्रन्थ

अग्निपुराण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १९६०;

अमरकोश, मोती लाल बनारसी दास, वाराणसी १९६६-१९६८;

आपस्तम्ब धर्मसूत्र, सं. वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९५२

कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम् (तीन भाग), डॉ. रघुनाथ सिंह, कृष्णदास अकादमी वाराणसी १९८३- १९८८;

छान्दोग्य उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर १९३७;

नीतिवाक्यामृत्, सोमदेवसूरि, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर मादी फाउण्डेशन, कोलकाता १९८७;

मनुस्मृति, मेघतिथिटीका, मनसुक्ष राय मोर, कोलकाता १९७१;

महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर;

याज्ञवल्क्य स्मृति, निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई १९४९ (पञ्चम सं.);

वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस गोरखपुर १९८५;

श्रीमद्भागवत, गीता प्रेस गोरखपुर १९९०;

स्थानाङ्गसूत्रम् (३ भाग) सं. मुनि जम्बूविजय, महावीर जैन विद्यालय मुंबई २००२;

सहायक ग्रन्थ

अग्निहोत्री, प्र० द०, पतञ्जलिकालीन भारत, पटना १९६३;

अग्रवाल, वा० श०, इण्डिया ऐज नोन टू पाणिनि, पृथिवी प्रकाशन, वाराणसी १९५३;

अग्रवाल, वा० श०, इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाइ मनु, वाराणसी १९७०;

अग्रवाल, वा० श०, मार्कण्डेय पुराण - एक सांस्कृतिक अध्ययन, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद १९६१;

अय्यंगर, के वी, सम ऐस्पेक्ट्स आव एण्श्येण्ट इण्डियन पालिटी, द्वि० सं० १९३५;

अरोड़ा, आर० के०, हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल डाटा फ्राम भविष्य पुराण, स्टर्लिंग प्रेस पब्लिशर्स, दिल्ली १९६५;

अलतेकर, अनन्त सदाशिव, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, भारती भण्डार, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी २००३;

आचार्य, बलबीर, ऋग्वेदीय ब्राह्मणों का सांस्कृतिक अध्ययन, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली १९९१;

आचार्य दीपंकर, कौटल्य कालीन भारत, हिन्दी समिति प्रभाग ग्रन्थमाला सं १६१, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनउ तृ० सं० २००३;

उदगावोंकार, पद्मा बी०, द पोलिटिकल इंस्टीट्यूशन्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९६९;

उपाध्याय, बी० एस०, इण्डिया इन कालिदास, इलाहाबाद १९४७;

कश्यप, धनपति देवी, पराशर स्मृति एवं देवलस्मृति का तुलनात्मक अध्ययन, नाग प्रकाशक, दिल्ली १९९७;

कौशिक, हरीश, देवी भागवत पुराण एक परिशीलन, निर्माण प्रकाशन, दिल्ली २०००;

गंगाधरन, एन, गरुडपुराणः ए स्टडी, आल इण्डिया काशिराज ट्रस्ट फोर्ट रामनगर, वाराणसी १९७६;

गांगुलि, डी० सी०, एस्पेक्ट्स आव एश्येण्ट इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन, दिल्ली १९७६;

गुप्ता, आ० के०, पोलिटिकल थाट इन स्मृति लिटरेचर, इलाहाबाद १९६१;

गैरोला, वैदिक साहित्य और संस्कृति, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली पुनर्मु० सं २००४;

गोपाल, लल्लन जी, प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारधारा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी १९९९;

चकलदर, हरन चन्द्र, सोशल लाइफ इन एंश्येण्ट इण्डिया, कास्मो पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली १९८४;

चटर्जी, अशोक, स्टडीज इन कौटिल्य वोकेबुलरी, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली १९९०;

चतुर्वेदी, उद्धव लाल, ब्रह्माण्ड पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली १९८७;

चौहान, प्यारे लाल, स्मृतिकालीन व्यवहार पद्धति (न्याय व्यवस्था), नाग प्रकाशक, दिल्ली १९९५;

चौहान, प्यारे लाल, स्मृतियुगीन शासन-सुरक्षा, नाग प्रकाशक, दिल्ली १९९१;

जायसवाल, के० पी०, हिन्दू राजतन्त्र, हि० अनु० रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी;

जौहरी, मनोरमा, पालिटिक्स एण्ड एथिक्स इन एंश्येण्ट इण्डिया, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १९६८;
जौहरी, मनोरमा, प्राचीन भारत में राज्य और शासन व्यवस्था, गणेश प्रकाशन, १९६९;
ज्ञानी, शिवदत्त, वेदकालीन समाज, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९६७;
झा, एम एम गङ्गानाथ, स्टडीज इन हिन्दू ला, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी १९९२;
तिवारी, दिवाकर, कन्सेप्ट आव थेफ्ट इन द महाभारत, विद्यानिधि ओरियण्टल पब्लिशर्स, दिल्ली १९९०;
तिवाड़ी, योगेन्द्र कुमार एवं शर्मा, कैलाश चन्द्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर १९९;
तिवारी, रामजी, भविष्यपुराण एक अनुशीलन, वैशाली प्रकाशन, गोरखपुर १९८६;
त्रिपाठी, हरिहर नाथ, प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९६५;
दीक्षित, प्रभाकर, वाल्मीकि रामायण में राजनीतिक विचार, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली १९९१;
दीक्षित, प्रेम कुमारी, महाभरत में राज्यव्यवस्था, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ १९७०;
दीक्षित, प्रेम कुमारी, रामायण में राज्यव्यवस्था, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ १९७१;
दूबे, राजदेव, स्मृतिकालीन भरतीय समाज एवं संस्कृति, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली १९८८;
द्विवेदी, कपिलदेव, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी द्वि० सं० २००४;
धर, सुदर्शन एवं एम के एवोल्यूशन आव हिन्दू फेमिली ला - वेदाज टू वशिष्ठ, डेप्युटी पब्लिकेशन्स, दिल्ली १९८६;
नेगी, सुरेन्द्र सिंह, महाभारत समाज संस्कृति दर्शन, के० एल० पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद १९९७;
पाटिल, डी आर, कल्चरल हिस्ट्री फ्राम द वायुपुराण, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७३;
पाण्डेय, उदयशङ्कर, प्राचीन भारत की राज्य व्यवस्था, नाग प्रकाशक, दिल्ली १९९८;
प्रभा किरण, संस्कृत साहित्य में नीति एक विमर्श, वाणी प्रकाशन, वाराणसी १९८९;

प्रियव्रत, वेद का राष्ट्रिय गीत, स्वामी श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र, हरिद्वार १९९४;

बन्द्योपाध्याय, एन सी, डेवलपमेण्ट आव हिन्दू पालिटी एण्ड पोलिटिकल थ्योरीज, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली १९८०;

बन्द्योपाध्याय, एन सी, हिन्दू पालिटी एण्ड पोलिटिकल थ्योरीज, प्रिण्टवेल पब्लिशर्स, जयपुर पुनर्मु० १९८९;

बाजपेयी, अम्बिका प्रसाद, हिन्दू राज्यशास्त्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १९५०;

भट्टाचार्य, चञ्चल, कन्सेप्ट आव थेट इन क्लासिकल हिन्दू ला, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली १९९०;

भण्डारकर, डी० आर०, सम एस्पेक्ट्स आव ऐंश्येण्ट इण्डियन पालिटी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी १९२९;

महतो, घनश्याम, मत्स्यपुराण में राजधर्म, आदित्य बुक सेण्टर, दिल्ली १९९७;

मिश्र, जयकृष्ण, राजधर्मविमर्शः, जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, पुरी २००३;

मिश्र, देवी प्रसाद, जैन पुराणों का सांस्कृतिक अध्ययन, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद १९८८;

मिश्र, प्रकाश चन्द्र, दायभागे उत्तराधिकारिक्रमः, लेखक, कन्धमाल (उड़ीसा) २००३;

बापटः, श्याम, दायभागः, जीमूतवाहन, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली २००९;

राणा, अमरनाथ, वैदिक साहित्य में अर्थ - पुरुषार्थ, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, दिल्ली २०००;

राय, जाह्नवी शेखर, पराशर स्मृति एक अध्ययन, रामानन्द विद्याभवन, दिल्ली १९९५;

राव, एम वी कृष्णा, स्टडीज इन कौटिल्य, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली तृ० संशो० सं० १९७९;

वर्मा, वी० पी०, स्टडीज इन हिन्दू पालिटिकल थाट एण्ड इट्स मेटाफिजिकल फाउण्डेशन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली;

वाजपेयी, राघवेन्द्र, बार्हस्पत्य राज्य व्यवस्था, चौखम्बा सिरीज, वाराणसी १९६६;

विजय बहादुर, उत्तर वैदिक समाज एवं संस्कृति, भरतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी १९६६;

विद्यालङ्कार, अत्रिदेव, आयुर्वेद का बृहद् इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ १९९१;

शरण, परमात्मा, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ १९६७;

शास्त्री, शिवराज, ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध, लीला कमल प्रकाशन, मेरठ १९६२;
शर्मा, एम० एल०, नीतिवाक्यामृतम् में राजनीति, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली १९७१;
शर्मा, पद्मनाभ, शुक्रनीति में राजनीतिक विचार एवं संस्थायें, श्री पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली १९८९;
शर्मा, जवाहर लाल, श्रीमद्भागवत का सांस्कृतिक अध्ययन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर १९८४;
शर्मा, राम शरण, ऐस्पेक्ट्स आव पोलिटिकल आइडियाज एण्ड इंस्टीटच्यूशन्स इन ऐंश्येण्ट इण्डिया, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली पंचम संशो० सं० २००५;
शुक्ल, विजयशङ्कर, ऋग्वेदकालीन समाज और संस्कृति, शारदा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली २००१;
श्रीराम, सोशल स्ट्रक्चर एण्ड वैल्यूज इन लेटर स्मृतिज, इण्डियन पब्लिकेशन्स, कोलकाता १९७२;
श्रीवास्तव, बलराम, एफोरिज्म आव बृहस्पति आन इण्डियन पालिटी, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली १९९८;
सहाय, शिवस्वरूप, प्राचीन भारतीय शासन और विधि, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली २००५;
सिंह, धीरेन्द्र कुमार, ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति, पेनमैन पब्लिशर्स, दिल्ली १९९३;
सेन, बिनय चन्द्र, इकानामिक्स इन कौटिल्य, संस्कृत कालेज, कोलकाता १९६७;
स्वर्णलता, प्राचीन भारत में राज्य और शासन व्यवस्था, लता प्रकाशन, वाराणसी १९७४;

कोशग्रन्थ

पाइअ सद्द महण्णवो, सं , प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी;
बृहत् हिन्दी कोश, सं. कालिका प्रसाद, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी (सप्तम परिवर्द्धित पुन० मु० सं०२००७)
वेबस्टर्स डिक्शनरी आव द इंग्लिश लैंगुएज, लेग्जिकन पब्लिकेशन्स, न्यूयार्क
संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, सर मोनियर मोनियर विलियम्स, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पुन० मु० सं०१९९३)
संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, द्वि. सं. १९६९

—o—

शब्दानुक्रमणिका

अंशहराः ३.५.९
अकामे ३.९.६
अकूटम् ३.१७.२५
अकृत ३.११.४
अखिलम् ३.५.१३४
अग्निपातन ३.१.४७
अग्रगामिभिः २.१.३५
अग्रजो ३.५.२०
अग्रहणात् ३.२.५७
अङ्कनम् २.२.२६
अङ्कितम् ३.६.१२
अङ्कोभिशप्तशस्य २.२.२७
अङ्गखण्डनम् २.२.३
अङ्गछेदनम् २.२.२६
अङ्गम् ३.१८.२, -ङ्गेन ३.१८.२
अङ्गरक्षान् १.४५
अङ्गविच्छेदम् १.३७
अङ्गसप्तकम् १.५४
अङ्गारः ३.६.१३
अङ्गीकृते ३.६.३१
अङ्गुलिच्छेदम् ३.१४.१४
अचेतनैः ३.१५.३
अजागोमहिष्यादि २.१.६९
अजानानः ३.१.६३
अजाविखरघातकः २.१.१४
अजितम् २.१.१
अज्ञत्वात् ३.१८.१८
अज्ञातस्वामिनो ३.१.२२
अज्ञातो ३.१४.१६
अज्ञानाः ३.५.९, -नेन ३.६.२७, ४.१.३९
अञ्जनादिसंस्काराः ३.१९.१५
अतिक्रमतो ३.१३.४
अतिदुःखम् ३.१४.२२
अतिप्रयत्नतः ३.५.७९
अतियत्ने ३.५.५०, -न ३.१३.३
अतिरूक्षैः २.१.५९
अतिवृद्धः ३.५.१७
अतिवृद्धबाला ३.२.५१
अतिवृद्धानाम् ३.१६.९
अतिचाराद् ३.१९.५
अत्यन्तदुर्गन्धम् ३.१४.२३
अत्युग्रव्याधिसमन्विता ३.५.७७
अदत्तग्राहको ३.४.१७
अदृष्टपूर्वस्त्रीभिः ३.१४.५
अदेयम् ३.४.५, -स्य ३.४.१५
अधःपतितो ३.५.९१
अधमर्णः ३.२.३७
अधमर्णकः ३.२.४, -कात् ३.२.१७, ३.२.३८, ३.२.४३
अधमर्णस्थापितम् ३.२.४०
अधमो ३.७.४
अधवा ३.५.१०७
अधिकर्मकराः ३.७.२

अधिकारपदे ३.५.५६
अधिकारभृत् ३.१.३३
अधिकारम् ३.५.६४, ३.५.१०२, ३.५.१०७
अधिकारिणः ३.१.१५
अधिकारिणी ३.५.१११
अधिकारिता ३.५.११६
अधिकारिपदे ३.५.४५
अधिकारिभिः ३.१.१७, ३.१.१९
अधिकारी ३.१.२०, ३.१.३७, ३.५.१८
अधिपा ३.५.५२
अधिष्ठितान् २.१.४५
अध्यग्निकृतम् ३.५.१३७
अध्याह्वनिकम् ३.५.१३८
अनघ १.६८
अनपत्ये ३.५.११४
अनन्तसौख्यदम् ३.११.१
अनन्यगतिः ३.५.१४४
अनन्यगतिको २.१.२१
अन्योऽन्यम् ३.१४.८
अनागतविमर्शकः १.६३
अनादेयम् ३.२.५६
अनापृच्छ्य ३.५.९५, ३.५.१०६
अनाहूयाः ३.१.२३
अनिर्वृत्तकृतिम् ३.१७.२७
अनिष्टभाषिणम् २.१.१६
अनीतिम् ३.१०.१३
अनुग्रहपरः १.२८
अनुचरो ३.१.५१
अनुचर्यार्थम् ३.१८.११
अनुजज्येष्ठादि ३.१.१४
अनुजानाम् ३.५.२०
अनुपमरत्नानाम् ३.१६.१५
अनुपातो ३.८.३
अनुमतिदानतः ३.३.५
अनुमतौ ३.५.२०
अनुसारित्वम् ३.५.२३
अनूढः ३.५.१२१
अनृतम् ३.१.४७, ३.६.२२
अनेककृतकार्ये ३.७.२०
अनेकक्रियासमन्वितः ३.१.१८
अनेकरूपाणि ३.१९.१८
अनेकविषयाकीर्णा ३.१.१७
अनेकसाध्ये ३.७.२२
अनोव्यूहेन २.१.३७
अन्तरङ्गारिभेदकम् ३.१५.१
अन्त्यजो ३.१८.२
अन्त्या २.१.५
अन्त्यम् २.१.१५, -यैः ३.१९.४१
अन्धबधिर ३.२.२२
अन्नकालेपोषितः ३.७.११
अन्नपानम् ४.१.२५
अन्नभोजने ४.१.३४
अन्नादिनिबन्धनम् ३.५.७
अन्यतरस्या ३.५.९७
अन्यथापंक्तिहीनः ४.१.२४
अन्यदत्तकम् ३.५.१२१
अन्यदाने ३.१७.२०
अन्यभावम् १.१००
अन्यवस्तु ३.११.३
अन्यवस्तुनः ३.११.४
अन्यविक्रीतम् ३.११.६
अन्यवेश्मनि १.३२
अन्यसन्ततिः ३.५.३०
अन्यायः १.४८, -म् ३.१.४, -येन २.१.२३, ३.३.१२

अन्यायनिष्ठे २.१.६०
अन्योऽन्यम् ३.१०.९, ३.१५.७
अन्योऽन्यसंमत्या ३.३.२
अन्वाधेयम् ३.५.१४१
अन्वाहितम् ३.४.१०
अपकारः २.१.१८
अपक्षपातो १.४४
अपत्यवर्जिता ३.५.३४
अपत्यानि ३.५.१९
अपथि १.६७
अपद् ३.१५.२
अपराधम् ३.१४.२१, -धो ३.२.३३
अपराधसहस्रे १.३७
अपराधिनः ३.१८.२५, -भिः ३.१९.४१
अपरित्यजन् ३.१३.३
अपविद्धः ३.५.७१
अपसारयेत् २.१.४
अपह्नुतिम् ३.१०.१७
अपहृतम् ३.११.१०, -त्य २.२.२९
अपुत्रपुत्रमरणे ३.५.१११
अपुत्रायाः ३.५.९७
अपुत्रे ३.३.६
अपुत्रो ३.५.२२
अपौगण्डा ३.१.४२
अप्रजा ३.५.५८
अप्रतिबन्धकः ३.५.२
अप्रमाणता ३.५.१६
अप्रमादाः १.९३
अप्रसिद्धम् ३.१.१६
अप्राप्ते ३.७.२१
अप्रीतिकरम् ३.१२.३
अबद्धम् ३.१७.२७
अबलानाम् ३.१४.२४
अब्धि १.३
अभक्ष्यभक्षके २.१.१५
अभक्ष्यस्य ४.१.३८
अभयम् २.१.६६, -ये ३.१६.३
अभयदानेन ३.१६.३
अभिघात १.६
अभिघातकृत् ३.१.३४
अभिधान्वितम् ३.१.१३, ३.१.१४
अभिनन्दनो ३.१.१
अभिनियोगे ३.२.५९
अभिप्रायः २.१.४३, -म् ३.१०.१८
अभिप्रायसर्वस्वम् ३.२.१६
अभिमानतः १.४१, २.१.२२
अभिमुखम् २.१.४३
अभियुक्तः १.७३
अभियोगः ३.५.८७, -म् ३.३.७, -स्य २.२.५
अभियोज्यो १.८८
अभिलपेन्नरः ३.१४.६
अभिलाषिभिः ३.४.१८
अभिलिप्ताङ्गाम् ३.१९.३८
अभिषक् ३.१७.२६
अभीरून् २.१.४५
अभ्यङ्गलेपनकानि ३.१९.२८
अभ्युत्थान १.३८
अभ्रनरेन्द्रसूनुः ३.२.१
अमदा १.२५
अमातृपितृको ३.७.७
अमात्यः १.५६, -त्यैः १.६७
अमूढः १. ८१
अम्बानुमतिम् ३.५.१०३
अम्बुना ३.१४.७
अयुक्तशपथम् ३.१७.१३

अयुध्यमानम् २.१.६२, २.१.६३
अयोग्यो ३.१७. १३
अरदितः ३.१०.३५
अरनाथम् ३.१५.१
अरिम् २.१.११
अर्च्चियित्वा ३.१९.४५
अर्जनीयम् १.९५
अर्जितम् ३.५.१३४
अर्थतः ३.१७.२
अर्थम् १.४७, ३.२.५६, -र्थे ३.१.२०
अर्थसिद्धिः ३.१.३१
अर्थिनम् ३.१.३३, -ना ३.१०.२९, ३.१०.३५, ३.१०.३६, -नि ३.१०.१३, -नो ३.१.५१, ३.१०.२०
अर्थिनिवेदितम् ३.१.२६
अर्थिप्रतिज्ञाम् ३.१.३०
अर्थिप्रत्यर्थिनोः ३.१.६३, ३.६.२०
अर्थिप्रत्यर्थिमोदिनः ३.१०.३०
अर्थी ३.१.३४
अर्धः ३.१२.१०, -म् २.१.१२, -र्द्धे ३.१७.२३
अर्धकः ३.१२.१०, -म् ३.१२.१२
अर्धभागी ३.५.३९, ३.५.४४
अर्द्धांशम् ३.२.३६, ३.१७.२२,
अर्धैजात्वविः ३.९.२
अर्पणीयाः २.१.७०, ३.९.८
अर्भकस्य ३.१६.१५
अर्हतम् ३.११.१
अर्हताम् ४.१.१०
अर्हति ३.५.१४४
अर्हन्नीतिः १.६
अर्हन्नीतिशास्त्रतः ३.५.१४६, ३.१४.२६
अलङ्कारो ३.५.१४३
अलङ्कृतः २.१.४७
अल्पमतिभूरि ३.१.३२
अवत्सानाम् ३.९.३
अवधिः ३.६.१४, ३.८.४, -धौ ३.१.२७
अवशिष्टम् ३.५.१९
अवसाने ३.७.१७
अवाप्तुम् ३.२.६१, -मौ ३.२.३
अवाप्नुयात् ३.१६.८, ३.१६.११, ३.१७.२३, -प्नुयुः ३.५.९३, -प्नोति ३.२.५७, ३.५.६४, ३.५.१०७, ३.१०.१५, ३.१२.१३
अवार्यवीर्यो १.३०
अविकृतम् ३.८.६
अविनाश्य ३.५.१३२
अविभक्तम् ३.५.१००, -क्ता ३.२.५३, ३.५.१५, ३.५.१२५, -क्तान् ३.५.२१, -क्तानाम् ३.२.२३
अविरोधितान् १.३९
अविरोधेन ३.१९.४७
अव्यङ्गो १.२४
अशक्तः ३.२.२०, ३.२.३९, ३.११.८, ३.१५.८, ३.१८.२१, -क्ताः ३.१.२२, -क्तेन ३.१०.३
अशङ्करम् ३.१४.२३
अशनस्थानदाता ३.१६.२८
अशनाद्यैः ३.१५.४
अश्वः २.१.७०, -नाम् ३.१७.१५
अश्वोष्ट्रमहिषीघाते ३.१८.२३
अष्टदुष्टकर्मारिम् ४.१.१
अष्टमम् ३.१९.५०, -मे ३.९.१०, -मो ३.९.१३, -ष्टौ ३.६.१६, ३.८.९

अष्टमाषैः ३.९.२
अष्टमांशम् ३.१७.२२
अष्टादश..नाम् ४.१.१३
अष्टावमी ३.५.७२
असंशयम् ३.१०.२२
असंस्कृतानि ३.५.१९
असत्यः ३.१०.१७, -म् ३.१.५६, ३.१.६१, -त्याः ३.१.५७, ३.१.६०, -त्ये ३.१०.१३, -त्येन ३.१.४८
असत्यत्वम् ३.१.५२
असत्त्वे २.२.५, ३.५.५४
असन्दिग्धः २.१.२०, -म् ३.१.३१
असमर्थो २.२.२५
असवर्णा ३.५.६५
असहायतः ३.५.१३२
असाध्यम् ३.१.१६, -ध्ये २.१.२१
असिद्धे ३.७.२२, -द्धौ २.१.२३
असृक्प्रचालने ३.१८.७
अस्खलिता २.१.४४
अस्त्यम् ३.१०.१
अस्त्युभयम् ३.६.४
अस्पृश्य १.३३
अस्वाधीनः ३.२.५१
अस्वामिवस्तुनः ३.११.१
अस्वामिविक्रयः ३.११.२, ३.११.१३
आक्षेपान् २.२.४
आख्यजाति ३.१.१४
आख्यातम् २.१.६
आगतमानवान् ३.१५.४
आगन्तुकाः ३.९.७
आगमम् ३.११.१
आग्रहात् ४.१.३७
आचमेद् ४.१.४६
आचरेत् ३.३.१२, ४.१.८, ४.१.१५, ४.१.४५
आच्छादनम् ३.५.१०७
आचाम्लाः ४.१.१८, ४.१.२१, ४.१.३१, -नाम् ४.१.२७
आचारनिरतः १.६५
आचारभ्रष्टत्वात् ४.१.१२
आचारशुद्ध्यर्थम् ३.१९.३०
आचार्यम् २.२.३२
आज्ञाभक्तितत्परः २.१.६७
आज्ञाम् ३.१.२०
आज्ञार्थसाधकान् ३.१.४४
आततायिनिवारण ३.१६.३१
आतुर्यवासरम् ३.१९.५
आततायिनः २.२.३४
आत्मजो ३.५.८२
आत्मप्रत्यर्थिनामयुक् ३.१.१२
आत्महितार्थम् ३.१२.५
आत्मा ३.५.३१, -त्मनः ३.७.७, -मनाम् ३.१६.२८, -मनि ३.५.३१
आत्मीयकान् २.१.३१
आत्मीयवित्तेषु ३.५.१२०
आत्मीयविरोधो ३.४.१३
आत्र्यब्दम् ३.११.१२
आदिमन्तम् ३.१०.२७
आदिमो १.१३
आदेयम् ३.२.३६, ३.२.५६, -याः ३.१.५८
आदर्शालोकनम् ३.१९.११
आद्यवर्णत्रयाणाम् ४.१.२४
आपःश्रवेण ३.६.१०
आपणः ३.५.६४
आपदाकालम् ३.५.५

आपदाम् ३.१७.२
आप्रतिज्ञान्तम् ३.२.११
आप्राप्तव्यवहारेषु ३.५.१०
आभूषालङ्कृतविग्रहा ३.१९.१४
आभोगतः ३.६.४
आमात्यादिसंयुतम् २.१.१०
आम्लम् २.१.२३
आमोघरत्न २.१.७०
आयव्ययविशोधितात् ३.५.३६
आयात् ३.७.१८
आयुधः २.१.३२
आयुधिकः ३.७.४
आराधने १.५०
आरोपणम् २.२.२७
आर्त ३.२.५१, ३.४.७
आर्तवदर्शने ३.१९.३७
आर्यवेदचतुष्कम् १९
आर्यैः १.१९, १.२१
आवश्यकक्रिया ३.१.२३
आश्रयः १.५७
आश्वत्थ ३.६.११
आसनम् १.३४, १.५७, २.१.६, -ने ३.१८.३
आसिद्धि १.२८
आस्तिक्यादिमतिषु १.६४
आस्यम् ३.१९.५
आहर्तुम ३.४.४
आहवे २.१.४९
आहूतः ३.१.३६, -तान् ३.१.४४, -तैः ३.१.६०
इङ्गिते २.२.४, -तेन २.१.२४
इतरभेदाभ्याम् ३.२.२९
इन्धनम् २.१.६३
इलापतिः २.१.४९
इषुः ३.१.५७
ईतिदुर्भिक्षमृत्युजम् ३.१४
ईप्सुः ३.१.११
उक्तमिषम् ३.२.३८
उक्तश्रवणात् ३.१०.३९
उचितस्थले १.१०
उत्कृष्टम् १.८९
उत्कोचेन ३.४.७
उत्तमः २.२.२६, -म् १.९५, -मानि ३.१७.१८, -मेन २.१.१७, २.१.१९, २.१.२०
उत्तमलक्षणम् १.५२
उत्तमर्णेन ३.२.५
उत्तमर्णप्ररूपणात् ३.२.३७
उत्तमसाहसम् २.१.१५, ३.१७.७, -सैः ३.१७.२४, ३.१७.२६, ३.१७.३२
उत्तरदाने ३.१.२७
उत्तरम् १.२३, ३.१.२८, ३.१.३०, ३.१.३२, ३.१.३३, ३.१.३३, ३.१.३७
उत्तरदायकः ३.१०.३९
उत्तरलेखनम् ३.१.२९
उत्तरोत्तर ३.५.७३
उत्पाटिता ३.१८.८
उत्साहभृत् २.१.११
उत्साहमन्त्राः १.५५
उत्साहयेद् २.१.५६
उत्सेकाः १.५१, -कात् १.६७
उदकबन्धविनाशे ३.१७.५
उदन्तम् ३.१४.१६
उदन्तमृणी ३.२.३४
उदरम् ३.१४.२४, २.१.२४
उदारधीः २.१.२२

उदाहृतः ३.१.४९
उद्धृतम् ३.५.१३२
उद्यतस्य ३.१२.१४, -तेन ३.१०.४, -तो २.१.२८
उद्यानम् ३.६.२३, -ने २.१.३
उद्युक्ता ३.१.२३, -क्तैः ३.१०.११
उन्मत्तक ३.२.५१
उन्मत्तः ३.५.१८, -त्ता ३.१.२३
उपकारकाः ३.६.२८
उपकाराय २.२.१, ३.१५.१२
उपकारेच्छया ३.१०.३७
उपकृतिहेतूनाम् ३.१७.५
उपक्रमः १.८७
उपक्षेत्रगृहाणाम् ३.१७.११
उपजीव्यधनम् २.१.१९
उपद्रवतो ३.१६.२६
उपद्रवम् ३.१८.१०
उपनिधिः ३.१०.१४, -निधेः ३.१०.२१
उपयोगित्वात् १.२४
उपविष्टौ ३.१८.३
उपस्थम् २.१.२४
उपायाः १.५५, -नाम् १.५४, -येन २.१.२८
येषु २.१.२०, -यो २.१.१८
उपार्जितम् ३.५.११०
उपेक्षणाम् २.१.६
उभयसत्यता ३.१.६७
उभयोः ३.१.६०
उष्णीषस्य ३.५.६६
उष्णीषबन्धे ३.५.६७
ऊढाजाभ्रातृभागतः ३.५.४४
ऊढायाः ३.५.१४०
ऊर्ध्वम् ३.५.१४, ३.५.२४, ३.५.३६, -र्ध्वे ३.५.२७
ऋक्थिनः(नो) ३.२.३, ३.२.२०, ३.२.४०, ३.२.५५, -म् ३.२.४९
ऋक्थी ३.२.५, ३.२.३१, ३.२.४५
ऋणप्रदानग्रहण ३.२.१
ऋणम् ३.२.२, ३.२.३
ऋणलाभः ३.२.२३
ऋणादानम् ३.१.५
ऋणादानक्रमो ३.२.६४
ऋणादि ३.१.२७
ऋणार्त्तः ३.१.५१
ऋणिना ३.२.३२, ३.१.५८, -णी ३.२.१५, -ने ३.२.६२
ऋणिलेखः ३.१.३४
ऋते ३.५.११
ऋषभः १.१३
एकक्षेत्रे ३.१९.१८
एकतत्पराः १.९८
एकपक्षस्वरूपाप्तिम् ३.१.५१
एकभक्तानि ४.१.१७
एकभुक्तयः ४.१.२१
एकविंशतिः ४.१.१३
एकादशविधाः ३.१०.४०
एकाब्दम् ३.१६.१४
एकाशनानि ४.१.९, ४.१.१४, ४.१.२८, ४.१.३१
एकासनाशनम् ३.१४.७
एकैकविषयासक्तो ३.१.१८
औघविनाशभावात् ४.१.५१
औत्पत्तिकी १.९७
औदयिकम् ३.५.१४
औदार्यम् १.३०
औरसः(सो) ३.५.६६, ३.५.६८, ३.५.६९

औरसवत् ३.५.५७
औषधाद्यम् ३.१८.११
कटु २.१.२३
कठिनम् ३.१६.९
कन्दमूलच्छदीनाम् ३.१६.२०
कन्यका(म्) ३.५.३२, ३.१९.२, ३.१९.१६
कन्या (म्) ३.५.२४, ३.५.२५, ३.५.३४, ३.५.१२६, -याः ३.५.२९, ३.१६.१५, -याम् ३.५.३०
कन्याङ्गे ३.१४.१४
कन्यावास्तुहिरण्यादि ३.१०.२४
करणे ३.१६.१६
करम् ३.१६.७
कर्त्ता ३.१७.११
कर्त्री ३.१०.१७
कर्बटस्य ३.९.१२
कर्मन् ३.७.२१, ३.१८.११, -णा ३.७.१२
कर्मकरम् ३.१९.९
कर्मोदयेन ३.१०.२
कलहः ३.६.२४
कलहादेः ३.१५.५
कला ३.११.२७
कलामानम् ३.४.९
कलाशक्तिम् २.१.२५
कलिः ३.६.९, -कलौ २.२.६, ३.५.१३
कल्पिताः ३.५.७२
कशाभिः ३.१६.१०
कषाविंशतिभिः ३.१८.४
कष्टम् ३.१.६६
काञ्जिकम् १.३६
काणान्धखञ्जकुष्ठ्यादीन् ३.१२.१६
कातम् २.१.६१
कानीनः ३.५.७१
कामचारे ३.९.६
कामतः ३.११.३५
कामम् २.१.५१
कायः ३.७.२२
कायिका ३.२.१०, ३.२.१४
कारणीया ३.१८.२४
कारमाकारधिक्काराः २.२.२
कारवः ३.१४.१२
काराक्षेपणम् २.२.३
कारागारादिबन्धनैः ३.१०.२५
कारागारे २.२.२५
कारागृहार्हकः ३.१६.२८
कारागृहे ३.१६.१८
कारानिवेशनम् २.२.२८
कारीषम् ३.६.१३
कारुकाङ्गनाभिः ३.११.२९
कारुगृहे ४.१.३३
कारुण्यम् १.१५
कार्पासे ३.८.१०
कार्मिके ३.८.१२
कार्यम् ३.२.३३, ३.५.४२, ३.५.७४, ३.५.१०८, ३.६.१२, ३.७.१८, ३.१०.३६, ३.१८.२
कार्यचिन्तासमाहिताः ३.१३.१०
कार्यदक्षा ३.१३.९
कार्यसिद्धिः(म्) ३.१०.३६, ३.१३.७
कार्याभिरतो ३.१०.२९
कालचक्रेण ३.५.१२१
कालदोषेण २.२.६
कालम् २.२.८, ३.६.११, -ले ३.२.४, ३.२.५, ३.२.२७, ३.२.३०, ३.२.४२, ३.६.५, ३.१०.६, -लेन ३.११.१८, -लो ३.१.२८

कालानुसारतः ३.१९.८
कालानुसारिणी २.२.७
कालिका ३.२.९, ३.२.१२
काष्ठघर्षणम् ३.१९.१२
काष्ठः ४.१.४२, ३.१८.३
कासिका ३.६.३
किरातः ४.१.८
किरेद ३.७.१५
किंशुक ३.६.११
कीर्तिः ३.१९.३८
कीर्तिप्रिया १.९३
कीर्तिर्विस्तृता ३.१६.२
कुङ्कुमादि ३.१७.३०
कुटुम्बम् ३.१५.६, -स्य ३.५.५०, ३.५.११३
कुटुम्बकम् ३.५.७८
कुटुम्बजः ३.१.५१, ३.५.६९, -जान् ३.५.५९
कुटुम्बपालने ३.५.५३, ३.५.१०४
कुटुम्बपुष्ट्यर्थम् ३.१०.३
कुटुम्बाधिपतिः ३.५.२२
कुटुम्बार्थम् ३.२.५२, ३.२.५४
कुटुम्बावन ३.२.३
कुधर्मे ३.४.८
कुधीः ३.१८.२
कुन्तः २.१.५२
कुन्थुतीर्थेशम् ३.१४.१
कुपात्रे ३.४.८
कुप्य २.१.७०, -कुप्ये ३.२.५९
कुमारपाल १.६
कुमारस्य ३.५.१२३
कुम्भम् ३.७.१४
कुलः ३.१.२६
कुलकरैः २.२.६
कुलक्रमागतम् १.६६
कुलजा ३.१.२२, ३.१.३९, -जे ३.१०.४
कुलद्वये ३.१९.२६
कुलरीतिम् ३.५.४९
कुलशुद्धाः ३.१३.१०
कुलस्त्रियः ३.१९.२९, ३.१९.२६, ३.१९.२७
कुलागतम् ३.५.१३२, -ताम् ३.५.८३
कुलाङ्गना ३.५.५३
कुलीनाः ३.१०.३२
कुलोचितः ३.१९.४७
कुल्यज्येष्ठान् १.३१
कुल्यविवादेषु ३.१०.३०
कुल्याः ३.१०.३०
कुशलः ३.१८.१९
कुशीला ३.५.७५
कुसङ्गम् ३.१९.२५
कुसङ्गतो ३.१९.२५
कूर्चम् ४.१.४४
कूटम् ३.१७.२५
कूटमानतुलाभिः ३.१७.२४
कूटलक्ष्यस्य २.१.५५
कूटव्यवहृतिम् ३.१७.२४
कूटसद्भावम् ३.१.५९
कूटसाक्षिवद् ३.१.५९
कूटहेम्नः २.२.११
कूपः ३.६.२८, -तो ३.१६.१०, -पे ३.१४.६
कूर्चम् ४.१.४४
कृतघ्नम् ३.५.४८
कृतज्ञः १.८३
कृतमङ्गल ३.१९.१४

कृतमासप्रतिज्ञो ३.२.१४
कृतसर्वसुसंस्कारा ३.१९.१३
कृतस्नानार्चनात् ३.१.४५
कृतस्नाना ३.१९.१३
कृताञ्जलिम् २.१.६१
कृतिम् ३.१.४०, ३.७.१२
कृत्यतत्त्वम् ३.१.६३
कृत्यसाधनदूषणे ३.१.२४
कृत्यसाधने ३.१.४३
कृत्यार्थहानिदे ३.१.३५
कृत्रिमः ३.५.७१
कृपाणतः ३.१.४६
कृपाम् १.१२
कृपापारः १.२५
कृमिमूत्रपुरीषपात्रम् ३.१४.२४
कृषिः १.१५, ३.६.३१, -षेः ३.१६.२१
कृषिकः ३.७.४
कृषीवलान् ३.६.७
कृष्णास्याम् ३.१४.१०
केली ३.१४.७
कैतवम् ३.१०.२४, -वेभ्यः ३.१५.९
कोविदः १.७९
कोश(ष)ः १.५६, -स्य १.४२, १.४४, ४.१.५
कोशवान् १.२७
कोश(ष)वृद्धिः ३.१६.५, ४.१.११, ४.१.१५
कोषाध्यक्ष २.१.३४
कौशेये ३.८.१२
क्रमायातम् ३.५.१००
क्रयम् ३.११.८
क्रयक्रीतो ३.५.७०
क्रयेतरानुसन्तापो ३.१.६, ३.८.१, ३.१२.१३
क्रय्यम् ३.८.८
क्रिया ४.१.२१, ३.२.५९, ४.१.२१
क्रियाद्विष्टो ३.१.३६
क्रियापेक्षो ३.१७.४
क्रियाभेदसमन्विता ३.१.१७
क्रीतः ३.५.६८, ३.५.७०, ३.७.५, -म् ३.८.६, ३.८.८, -नाम् ३.८.४
क्रीतमूल्यम् ३.४.६
क्रीतानुशयः ३.८.२
क्रुधान्यथा ३.१.४०
क्रेता ३.११.५, ३.११.७, ३.११.९
क्रेतृहस्तस्थितम् ३.११.६
क्रोडे १.३५
क्षेत्रात् ३.१६.११, -त्रे ३.६.२८, -त्रो ३.१९.८
क्षेत्राधिपाय ३.९.५
क्षेत्रिभिः ३.६.२८
क्षेपकाय ३.१०.२१
क्षेपिनम् ३.१०.८
क्षौरकृत्ये ३.१९.४३
खड्गः २.१.५२
खचरैः ३.१५.२
खट्वासनम् ३.१४.८
खरे २.२.२७
खरोपरि २.२.२९
खरोष्ट्रयोः ३.९.४
खलः ३.१०.२४
खाग्निमितैः ३.१२.७
गच्छगच्छ ३.१८.१७
गजः २.१.७०
गणकार्यगतेन ३.१३.८
गणकार्यसमागतान् ३.१३.७
गणनायकम् १.४

गणनोत्तरम् ३.९.८
गणभूपस्थितिम् ३.१३.५
गणिका ३.१९.२९
गणेशान् १.३
गतप्रत्यागते २.१.३६
गद्गदवाग् ३.१.५०
गन्धः ३.१७.२९
गन्धलेपनम् ३.१४.७
गम्भीरमधुरालापी १.७९
गर्तम् २.१.५२, -तासु ३.१७.१५
गर्भस्थे ३.५.८
गर्भहा २.२.३४
गर्भो ३.१९.३६
गवादिपशवो ३.९.८
गवादिपशुवृत्यर्थम् ३.९.११
गव्यदुग्धने ४.१.४५
गाम् २.२.३२
गाम्भीर्यम् १.३०
गार्हस्र्थम् ३.५.११
गावम् ४.१.४३
गिरम् ३.६.२१
गिरा १.४
गीतम् १.४७
गुडः ३.१७.२९
गुडाज्यक्षीरदध्नाम् ३.१६.१९
गुणधारका १.७०
गुणवान् ३.१.६२
गुणसम्पन्नः ३.१९.४४
गुणाः १.२४
गुप्तचिह्नानि ३.६.१३
गुप्तसाक्षी ३.१०.३९
गुप्तो ३.१०.३१
गुरुः(म्) १.७३, १.८९, २.१.३२, -रून् १.३१, -रोः ४.१.१०, ४.१.२१
गुरुतल्पगे २.२.२७
गुरुदेवभिदः १.५९
गुरुदेवाद्युपासकः १.६४
गुरुपादोदकेन ४.१.४७
गुरुपूजा ४.१.३२
गुरुभक्ताः १.९२
गुरुभक्तिः ४.१.२६
गुरुसङ्घसपर्या ४.१.१९
गुरुसङ्घविदाम् ४.१.१४
गुरुसेवा ४.१.२८
गुरोर्भक्तिर्वात्सल्यम् ४.१.२२
गुरोस्ताडयिता २.१.२०
गुर्वादिनिग्रहे ४.१.३५
गुर्वी ३.२.५८
गुर्विणी २.२.३१
गुल्मवल्ली ३.१६.२०
गुल्मान् २.१.४५
गूढभक्तिपरायणे २.१.३६
गूढचरैः ३.१०.११
गृहकमर्न् ३.१९.२३
गृहजः ३.७.५
गृहनायके ३.५.४७
गृहमुद्राविभेदकः ३.१७.१०
गृहस्थानि ३.१०.२३
गृहागतम २.१.६२
गृहाद् ३.१९.१०
गृहाद्बहिः ३.५.८७
गृहारामादिवस्तूनि ३.५.४
गृहिणाम् ३.१९.३१
गृहीतद्रव्यो ३.२.२५
गृहीतराः ३.२.३९
गृहीत्वार्णम् ३.२.१५

गृहे ४.१.१३
गृह्णन् ३.११.५
गृह्णीयात् ३.२.५६, ३.५.२३, ३.५.८०, ३.५.१०९, ३.१५.१०
गृह्णीयुः ३.५.९०
गृह्यगुरुणा ३.५.६३
गेयामेयगुणाविष्टम् ३.५.१
गेहे ३.१६.२२
गोऽजाविमहिषीदासाः ३.२.३९
गोऽश्वादिरुद्धे ३.१८.२१
गोकुले ३.१९.३३
गोगजाः ३.१८.२३
गोगजोष्ट्रादि २.१.१२
गोत्रजः ३.५.७३, -जैः ३.५.७९, -म् ३.५.५५
गोत्रे ४.१.३६
गोदेवब्राह्मणैः ३.१.४६
गोधनम् ३.२.१८, -ने ३.२.४३
गोपः ३.९.५, -स्य ३.९.९, -पेन ३.९.८
गोपवेतनम् ३.९.१०
गोपालान् ३.६.७
गोप्यभोग्यतया ३.२.२९
गोप्यस्य ३.२.३०
गोब्रह्मभ्रूणसाधुस्त्रीघातिनाम् ४.१.३४
गोमहिष्यादिकम् ३.२.४२
गोमी ३.९.५
गोर्वधे ३.१.२८
गौणाः ३.५.६८
ग्रन्थाः १.२१
ग्रन्थान्तराद् ४.१.५०
ग्रहः ३.१.७
ग्रामः ३.५.६४, -स्य ३.९.१२
ग्रामक्षेत्रगृहारामनीवृत् ३.६.२
ग्रामतो ३.१८.९
ग्रामभूमिपाः ३.६.१६
ग्रामलोकैः ३.९.११
ग्रामविवीतान्तम् ३.९.६
ग्रामवृद्धानाम् ३.६.२०
ग्रामीणः ३.१०.२९, -णान् ३.६.७
ग्राहकः ३.८.६
ग्रीवाम् ३.१८.६
घटानाम् ४.१.४७
घातकाद् ३.१८.११
घातकारिणः ३.१६.३१
घातशान्त्यर्थम् ३.१८.११
घातोद्यतम् ३.१६.३०
घ्नन्त २.२.३२
चक्रव्यूहाव्यूहः १. ८०
चक्रसागरव्यूहः २.१.५०
चणका ३.१९.१९
चतस्रः ४.१.९
चतुरङ्गचमूवृतः २.१.३४
चतुर्गुणः ३.९.३
चतुर्थदिवसे ३.१९.६
चतुर्थभक्ताः ४.१.१३, ४.१.२१
चतुर्थांशम् ३.३.१०
चतुर्थाः ४.१.१७, -र्थैः ४.१.३४
चतुर्थेऽह्नि ३.१९.१३
चतुर्दशाहनि ४.१.४४
चतुर्वर्णजनोद्भूतम् ३.१४.२१
चतुर्वर्णाः ३.५.३७, -नि ३.५.८८, ३.१६.२१, ३.१८.५
चतुर्विधम् ३.१.३०, ३.४.५, -र्विधा ३.२.९
चतुर्विंशतितीर्थनाथ ४.१.५१
चतुष्कम् १.५४

चतुस्त्रिंद्व्यंशभागिनः ३.५.३७
चत्वारः ३.७.३, -रा ३.६.१६, -रे ३.१९.२७
चन्द्रबाणवृषैरौप्यैः ३.१७.४
चरः २.१.४३, -राः १.९८, -रान् १.७५
चैराज्ञातः २.१.३५
चर्मकारादिगृहे ४.१.८
चाण्डालः ३.१७.१२
चाण्डालीसम्भोगे ४.१.३०
चातुर्यभूषितः १.३०
चिताधूमस्पर्शे ३.१९.४३
चित्तविक्षेपम् ३.१९.१४
चित्ताभिप्रायम् २.१.२४
चित्ते ३.३.१२, ३.८.३
चिदानन्दमयम् ४.१.१
चिह्नज्ञाता ३.६.२३
चिह्नम् ३.६.६, ३.६.९, ३.६.२४, -नि ३.६.१७, चौरः ३.१२.६, -म् २.१.१९, -राद् ३.२.२०, -रान् १.५९, ३.१६.८, -रैः ३.२.४३, ३.७.८, ३.९.९, -रो १.८१
चौरवत् २.१.१२, ३.१८.२३
चौर्ये ३.८.१०
छत्राधः ३.७.१५
छित्तिकारकान् १.३
जगत्प्रभुः १.२३
जगत्स्थित्यै १.१९
जगदोजस्वी १.२५
जगन्नाथम् १.१०, २.१.१
जघन्येन ३.१३.६
जङ्गमस्थावरात्मकम् ३.५.११२
जङ्गमम् ३.५.३, ३.५.४
जडः ३.५.९१
जनकेन ३.५.२६
जननीद्रव्यमूढा ३.५.३२
जनसाक्षितः ३.५.९४
जनैः ३.१६.३
जन्मनि ३.१०.१
जयकुञ्जरम् २.१.४८
जयध्वनिः २.१.४७
जयपत्रके ३.१०.२०
जयपत्रम् ३.६.२५
जयपराजययोः ३.१.१९
जयप्राप्त ३.७.११
जयः २.१.२९, -म् २.१.७१, -ये २.१.१६, २.१.३०, २.१.६९
जयपराजयौ ३.१.६७
जयवादित्र २.१.७२
जलशैल १.८४
जलश्रेणिप्रवृत्तिषु ३.२.५८
जलाग्निचौरैः ३.१०.१६
जलाशयाः २.१.४२, -शयैः १.५२
जागरूको १.८०
जातकर्मन्ः ३.५.६३
जातस्फूर्तिः ३.१०.३९
जातिः ३.१.२६, -म् ३.१२.१५
जातिजैः ३.३.६
जातिदोषम् ३.१२.१३
जातिभोजने ३.३.९
जामाता ३.५.११७
जामातृ ३.५.१२२
जामातृकुलागतम् ३.५.८०
जायापतिकुलस्त्रीभिः ३.५.१४१
जारम् २.१.१९
जारश्चौरः २.१.१८
जितमानवान् ३.१५.५

जितम् ३.१५.७, -ते ३.१५.७
जिनज्ञानौषधादीनाम् ४.१.५
जिनपद्युगम् ३.१९.४५
जिनपूजनम् ४.१.२९
जिनपूजा: ४.१.१९
जिनशासने ४.१.१७
जिनानाम् ४.१.४
जिनै: ४.१.२७
जिनोपचितिपञ्चकम् ४.१.२२
जिनोपवीतधारणम् ४.१.१५
जिनोपवीतसंस्कार: ४.१.५
जीवघातकृत् ३.१८.२४
जीवनाशे ३.१८.२२
जीवमात्रे ३.१८.२६
जीवा: ३.१७.३३
जीवोत्पत्ते: ३.१९.१७
जेतव्यवर्षे १.८४
जैनशास्त्रविशारदै: ४.१.८
जैनागमे २.२.२
जैने ३.५.७२
जैनोपवीतादिकृतसूत्राणि ३.१६.२३
ज्याम् ३.२.६०
ज्येष्ठता ३.५.२९
ज्येष्ठदेवर: ३.५.७५
ज्येष्ठभ्रात्रा ३.२.५२
ज्येष्ठादिपुत्र ३.५.११५
ज्वलनज्वालने ४.१.४२, ४.१.४३
ज्ञातिजै: ३.५.७९
ज्ञातिदण्डेन ४.१.२६
ज्ञातिदण्डच्यो ४.१.२४
ज्ञातिधर्माचारभ्रष्टो ३.५.८५
ज्ञातिबहिष्कृत: ४.१.७
ज्ञातिबाह्य: ४.१.१२, -ह्यो ४.१.२९
ज्ञातिबाह्यत्वात् ४.१.७
ज्ञातिभोजनम् ४.१.५, ४.१.१८, ४.१.२९, -ने ३.५.१२२
ज्ञातिराज्याधिकारिण: ३.५.८६
ज्ञातिलोकस्य ४.१.११
ज्ञानतो ३.१८.१२
ज्ञानमानम् ४.१.२३
ज्ञानेन ३.८.१३
ज्ञेय: ३.१०.२८, -या ३.८.१०, ३.१३.२, -यो ३.१०.३५, ३.८.४
तकम् ३.१६.१६
तडागकम् २.१.६४
तथ्यम् ३.१२.१८
तदाकारै: २.१.२४
तनया ३.५.२६
तनुज: ३.१०.२
तपस्विन: ३.१०.३२, -म् २.२.३१
नाम् १.३७
तस्करम् ३.१६.३०, -राणाम् ३.१६.२८
तस्करवृत्तान्तम् ३.१६.१२
तस्करालये ३.१६.२५, ३.१४
ताडनादिभि: ३.१२.११, ३.१४.२१
तातम् ३.५.४२, -ते ३.५.४४
तो ३.५.७
तापसम् २.१.६१
ताम्बूलश्रीफलादिकम् ३.५.६२
ताम्रस्य ३.८.९
तारकम् ३.७.१
तार्क्ष्य २.१.३८
तालै: ३.६.११
तिक्तम् २.१.२३
तिथिवारादिकम् ३.१२.१५
तिर्यग् ३.१७.१५, -ङ् ३.१७.२६

तिर्यग्गते: ३.१५.११
तीर्थमृत्साजलेन ४.१.६
तीर्थमृदादिभि: ४.१.११
तीर्थयात्रा: ४.१.३, ४.१.९, ४.१.१४, ४.१.३२
तीर्थयात्रात्रयम् ४.१.१८, ४.१.४९
तीर्थयात्रात्रिकम् ४.१.२९
तीर्थयात्रापञ्चकम् ४.१.२२
तीर्थयात्रैका ४.१.२५
तीर्थोदकसमुच्चयै: ४.१.४६
तीर्थौषधिजलस्नानम् ४.१.१५
तुर्यकृत्व: ३.१७.२३
तुर्यगुणित: ३.१७.९
तुर्यमंशकम् ३.२.३६
तुर्यशतप्रमै: ३.१४.१९
तुर्यांशार्हो ३.५.६५
तुर्यांशभागी ३.५.३९
तुर्यांशम् ३.५.६७
तुर्या: ३.७.२, -र्यै: ३.१८.७
तूत्तमर्णिक: ३.२.४३
तूर्णमावेश्य: ३.१४.४
तूर्णम् १.८१
तूर्य: २.१.४७
तृणधान्येन्धनानि २.१.४२
तेज: ३.११.३८
तैलम् ३.१६.२०, ३.११.३२
तैलादि ३.११.२८
त्यक्तशस्त्रम् २.१.६१
त्यागसमुद्यता: ३.१७.३३
त्यागी ३.१.४९
त्रय: ४.१.९, -त्रिषु ३.१७.४
त्रयस्त्रिंशद् ४.१.३१
त्रिकम् २.२.६, ४.१.१४
त्रिकृत्व: ३.१७.२२
त्रिस्त्रिचलुभि: ४.१.४६
त्रिधा ३.२.२४, ३.१७.३
त्रिपला ३.८.११
त्रिविध: ३.१७.४
त्रिर्विभु: ३.७.१५
त्रिंशद् ३.८.१२, ४.१.२८
त्रिंशद्गुणम् २.१.२३
त्र्यहम् ४.१.४१
त्र्यौरसउत्पत्तौ ३.५.६५
त्वक् ३.१८.८
त्वग्भेत्ता ३.१८.७
त्वरम् ३.१४.९
त्वरावृत्य २.१.२५
दण्ड: १.४१, १.४४, २.२.९, २.१.१५, २.१.२३, २.२.२६, २.२.३४, ३.९.३, ३.९.४, ३.१२.७, ३.१२.९, ३.१२.११, ३.१२.१४, ३.१७.२०, ३.१८.८, -म् १.४७, २.२.८, ३.१२.१३, ३.१६.७, ३.१६.११, ३.१८.१९, ३.१८.२३
दण्डतर्जना ३.१४.२१
दण्डनायकम् १.८९, -कान् १.४५
दण्डनीति: २.२.१, २.२.७, -तय: २.२.२, -तीनाम् २.२.६, २.२.३५
दण्डनीतिविशारद: १.६२
दण्डनीय: ३.६.२६, -या: १.५९, ३.१.५८, -यौ ३.४.१७
दण्डपारुष्यम् ३.१८.१
दण्डभा(क्)ग् २.१.१२, ३.९.५, ३.९.९, ३.११.५, ३.१७.२१
दण्डभागी २.१.१३
दण्डभेदाधिति १.५५

दण्डयित्वा ३.१४.१६
दण्डयुक् ३.१८.१५
दण्डव्यूहेन २.१.३७
दण्डस्थानानि २.१.२४
दण्डार्हा २.२.३२
दण्डो २.१.१८, ३.९.६, ३.९.९, ३.१२.१५, ३.१३.४, ३.१७.४, ३.१७.६, ३.१८.१४, ३.१८.२४
दण्ड्यः २.१.१४, २.१.१७, २.१.१९, २.१.२०, २.१.२१, ३.७.२५, ३.१०.१३, ३.११.९, ३.११.११, ३.१२.१६, ३.१२.१७, ३.१३.६, ३.१३.८, ३.१४.६, ३.१४.१९, ३.१४.२०, ३.१६.२१३.१६.२८, ३.१७.२४, ३.१७.२५, ३.१७.२६, ३.१७.२९, ३.१८.२१, ३.१८.२२
दण्ड्यतामायात् ३.१.५५
दण्ड्या ३.३.५, ३.५.११९, ३.९.२, ३.१०.१८, ३.१२.५, ३.१८.१७
दण्ड्याः ३.१.५२, ३.१.५६, ३.१६.२४, ३.१७.३२
दण्ड्येषु २.२.८
दण्ड्यो ३.५.१२६, ३.६.२७, ३.१०.२५, ३.१४.४, ३.१४.५, ३.१४.१८, ३.१७.१४, ३.१७.१५, ३.१७.१६, ३.१७.३०, ३.१७.३१, ३.१८.७, ३.१८.१८
दत्तम् ३.२.२१, ३.२.५५, ३.४.५, ३.४.९, ३.५.८०, ३.५.११४
दत्तः ३.५.६७, ३.५.७१, -त्ते ३.५.५१, -त्तो ३.५.६९, ३.५.१४३, -स्य ३.५.६६
दत्तकः ३.५.५७, ३.५.६९, ३.५.१२१, -म् ३.४.९, ३.५.५८, ३.५.१०९, ३.५.१२०, -के ३.५.६६
दत्तगृहादिकम् ३.५.१०८
दत्तद्रव्यम् ३.८.५
दत्तरीतितः ३.५.५६
दत्तवत् ३.४.१३
दत्तस्यानपकर्मन् ३.४.२
दत्तानपकर्म ३.४.४
दत्ताप्रदानिकम् ३.४.२, ३.४.३
दत्रिमः ३.५.६८, -म् ३.५.८२
दमः ३.१७.९, ३.१७.२०, -म् ३.१७.२८, ३.१८.१३, -मेन ३.१३.६
दम्पत्योः ३.२.२३
दम्भादम्भादि १.८१
दयालुः १.८३
दर्पतः ३.१८.६, -र्पाद् ३.१८.८
दर्शनम् ३.१६.१७
दश ३.६.१६
दशगुणम् ३.१६.११, -णेन ३.१३.८
दशधा २.१.२४
दशभिः ३.१२.९
दशमांशक ३.७.१८
दशमितै ३.१७.१४
दशराजतैः ३.१७.२०, ३.१७.२९, ३.१८.५, ३.१८.७, ३.१८.८
दशवार्षिकी ३.२.६१
दस्युवद् ३.११.५
दाता १.६१, -दानिनो ३.१०.३२
दातुम् ३.१२.१४, २.२.२५, ३.५.७, ३.५.८, ३.५.१४४, ३.१२.१४, ३.१७.१९
दातुमशक्नुयात् ३.२.१४
दानपूजादिजम् ३.१.४८
दानमानाद्यैः ३.१३.७
दानविक्रये ३.५.८४

दानम् ३.४.५, ३.४.६, ३.५.१०, ३.५.१२५, ४.१.१४, ४.१.४९, -नानि ४.१.४, ४.१.१०, -ने २.१.६६, ३.१६.१४, -नेन २.१.१७, -नैः १.५२
दानाधिविक्रयम् ३.५.५१
दाम २.१.१७, -म्ना २.१.१९
दायः ३.१.५, ३.५.२, -यो ३.५.३
दायकः ३.४.१७
दायभागः ३.५.१, ३.५.१४६
दायभागविचारणा ३.५.१३
दायहराः ३.५.७०, ३.५.७२
दायागतः ३.७.५
दायादः ३.५.१२४, -दाः ३.५.११७, -दो ३.५.४०
दायादाभावे ३.५.११५
दारहृत् २.२.३३
दासम् ३.७.१३, ३.७.१४, -सा ३.७.२, ३.७.५, -सेन ३.२.५४
दासको ३.७.३
दासत्वम् ३.७.८, ३.७.१६
दासदासिका ३.२.४६
दासदास्यादिहर्ता ३.१६.२५
दासभावात् ३.७.११, -वेन ३.७.९
दासी ३.१७.१५
दासीकृतः ३.७.८, ३.७.१२
दासीनिग्रहतः ३.७.१२
दासीवर्गशूद्रात्मजो ३.५.४१
दास्यम् ३.७.१३
दिगन्तरे ३.१६.२
दिनत्रयम् ३.१.२७
दिनम् ३.८.५
दिन्तु ३.१०.१
दिवसस्य ३.१९.५०, -से ३.८.७
दिवा ३.१७.६, ३.१९.१२
दिव्यपूर्वकम् ३.१.५१
दिव्यम् ३.१.६६, ३.२.५८, -व्ये ३.१.५२, -येन ३.११.९
दिशाप्रमाणभोगेभ्यः ३.६.१८
दीक्षिताः ३.१४.१२
दीक्षेप्सुम् २.१.६२
दीनः ३.६.२७, -नान् ३.११.५
दीनत्वे ३.२.३२
दीर्घदर्शी १.८०
दुःखम् ३.२.४, ३.९.११, ३.१०.२, -खे ३.१६.४, -खेभ्यो ३.१६.३२
दुःखदायिका ३.१२.४
दुःखभाक् १.४३
दुःखागारे ३.५.११
दुःखानलपयोधरम् ३.१७.१
दुःखितो ३.१६.४
दुःस्वप्नदर्शनम् ३.१९.४३
दुरात्मसु २.२.५
दुरिताकराशुचिगृहम् ३.१४.२३
दुर्गः १.५६, -र्गे २.१.१३
दुर्गतिम् ३.१६.१२
दुर्गवित् १.८४
दुर्गरक्षार्ह २.१.३१
दुर्गादीन् २.१.६४
दुर्धर्षम् २.१.१३
दुर्भिक्षे ३.५.१४४, ३.७.५
दुर्मतिम् ३.५.८६
दुश्शीला ३.५.७६
दुष्कर्मयोगतः ३.५.८५
दुष्टनादनात् ३.१९.२५

दुष्टस्तस्करः ३.१६.२७
दुष्टारातिविनाशकम् ३.९.१
दुष्टो ३.१.५०, ३.१०.२, ३.१८.१२, -स्य १.४४, -ष्टानाम् ३.१६.६
दुहिता ३.५.२९, ३.५.३१, -तृ ४.१.३०
दुहितृजः ३.५.७३
दूतः २.१.२२, -तैः ३.१४.११
दूती ३.१५.११
दूतोह्यनाकुलम् ३.१.२१
दृढात्मना १.६०
दृषदाम् ३.१७.१९, ३.१७.२१
दृषद्गणम् ३.१८.१६
दृष्टिप्रत्ययदानतः ३.२.२४
देयः ३.५.२२, -म् ३.४.५, ३.४.१३, ३.४.१४, ३.६.३१, ३.७.१७, ३.७.२०, ३.७.२२, ३.८.७, ३.९.१०, -स्य ३.४.१७
देयमदेयम् ३.४.११
देयविधिः ३.१.५, ३.४.२, ३.४.१८
देयादेयविधिम् ३.४.१
देवगुरून् ४.१.४८
देवतायतनेन ३.६.१०
देवतास्थान ३.६.२३
देवत्तकम् ३.१९.२
देवयात्रा ३.५.११२
देवयात्रोत्सवे ३.१९.२७
देवरम् ३.५.५५
देववह्नियात्रापोगुरूणाम् ३.१.६४
देवम् २.१.३२, ३.१७.१, -वान् २.१.४६४, २.१.६६
देवस्थाने ३.१९.३४
देवस्नानोदकेन ४.१.४७
देशः ३.१.१३, -म् १.८८, २.२.८, -शात् ३.१४.९, ३.१६.११
देशकालविचारज्ञा ३.१.४२
देशकालानुसारेण ३.१.२४
देशनाम् १.७३
देशस्थानम् ३.१.१४
देशाचारः ३.५.१४५
देशाद्देशान्तरम् ३.२.१५
देहः २.१.२४, -स्य ३.५.३३, -हे ३.५.३३, -हेन ३.२.१४
देहसंलीना ३.१९.२४
दैवपैत्र्यान्नभोजी ३.१७.१३
दैवभूपापदम् ३.२.३१
दैवाः ३.९.७
दोषत्वेन ३.५.९२
दोषदुष्टान् ३.१२.१६
दोषभाक् ३.१६.३१, ३.१८.१९
दोषस्यापगमे ३.५.९३
दोषानुसारी १.४१
दोषे ३.८.५, -षो ३.९.६, ३.७.२४
दोहदः ३.९.१०
दोह्य ३.८.४
दौहित्रः ३.५.३२, ३.५.६८
द्युम्नजातस्याधिपतिः ३.५.३४
द्युसदेन्द्रादिसेवितम् ३.५.१
द्यूतक्रिया ३.१५.११
द्यूतक्रीडा ३.१५.९
द्यूतम् ३.१.७, ३.१५.२, ३.१५.७, ३.१५.१०, ३.१५.३, -ते ३.१५.९
द्यूतमभिधास्ये ३.१५.१
द्यूतव्यवहृतिः ३.१५.१२
द्यूतादिग्रसित ३.१६.२८
द्यूतादिव्यसनासक्तो ३.५.१७

द्रम्मः २.१.१३, २.१.२१, -म्मैः ३.१.५२
द्रव्यम् ३.१.५८, ३.२.२०, ३.२.२१, ३.३.९, ३.४.३, ३.४.९, ३.५.८, ३.५.४७, ३.५.५०, ३.५.११०, ३.५.१११, ३.५.१३२, ३.७.२३, ३.८.३, ३.१०.७, ३.१५.२, ३.१५.७, ३.१६.२२, -व्ये ३.५.९६, ३.५.१०२, ३.५.१०७, -स्य ३.५. १०२, ३.५.१११, -णाम् ३.५.३
द्रव्यजातानाम् ३.५.६
द्रव्यदण्डा २.२.३
द्रव्यलोभाद् ३.१७.१८
द्रव्यार्थम् ३.३.१२
द्रहे ३.११.३४
द्राक् ३.१०.२३
द्रुतम् ३.६.१५
द्रुमसङ्कीर्णे २.१.५३
द्वात्रिंशत्पञ्चाशत् ४.१.२१
द्वादश ४.१.२८
द्वारपालान् १.४५
द्वारमार्गविवादेषु ३.२.५८
द्विकृत्वः ३.१७.२२
द्विगुणः ३.९.३, -म् ३.१५.१०, -णा ३.८.७, -णान् ३.२.१३, -णो ३.१७.९
द्विजः ३.१४.२०, -जे २.२.९, -जो ३.१२.६, ३.१४.१८
द्विजक्षत्रियवैश्येभ्यः ३.१.६४
द्विजरूपेण २.१.२१
द्विजाक्रोशे ३.१२.८
द्वितीये ३.८.७
द्वित्रितुर्यगुणा ३.२.१८
द्वित्रिवेदेषुसंमित ३.२.८
द्विविधः ३.१०.२८
द्विविधतापन्नः ३.१०.५
द्विशतराजतैः ३.१७.३१
द्विशतम् २.१.१३, -ताद् ३.९.१०, -तैः ३.१७.२८
द्विषम् १.८५, -ता १.८५, -षाम् १.८२
द्विषदागमः १.७०
द्वेषाद् ३.१.४०
द्वैधभावना: १.५७
द्वैधम् २.१.७
द्वैविधम् ३.५.२
द्वौमिथः ३.६.१४
धनम् २.१.६९, २.१.२४, २.२.२५, ३.२.१७, ३.२.२०, ३.२.६१, ३.३.६, ३.३.१०, ३.५.१९, ३.५.२०, ३.५.३१, ३.५.७४, ३.५.७८, ३.५.७९, ३.५.८०, ३.५.८१, ३.५.९०, ३.५.९७, ३.५.१२६, ३.२.३२, ३.५.१३९, ३.५.१४०, ३.१०.१२, ३.१०.१९, ३.१०.२४, ३.१६.१८, ३.१८.१३, स्य ३.२.६१, ३.५.१०६
धनदण्डम् २.२.२५
धनमाभूषादिकम् ३.५.१३७
धनमेषतः ३.५.२३
धनवान्यदा ३.२.२५
धनव्ययः ४.१.२३
धनहरी ३.५.१०३
धनापहः २.२.३३
धनिनः ३.२.४६, ३.१०.३२, -म् ३.५.४६, -ना ३.२.३, ३.२.१८, -ने ३.२.१७, ३.२.२६, ३.२.३२, ३.१६.२२, -नो ३.२.१४, ३.२.३३

धनी ३.२.८, ३.२.३०, ३.२.४१, ३.११.६, ३.११.९, ३.१७.२३
धनीधनी ३.२.७
धनैः ३.१.५५
धाटी ३.१६.२७
धाटीनाम् ३.१६.२७
धातु ३.१८.३
धान्य २.१.६९, ३.१७.२९, -म् ३.२.४८, ३.१६.११, ३.१६.२१
धान्यजलम् २.१.६३
धान्यवृद्धिः ३.२.४७
धारणार्थम् ३.५.१४३
धिक्कारः २.२.९
धिषणान्वितैः ३.११.१३
धूर्तान् ३.१६.८
धृतम् ३.२.४२
धृतशस्त्रचमू २.१.४८
धैर्यच्छेदः १.५१
धर्मः ३.१०.९, ३.१३.४, ३.१६.३१, ३.१९.२२, -म् ३.१३.३, -र्मात् ३.४.१४, -र्मे १.९२, ३.४.६, ३.५.१४४, -र्मेण ३.१.४३
धर्मकर्मन् ३.१९.४७
धर्मकर्मरतो १.६३
धर्मकार्ये ३.५.११२, ३.५.१२२
धर्मगुणवुत्तीः ३.१९.३०
धर्मजिनम् ३.१२.१
धर्मज्ञाः ३.१.३९, -ज्ञे ३.१०.४
धर्मतः ३.१.५२, ३.५.१६
धर्मतत्पराः ३.१६.३२
धर्मतीर्थप्रवर्तकम् ३.१८.१
धर्मपत्न्याम् ३.५.६९
धर्मबुद्धितः ३.४.८
धर्मभ्रंशेन ३.५.११९
धर्ममार्गे ३.५.७४
धर्म्मरताः १.९०
धर्मराज्यविरुद्धम् ३.१९.४८
धर्मवत्सरावधि ३.३.६
धर्मवर्जितः ३.५.१८
धर्मशक्तिता ३.२.२४
धर्मशास्त्रम् ३.१९.२१, ३.१९.४६
धर्मादिषु ३.५.१०१
धर्मापन् ३.२.३
धर्मार्थकामान् १.३९
धर्मार्थम् ३.४.१४
धर्मिणः ३.१३.९
धर्मिष्ठम् २.१.१४
धर्म्यम् ३.६.८, -र्म्ये ३.५.३८
धर्म्यात्मम् ३.१६.३०
ध्रुवम् ३.६.२५, ३.८.६, ३.१८.९
ध्वस्तचिह्नेषु ३.६.१८
नगरात् २.२.२९, ३.१०.२५, -स्य ३.९.१२
नगराद्बहिः ३.१४.२
नग्नम् २.१.६१, -नो ३.१९.४०
नटादयः ३.३.३
नतमस्तका ३.५.१०५
नद्या ३.२.३२, ३.६.१८
नभोभागाद् ३.१०.१
नमस्कारः १.३८
नमस्कुर्यात् ४.१.४८
नमिजिनम् ३.१८.१
नयाद् १.९५
नयी १.८३
नरः ३.१.५९, ३.१०.१६, ३.१०.२७, ३.१९.४३, ३.१९.४५, ४.१.२,

-म् ३.१६.३०, ३.१९.४२, ३.१९.९, -राः ३.१०.३४, ३.१४.१२, -रान् ३.१६.२५, -रेण ३.१०.३, -रैः ३.५.४९, -नरो ३.१९.३८
नरकम् ३.१६.७, ३.१६.२९
नरासाध्ये २.१.१८
नरोत्तमम् ३.१८.५
नवविधम् ३.४.११
नवाङ्गना ३.१९.३
नवाद्याम्ला ४.१.२५
नवाष्टमाः ४.१.३१
नष्टम् ३.९.५, ३.१०.१६, ३.११.७, ३.११.१०, -ष्टे ३.२.३१, ३.५.५२, ३.१७.२२, ३.१७.२३
नष्टप्राप्तस्य २.२.३०
नाग्नितापितैः २.१.५९
नाङ्गच्छेदो २.२.१०
नाणकम् ३.१७.२५, -केन ३.१७.२४
नाथेन ३.१८.२५
नापेक्ष्यः १.९९
नामतः ३.४.४
नामयुतम् ३.२.६
नामसहिताम् ३.६.२१
नामस्मृतिमात्रेण ३.१२.१
नारी(म्) ३.५.११३, ३.१४.१२, ३.१७.१२, ३.१९.२५, ३.१९.३५, ३.१९.३७
नारीग्रहचिन्ता ३.१४.२६
नारीविप्रतपस्विनाम् २.२.१०
नार्ताश्नीयात् ३.१९.३२
नाशकेन ३.१८.१२
नाशार्थम् ४.१.३०
नाशे ३.१४.३, ३.१८.१४, ३.१८.१५
नाशौचादिक्रियापराम् ३.१९.३९
नासा २.१.२४
निःक्रोधाः ३.१.३९
निकुञ्जे २.१.५३
निक्षिपेत् २.१.५७
निक्षिप्तम् ३.१०.७
निक्षिप्य ४.१.४२
निक्षेपः ३.१.६, ३.४.१०, -म् ३.१०.६
निक्षेपविधिः ३.१०.५
निक्षेप्ता ३.१०.८, ३.१०.१६
निक्षेप्त्रा ३.१०.१५
निक्षेपरक्षकाद् ३.१०.१६
निक्षेपविधिसङ्ग्रहः ३.१०.४१
निक्षेपविवादे ३.१०.२६
निखिलान्तस्य २.१.६५
निगृह्णन् ३.१६.८
निग्रहम् ३.१६.६
निजकमर्न् ३.७.२६
निजपतेः ३.५.१०९
निजमन्दिरम् ३.५.६१
निजस्त्रियः ३.५.२६
निजाम्बायाः ३.५.२७
निजाम् ३.५.९५, ३.५.१०६, -जे ३.५.१००
निजेच्छया ३.५.१०६
नितराम् २.१.६९
निद्रा १.४७
निधनम् ३.३.६
निन्दाम् ३.२.५७
निन्द्यम् ३.१४.२४
निपानम् ३.६.२३
निपुणानि २.१.४५
निम्नोच्च १.८४

निम्बादिवृक्षः ३.६.१५
नियोगकृत् ३.१.२५
नियोगे ३.१०.२०
निरन्वयाः ३.१.४२
निराकृतम् ३.७.१६
निरीक्षिते ३.८.५
निर्णयः ३.६.३२
निर्णीयात् ३.१०.११
निर्मिते ३.८.१०
निवेदितम् ३.१०.१८
निःस्वामिकम् ३.११.१२
निरर्थकम् ३.१.१६
निराबाधम् ३.१.१६
निरालस्या ३.१.३९, ३.१३.९
निरुपद्रवम् ३.१५.६
निरुत्तरः ३.१.३६
निरुद्धम् ३.१.१६
निरूपितः ३.१९.५१
निर्गुणम् ३.१९.२
निर्णयः ३.६.३२, -ये ३.१.३१
निर्दिष्टानि ३.१९.२३
निर्भयः ३.१.४९
निर्मला ४.१.२६
निर्मोहो ३.१.४९
निर्लोभः ३.१.४९, -भाः ३.१०.३३
निवार्याः ३.१४.१३
निर्वास्यो ३.१०.२५
निवासदः ३.१६.२७
निवृत्तम् ३.१.२९, -त्तिः ३.१८.१०, -त्तौ ३.१.५१
निवेदितम् ३.१०.१८
निशि ३.१७.६, ३.१९.१६
निषादैः ३.१९.४१
निषेध्यो ३.६.२८
निषेवते ३.१४.१७, ३.१७.७
निष्कासयेद् ३.१४.१०, ३.१४.११, ३.१४.१४
निष्ठीवति ३.१८.५
निष्पन्ने ३.८.११
निष्प्रयोजनम् ३.१.१६
निस्तन्द्रेण ३.१९.४७
निस्पृहाः ३.१.३८, ३.१.४२
निह्नवे ३.१७.९, ३.१७.२०
निह्नुते ३.१०.१९, ३.१७.१९
नीचानाम् १.४९
नीतिः १.७०, २.१.५
नीतिकोविदैः १.७६, २.२.३
नीतिप्रवर्त्तनम् २.१.२
नीतिमार्गो १.४३, -र्गेण २.१.२७,
नीतियुद्धेन २.१.६०
नीतिराज्यस्य १.५६
नीतिविशारदैः ३.५.१४२
नीत्या १.४२
नीरक्षीरविवेचने १.४८
नृणाम् ३.६.१२
नृत्यकारिभिः ३.३.२
नृत्यावलोकनम् १.४७
नृपः १.३४, १.४०, १.१०१, २.१.९, २.१.११, २.१.२१, २.१.२६, २.१.४०, २.१.४५, ३.१.२४, ३.६.१३, ३.६.१५, ३.६.२१, ३.७.२३, ३.१०.२०, ३.१०.२२, ३.११.३, ३.११.१३, ३.१४.२२, ३.१६.४, ३.१६.४, ३.१६.४, ३.१६.५, ३.१६.१३, ३.१६.२३, ३.१६.२९, ३.१७.८, ३.१८.४,

३.१८.१५, ३.१८.२२, -स्य २.१.१६, -णाम् १.४४, -पेण ३.१.५९, ३.१.६०, ३.२.३८, ३.१२.५, ३.१६.२४, -पो ३.१.५७, ३.१.६५, ३.२.१६, ३.२.६२, ३.३.८, ३.१३.११, ३.९.११

नृपतेः ३.१६.२

नृपमन्त्रस्य २.१.१६

नृपयोग्यम् १.६६

नृपवस्तुसुरक्षकाः १.९१

नृपाग्रतः ३.१.५६

नृपाज्ञापत्रम् ३.१.२१

नृपान्तिके ३.२.३७

नृपामात्यौ १.७०

नृभिः ३.४.११, ३.१९.३०

नृसंविदे ३.१३.१

नेतिभयम् ३.१६.५

नेतुम् ३.१.२१

नेत्रभेदनकर्त्ता २.१.२१

नैगमादीनाम् ३.१३.२

नैमित्तिक २.१.३४

नैयोगिकः ३.१०.२८

नोच्छिष्टास्यः ३.१९.४०

नौभिर्द्विपरैनुपे २.१.५२

न्यग्रोधः ३.६.११

न्यसेत् ३.१६.२३

न्यस्तरक्षकम् ३.१०.१२

न्यायः १.४८, -म् ३.१.४, -यात् ३.२.३८, -ये १.९२, -येन १.४४

न्यायमार्गेण ३.१८.४

न्यायवर्ज्जिताः १.४३

न्यायवर्त्तिना ३.३.५

न्यायानुसारिभिः ३.५.१३

न्यायैकनिष्ठो १.६१

न्यायोक्तगुणसम्पन्ना ३.१०.३०

न्यूनद्रव्यम् ३.१७.२९

पंक्तियोग्यो ४.१.१६

पक्वान्नम् ३.१६.२०, ३.१९.३

पक्षः १.६८, ३.८.५, -म् १.८८, ३.१.२७

पक्षत्रयम् ३.२.२७

पक्षदिनान्वितम् ३.१.२६

पक्षपातयुतः ३.५.१८

पक्षाभासम् ३.१.१६

पक्षार्थम् ३.१.५५

पक्षैकदेशव्याप्यम् ३.१.३२

पङ्गुः ३.५.९१

पञ्च ३.१९.४३, -भिः ३.१७.२०, -माः ३.७.२, -मो ३.७.३

पञ्चगव्यम् ४.१.४६, -व्येन ४.१.४४

पञ्चगुणः ३.१८.१४

पञ्चत्वम् ३.५.११५

पञ्चदश ३.७.५

पञ्चधा ३.१.३६, ३.६.३, ३.७.२

पञ्चनमस्कृतिम् १.७१, ३.१९.४४

पञ्चपुत्रा ३.५.६८

पञ्चमाषैः २.१.१४

पञ्चविधः ३.१०.२८, ३.१०.३१

पञ्चविंशतिः ३.१२.९, ३.१२.१२, ४.१.१७

पञ्चशतेन २.१.२१, -तैः ३.६.२६

पञ्चसप्ता ३.१.३९

पञ्चसाक्षितः ३.५.५६

पञ्चार्हताम् ४.१.३२

पञ्चाशत् २.१.१३, ४.१.३, ४.१.१७, ४.१, -द्भिः ३.१८.४

पञ्चाहम् ४.१.४६
पञ्चैव ४.१.३२
पञ्चोपवासकैः ४.१.३३
पणद्विशतम् ३.६.२७
पणस्त्रिंशः ३.८.७
पणस्य ३.१७.३१, -नाम् ३.१२.९, ३.१२.१२, -पणे ३.७.६, ३.७.११, -णेन ३.८.२, -णैः ३.६.२६, ३.११.११, ३.१२.७, ३.१२.९, ३.१२.११, ३.१२.१६, ३.१२.१७
पणैर्दमः ३.१२.८
पताका २.२.२७
पतिः ३.७.१८, ३.१९.४, ३.१९.२४, -म् ३.१४.१५, -तौ ३.५.५२, -त्यौ ३.५.११४
पतितैः ३.१९.४१
पतिमृतौ ३.५.१४३
पतिवद् ३.५.१०९
पतिव्रता ३.१९.२४
पतिसेवा ३.१९.२३
पत्नी(म्) ३.४.१२, ३.५.७३, ३.५.९५
पत्र ३.१८.८, -त्रे ३.१०.३५
पत्रकाद् ३.१०.३५
पदे ३.५.१०९, ३.५.१२१, २.१.३५, ३.५.१२
परकीयस्य ३.११.२
परगोत्रत्वभावतः ३.५.११७
परजातिप्रवेशम् ४.१.३९
परत्र ३.१६.२६, ३.१६.२९
परदारात् ३.१७.७
परद्रव्यापहरणे ३.१७.९
परपात्रे १.३४
परबन्धनम् ४.१.३५
परमर्त्यमुखम् ३.१९.६
परमो ३.१९.२२
परमोधर्मः ३.१६.२
परयोषिति ३.१९.२१
परलोकभयान्विताः ३.१.३८
परवस्तुविनाशे ३.१८.१८
परशय्यायाम् १.३४
परसाहसैः ३.१७.२५
परस्परानुमत्या ३.१७.३२
परस्त्री ३.१४.१, -म् ३.१४.१६, -स्त्रियः ३.१४.२५
परहस्तेन ३.१९.२८
पराङ्गनासमासक्तम् ३.१४.२
पराजये २.१.३०,
पराजितात् ३.१५.७, -जिते ३.१५.७, -जितो २.१.२२
परान्नम् ३.१९.३२
परापेक्षा १.९२
परामर्शम् १.६९
पराय ३.२.२
परार्थसाधने १.१२
परावर्त्ती ३.१७.३०
परासने ३४
पराह्वानादि ३.१.२०
परिकीर्तिताः ३.१०.४०
परिक्रमणकाले ३.५.१४१
परिखा २.१.६४
परिच्छदसमावृतः १.७२
परिणामाश्रयो ३.१४.६
परिणाहो ३.९.१२
परिधातुम् ३.१७.१८
परिधानम् ३.१४.८
परिभाषणम् २.२.२, २.२.४

परिव्रज्यागृहीतैकेनाविभक्तेषु ३.५.८९
परिहासतः ३.४.७
परुषम् ३.१२.३, ३.१२.५, -परे ३.१४.१७, -रेण ३.२.६०, -रैः ३.१३.६
परोक्त्या ३.१६.२९
परोपकारनिरताः ३.१०.३४
परोयोद्धुम् २.१.२६
पर्यन्तमिषयुक् ३.२.१७
पर्यायगुणैः ३.१९.८
पर्वते ३.१९.३३
पलद्वयम् ३.८.९
पलानि ३.८.९
पशवः ३.९.७
पातकम् ४.१.३०, -कैः ३.१.४६
पात्रदत्तिः ४.१.२८
पात्रदानम् ४.१.२३, ४.१.२६
पात्रदानादि ४.१.३२
पात्रबुद्ध्या ३.४.८
पात्रे ४.१.१४
पादभाक्धनी ३.१७.२३
पादम् ३.१७.२२, -दौ २.१.२४
पादाब्जनखा ३.१०.१
पानमपेयस्य ४.१.३८
पापकर्मपराङ्मुखः १.६५
पापम् ३.१.४७
पारितोषिकदानेन २.१.६८
पारुष्यम् १.४७, -ष्ये ३.१.२८
पार्थिवः १.७४, २.१.३७, -नाम् २.१.४
पार्श्वग ३.६.२०
पार्श्वतो २.१.३८
पार्श्वस्थान् ३.६.६
पालनम् ३.५.४२, ३.१६.६
पाषाणैः ३.६.१०
पिचुमन्दै ३.६.११
पिछिला ३.६.३
पितरम् ३.२.६३, ३.५.२१, ३.५.२३, ३.१२.१७, -रि ३.५.४२, -ता ३.१.२५, ३.५.६, ३.५.८, ३.५.१०, ३.५.१६, ३.५.१८, ३.५.२१, -तुः ३.५.३६, ३.५.९६, ३.५.१३२, ३.१०.१५
पितामहः ३.१.१४, ३.५.६, -हे ३.५.७
पितामहमृतौ ३.५.७
पितामहार्जिते ३.५.९६
पितावशिष्टम् ३.५.३८
पितुरिच्छया ३.५.४४
पितुर्द्रव्यस्य ३.५.९८
पितृसंख्यया ३.५.९८
पुण्डरीकादीन् १.३
पुण्यम् ३.१.४८, ३.५.१२, -यात् ३.१६.५
पुत्रः ३.५.३१, ३.५.३५, ३.५.४०, ३.५.७३, ३.५.९९, ३.१६.२४, ३.१८.२५, ३.१९.१६, ३.१९.१६, -म् ३.५.१०५, ३.५.१०९, ३.५.१२०, ३.५.१२३, -त्राः ३.५.१२, ३.५.१५, ३.५.७०, -स्य ३.५.७, ३.५.२९, ३.५.५३, ३.५.९६, -णाम् ३.५.१४, -त्रान् ३.५.१६, ३.५.९५, -त्रेण ३.५.९७, ३.५.२२, ३.५.३१, ३.५.९७, ३.५.९९, -त्रेषु ३.२.२२, ३.५.३६, -त्रैः ३.५.२४, ३.५.४२, ३.५.२७, ३.५.४२, ३.५.८४, -त्रो ३.४.१२, ३.५.११, ३.५.६३
पुत्रकल्पा ३.५.७२

पुत्रनाम ३.१०.१५
पुत्रपत्न्यः ३.५.९३
पुत्रयुक्तो ३.५.४५
पुत्रयुग्मे ३.५.२८
पुत्ररत्नेज्या ३.११.३१
पुत्रवत्यो ३.५.९७
पुत्रवद् ३.७.९
पुत्रवान् ३.५.२२, -वन्तो ३.१०.३२
पुत्रस्त्रीवर्जितः ३.५.९०
पुत्रार्थम् ३.११.३५
पुत्रिणः ३.५.९९
पुत्रीकृत्य ३.५.८८
पुत्रोदाराः ३.४.१०
पुत्रोत्पादनहेतवः ३.११.२२
पुनर्दातुम् ३.२.३९
पुमर्थनाम् १.२७
पुरपट्टनम् १६
पुरात् ३.१८.२, -रे ३.१४.१०
पुरातनम् १.१५, ३.१७.११
पुरान्निर्वासनम् ३.१७.८
पुरुषक्षयः २.१.२०
पुरुषः ३.५.४७, -म् ३.११.७, -षाः १.९३, -णाम् ३.१०.३४, -षैः ३.१०.११
पुरुषान्तरम् १.६२
पुरुषार्थम् १.१९
पुरोहिताः ३.१६.२४
पूर्ववादिनः ३.१.५१
पुष्टम् २.१.११
पुष्टान्नम् ३.११.११
पुष्टिदम् ३.१.३४
पुष्पचौरो ३.१८.९
पुष्पदन्तम् ३.६.१
पुष्पसुगन्धवासिता ३.११.१५
पुष्पाक्षतानि ३.७.१५
पुष्पाद्याः ३.१८.८
पुंस्त्वघातकः ३.१७.१५
पुंसाम् ३.८.४
पूजा १.४४, ४.१.१४, ४.१.१०, -जाः ४.१.१०
पूजैका ४.१.२५
पूतजलैः ३.११.४३
पूर्णेऽवधौ ३.२.४०
पूर्णेषु ३.२.६०
पूर्वजा ३.२.५९
पूर्वमुत्पन्ना ३.५.२९
पूर्ववादिनः ३.१.५१
पूर्वापरत्वेन ३.१.३५
पूर्वार्ज्जिता २.१.१२
पृष्ठतो २.१.३७
पृतनामुखे २.१.५६
पेयम् ४.१.३६
पैतामहम् ३.५.९५, -हे ३.५.९८
पैतामहार्जिते ३.२.६३
पैत्र्यम् ३.५.२०, ३.५.२३
पोषणकार्ये १.५१
पोषणीयाः ३.५.९२, ३.११.३
पोषितः ३.७.५
पोष्याः ३.४.१२, ३.५.७८
पौत्राणाम् ३.५.९८, -त्रो ३.१.२५
पौनर्भवः ३.५.७१
पौष्टिकादयः ४.१.४
पौंश्चल्या ३.११.२५
प्रकीर्तितः ३.११.२२, -ताः ४.१.३०
प्रकृतिः १.५६
प्रकृतसाध्यः ३.१.३१

प्रकृताद्भिमति ३.१.३२
प्रकृष्टम् २.१.११
प्रच्छन्नः ३.५.७१
प्रच्युतो ३.४.१४
प्रजाः १.३९, १.४०, १.५८, १.५९, १.८२, १.९५, ३.३.११, ३.१६.२६, ३.१६.३२, ३.१६.३२, -नाम् २.२.१, -भ्यो ३.१६.७, -याः १.४२
प्रजागुरुः १.२६
प्रजादानार्चनादीनाम् ३.१६.५
प्रजादुःखम् ३.१६.१२
प्रजाधने १.९६
प्रजाभूमिपबोधहेतुः ४.१.५१
प्रजारागी १.२६
प्रजावात्सल्यशालिनः १.९०
प्रजास्थितिनिबन्धनम् ३.१८.१
प्रजास्थित्यै २.२.५
प्रजास्वास्थ्ये ३.१६.४
प्रजाहितार्थम् १.७
प्रजाहितैकनिष्ठत्वम् १.६८
प्रजोपरि ३.१६.९, ३.१६.९
प्रज्ञा ३.१९.३८
प्रणष्टा ३.१४.२५
प्रणामावधिकक्रोधः १.३०
प्रणिपत्य ३.१३.१
प्रतिकूलः ३.५.४८, ३.५.८५
प्रतिकूलभाक् ३.५.९४
प्रतिकूला ३.५.७५, ३.५.७६
प्रतिग्रह ३.४.१६, -ग्रहे ३.२.५९, -ग्रहो ३.४.१५
प्रतिज्ञया ३.२.९, -ज्ञायाम् ३.२.१३
प्रतिज्ञातम् ३.४.११
प्रतिज्ञातकार्ये ३.३.१२
प्रतिज्ञान्त ३.२.४७
प्रतिज्ञाभङ्गहीनत्वे ३.१.३५
प्रतिपन्थिनाम् २.१.१८
प्रतिबोधयेत् ३.२.१६
प्रतिभायुक्ताः ३.१३.१
प्रतिभिन्नानाम् १.८५
प्रतिभुवः ३.२.२६
प्रतिभूः ३.१.३०, ३.२.२४, ३.२.२५
प्रतिभूरधमर्णार्थम् ३.२.२७
प्रतिमासम् ३.२.४, ३.२.९, ३.२.२१
प्रतिरोधके ३.५.१४४
प्रतिलाभेच्छया ३.४.८
प्रतिवादिनः ३.१.५७
प्रतिवर्षम् ३.९.१०
पतिव्रता ३.४.१२
प्रतिश्रुतम् ३.४.१४
प्रतिषेद्धा ३.५.१२४
प्रतिष्ठाजनकम् ३.५.५
प्रतिष्ठादि ३.५.११२
प्रतिष्ठादिविधौ ३.३.१
प्रत्यक्षदर्शी ३.१०.२७
प्रत्यर्थक्रीतकम् ३.८.५
प्रत्यर्थिन् ३.१.३७, -नः ३.१.२२, ३.१.३१, ३.१.५१, -ने ३.१.३७, -नो ३.२.६
प्रत्यर्थिवचनम् ३.१०.३८
प्रत्यर्थी ३.१.३०, ३.१.३३
प्रत्यर्पयेद् ३.८.६, ३.८.८
प्रत्यर्पितुम् ३.८.६
प्रत्याहर्त्तुम् ३.२.२०
प्रत्युत ३.१.५४, -तो ३.२.५७, ३.५.११८
प्रत्युत्पन्नमतिः १.८१

प्रत्युपकारे ३.४.६
प्रत्यूहनाशने २.१.१
प्रत्यूहा १.३
प्रथमनिर्गमः ३.५.२८
प्रथमम् १.२३, ३.१७.५
प्रथमा ३.२.११
प्रथमार्हतः २.२.६
प्रथिता ३.१४.१३
प्रदाता ३.५.१२०
प्रधानम् २.१.३१
प्रधानता ३.२.५९
प्रधानत्वम् ३.५.१४५
प्रधानपुरुष २.१.४५
प्रपाभोज्यैः १.५२
प्रभुः १.५५, ३.२.५६, ३.२.६१, ३.११.१३, -म् ३.१९.२४, -भोः ३.१.४१, ३.२.२७, ३.२.२८
प्रभ्वसत्वे ३.२.५४
प्रमत्तः ३.१९.३७
प्रमाणम् ३.१.१३, ३.१.६६
प्रमाणमागमम् ३.६.१९
प्रमाणयुक् ३.१.१४, ३.१०.२६
प्रमादम् १.४०, -दात् ३.७.२३, -देन ३.६.२७, -दो १.९४
प्रयत्नतः ३.१९.२६
प्रयाणतः २.१.४१
प्रयासेन १.८५
प्रयोक्तव्या २.१.८
प्रयोगेण (न) ३.५.४, ३.१७.१६
प्रवक्तारम् २.२.३१
प्रवर्तयेत् २.१.६५
प्रवासनम् १.३७, २.२.१०, २.२.२९, ३.१८.२
प्रवास्याः ३.१.६१, -स्यो ३.१८.९
प्रवीणः १.२८, -णाः ३.८.१३
प्रवृत्तिकामः २.१.२१
प्रवृत्तो ३.१९.४६
प्रव्रजिते ३.५.५२, -तो ३.५.९०
प्रव्रज्याप्रच्युतः ३.७.६, -म् ३.७.१३
प्रश्नस्य १.२३
प्रश्नान्तरम् १.२३
प्रष्टव्या ३.६.२०
प्रसङ्गतः ४.१.२४
प्रसङ्गादागतः ३.१०.३८
प्रसत्तिः ३.१८.१२, -म् ३.१८.२२
प्रसन्नचित्तः ३.१९.३५
प्रसन्नतास्थितो ३.१९.३६
प्रसन्ननयनाननः १.८२
प्रसन्नाः १.९३
प्रसादतः ३.७.१४
प्रसादाद् ३.१०.१६
प्रसूनकम् ३.१६.२०
प्रस्तावयोगतः १.७६
प्रस्थयुग्मम् ३.२.४७
प्रस्थादि ३.१७.३१
प्रस्थाने ३.७.२४
प्रहितः ३.१०.२९
प्राकारः २.१.६४
प्राक्तनम् ३.६.६, ३.६.८
प्राग् ३.१०.३५
प्रागङ्गहीनम् २.२.११
प्रागर्थिनम् ३.१०.१९
प्राग्यानमीशम् ३.१८.२०
प्राची २.१.४९
प्राचीनमन्त्रिणो ३.६.७

प्राज्ञेन ३.१९.२१
प्राड्विवाकः ३.१.५३, ३.१०.२९
प्राणघातम् ३.१७.७
प्राणघाताभिलाषी ३.१८.६
प्राणनाशे ३.१२.३
प्राणसंशयसङ्कटात् ३.७.८.९
प्राणार्तिभञ्जने ४.१.३६
प्राणिपीडानिदानम् ३.१२.३
प्राणिप्रियम् ३.१२.१८
प्राणैः १.५९
प्रातर्गृहीता ३.९.८
प्रातिभाव्यतः ३.२.२३, -म् ३.२.२४
प्रातिलोम्यतः ३.७.१३
प्रातिवेश्मिकतापन्नान् ३.६.८
प्राप्तवित्तस्य ३.१.६
प्राप्ते ३.३.६, ३.५.५१
प्राप्याधिकारम् ३.५.४७
प्राभातिकम् १.७२
प्राभृतम् ३.५.६१
प्रामाण्यम् ३.१.५३
प्रायश्चित्तम् ३.१७.१४, ४.१.२, ४.१.१३, ४.१.४९
प्रायश्चित्ती ४.१.४०
प्रासादे २.१.३, -दैः १.५२
प्रियंवदाः १.९२
प्रिया ३.५.११३
प्रियालापैः २.१.१७
प्रीतिः ३.१०.७, -म् ३.१४.२३, -त्या ३.२.२१, ३.३.११, ३.५.५७, ३.५.६९, ३.५.१३९
प्रेक्ष्य ३.१९.२
प्रेरको ३.१७.९
प्रेषणीयः २.१.४३
प्रेष्ठः १.८२
प्रेष्य ३.१८.२५
प्रोक्तः ४.१.१७
प्लक्ष ३.६.१५
फलज्ञानतो ३.१७.३३
फलम् १.३६, ३.६.३१, ३.१८.११, ३.१९.८
बधिरः ३.५.९१
बधिरीकृत २.१.७२
बद्धधीः १.६४
बद्धम् ३.१७.२७, -द्धान् ३.१६.२५
बन्दिगृहम् ३.१६.१५, -हे ३.१६.१४, ३.१६.१७
बन्दिचारणशैलूषा ३.१४.१२
बन्दिभिः २.१.५६
बन्धुम् ३.१२.१७, -भिः ३.५.७९, ३.५.१३५, -षु ३.५.८९
बन्धुजम् ३.५.५५, -जो ३.५.७३
बन्धुभ्रातृसमक्षम् ३.५.१३८
बन्धुलोकादि ३.५.१२८
बन्ध्वादिसाक्षियुक् ३.५.५८
बलम् १.८८, २.१.७, २.१.११, २.१.१३, २.१.३१, -लाद् ३.१.२४, -लानि १.५६
बलवत्तरः ३.५.१४५, ३.७.२४
बलशक्तिम् २.१.२४
बलाध्यक्षैः २.१.४०
बलान्नृपः ३.७.१३
बलिष्ठम् २.१.१३, ३.५.१२, -स्य २.१.७, -ष्ठा ३.२.५९, -ष्ठान् २.१.५६, -ष्ठेन २.१.२९
बलिष्ठराजानाम् २.१.१४
बलिष्ठाश्रयणम् २.१.२९

बलोपचितम् २.१.१०
बष्टादीनाम् ३.१०.४१
बहवः ३.२.२६
बहिः ३.१४.१०, ३.१९.१०
बहिष्कृताः ३.१७.१४
बहुकुटुम्बिनः ३.१०.३२
बहुदोषी २.२.३२
बहुनाशकृत् २.१.२७
बहुलाभे ३.१९.४८
बहुलोक ३.६.२८
बहुवसु २.१.६६
बहुशाखो ३.१.९
बहुशास्त्रविशारदाः ३.१३.९
बहुश्रुतम् २.२.३१
बाणैः २.१.५३
बालकन्यायाः ३.१७.६
बालकैः ३.४.७
बालत्वे ३.१९.४
बालः ३.४.१२, -म् २.१.६२, २.२.३१, ३.१.२४,
बाला ३.१.२२
बालातुर ३.१६.९
बाहुबलेन १.८६
बीजः ३.८.४, ३.१९.२०, -म् ३.१९.८, -नाम् ३.१९.१७, -नि ३.१९.१८
बीभत्साकरम् ३.१४.२३
बुधैः १.५२, ३.१.२३, ३.१.३१, ३.१.५० ३.२.१२, ३.१७.३, ३.१९.५, ४.१.५०
बुद्धिमान् ३.१०.९
बुद्धिशक्तिम् २.१.२५
बुध्या १.८६
बृहच्छ्वस्रा ३.५.१३५
बृहज्जन्तु २.१.१२
बृहदर्हन्नीतिशास्त्रे ३.२.६४
बृहन्मित्रकथनेन ३.१.४०
ब्रह्महत्याकारकस्य २.२.२८
ब्रह्महत्यादिकर्त्ता ४.१.२०
ब्राह्मणम् २.२.३१, -स्य ३.५.३७, -णे ३.१२.१३, ३.१२.८, -णो ३.१४.११
ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्राः ३.१२.५
ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्रान् ३.२.८
ब्राह्मणक्षत्रियविशः ३.१.६१
ब्राह्मणाक्रोशे ३.१२.१०, ३.१२.११
ब्राह्मणीम् ३.१४.९, ३.१४.१०
ब्राह्मे ३.१९.४४
भक्तजन ३.१.१
भक्तिः ४.१.४, -क्त्या २.२.१
भक्तिनिष्ठः ३.५.५७
भक्तिसमन्वितः ३.५.५९
भक्ष्यम् ४.१.३६
भक्ष्यमूल्ये ३.२.४१
भक्ष्यवस्त्रधान्य ३.३.३
भक्षणे ४.१.३७
भगः २.२.२७
भगवन् १.१२
भगवान् १.१३, १.१७
भङ्गादानादि १.८४
भञ्जने ३.१८.१६
भटान् २.१.५१, २.१.५६, -टैः २.१.७०
भयङ्करः १.८२
भयप्राप्तौ २.१.३७
भयशङ्का २.१.३९
भयम् ३.१०.२४, -यात् ३.१.५५, ३.४.७, -ये २.१.३९

भयसत्वे २.१.३७
भरतः १८, -तेन २.२.७
भस्मनि ३.१९.३३
भर्ता ३.५.१४४, -रम् ३.१४.१५, -र्तुः ३.५.५, ६, ३.५.१०३, ३.१९.२२, -र्त्रा ३.५.१४३, ३.१९.३
भर्तृवत् ३.५.५३
भर्तुभक्तिपरायणा ३.१९.२४
भर्तुर्मचकसेविका ३.५.१०५
भर्त्रर्द्ध ३.१९.२४
भस्मनि ३.१९.३३
भागः ३.५.१४, ३.५.१४, -म् ३.३.७, ३.५.८९, ३.५.९३, ३.१९.५०
भागकरणे ३.५.१८
भागकल्पना ३.५.९८
भागक्षयो ३.८.१२
भागमाक् ३.५.४४, ३.७.९
भागभागिनः ३.५.१५, ३.५.११९
भागयोग्यः ३.५.११८
भागहरा ३.५.१३४
भागाः ३.५.९८, -गो ३.५.२५
भागानर्हम् ३.५.१४२
भागार्हत्वम् ३.५.९३
भागार्हाः ३.५.९२, -र्हो ३.५.३८
भागिनेयः ३.५.११७, -येभ्यः ३.५.१२२
भाग्यवान् ३.१९.३६
भाग्याधिक्यप्रकाशिका ३.१५.१२
भाण्डम् ३.७.२३
भामिनी ३.६.३
भारतान् १.१४
भारवाहकः ३.७.२३
भारस्य ३.७.४
भार्या ३.१६.२४, ३.१८.२५
भार्यातिक्रमकारी २.२.३३
भावः ३.२.२४
भावगमागमपरीक्षणे २.१.२२
भाववित् १.८१
भावशुद्ध्या ४.१.२३
भाविफलम् २.१.९
भाव्युपाधि ३.४.१६
भाषणम् ३.१४.१२, -णेन २.१.२४
भिदोद्युक्तः २.१.१२
भिन्द्यात् २.१.५०, २.१.६४
भिन्नकर्मभिः ३.५.१२८
भिन्नताकरणम् २.१.१७
भिषग्वर २.१.३४
भीतिवान् २.१.३८
भुक्तद्रव्यम् ३.७.११
भुक्तिः ३.२.५८, ३.६.४, -म् ४.१.८, -क्तो ३.२.३०
भुक्तिदानेन ३.७.६
भुक्तिदासो ३.७.११
भुङ्क्ते ३.२.३०, ३.२.४५, ३.१९.१०
भुवने ३.१६.६
भुवःपतिः २.१.६८
भुवि २.१.७१, ३.५.९६, ३.१४.१३
भूतडाकिनी ३.१.२३
भूतावेशादि ३.५.७७
भूधनः १.१०, २.१.१३
भूपः १.७, १.१३, १.४३, २.१.२०, ३.१.१०, ३.१.१३, ३.२.१७, ३.२.२०, ३.३.९, ३.३.१०, ३.१०.२९, ३.१३.३, ३.१४.१०, ३.१४.१५, ३.१४.२१, ३.१६.८, ३.१६.११, ३.१६.१२, ३.१६.२६,

३.१८.१३, -म् ३.११.११, ३.१५.८,
-पा: ३.३.११, -पेन ३.१.३९,
३.१.४०, ३.१०.२१, ३.१६.१८,
३.१८.२०, ३.१८.२२, -पो ३.१.२७,
-स्य २.१.७, -नाम् १.१६,
भूपति: १.७१, २.१.५३, ३.१.६३,
३.१२.६, ३.१८.१९
भूपप्रतीपता २.१.१७
भूपयानासनस्थायी २.१.२०
भूपाज्ञापूर्वकम् ३.५.४९, ३.५.९४
भूपाज्ञामृते ३.१७.२७
भूपाधिकारिणम् ३.२.३४
भूपाल: २.१.१०, २.१.६५,
-लेन २.१.१९, २.१.२३,
भूप्रदेशेषु ३.६.१८
भूभुग्भीरौप्यैः ३.६.२६
भूभुजम् ३.६.२९, जा-३.१४.४
भूभृता ३.५.१२६, ३.१८.२५
भूभर्ता २.१.३९
भूमि: ३.१९.१७
भूमिप: ३.१४.११
भूमिपालेन ३.१०.२५
भूमिप्रमाणवित्तेन ३.६.२५
भूमिभागम् ३.६.१९
भूमिभृत् ३.१४.१६
भूमिमर्यादा ३.६.२
भूमिराट् १.९
भूमिलोभेन ३.६.२६
भूम्याश्रयतया ३.१९.१७
भूय: २.१.३, ३.२.५७
भूरिषु ३.५.९९
भूवास्तु ३.५.६४
भूवैषमये ३.१८.१६
भूषणम् १.३३, -णानाम् ३.१६.१३,
-णानि ३.१७.६
भूषणवाससाम् ३.१४.७
भूषणादिकम् ३.५.१३८
भूषणांशुकपात्रादि ३.५.१३६
भूषणार्थम् ३.१७.७
भूषा: ३.२.४५
भूसीमा ३.६.३
भृतिद्विगुणदण्डच: ३.७.२४
भृतिसमेन ३.७.२१
भृति: ३.७.१९, -म् ३.७.२६
भृत्य: ३.७.४, ३.७.२१, -म् ३.७.२६,
-त्यो ३.७.२४, -त्याय ३.७.१७,
३.७.२०, ३.७.२२
भृत्यका: ३.७.२
भेत्तारम् २.१.१६
भेदने १.८५
भेद: २.१.१७, ३.५.३३, ३.९.१३,
-दा: ३.१.८, ३.१.९, -देन २.१.१९
भेषजादिषु ३.१७.२९
भेषजार्थम् ४.१.३५
भोक्तव्यो ३.२.३०, ३.२.४४
भोगम् ३.६.१९
भोग्यस्यावधिपूर्तौ ३.२.३१
भोजनम् ४.१.२, ४.१.११, ४.१.२७,
४.१.३८, ४.१.३८
भोजनकारक: ४.१.१३
भोजनवाससाम् ३.५.४०
भोजनावसरे ३.११.४९
भोजनांशुकम् ३.५.३८
भोजनांशुकदानार्हा ३.५.६५
भोज्यो ४.१.७
भौपानाम् ३.१७.२६
भ्रष्टे ३.५.५२
भ्रष्टैः ३.११.४१

भ्रातरः ३.५.१९, ३.५.९०, ३.५.१३४,
भ्राता ३.१.२५, ३.५.११८,
-भ्रातुः ३.५.१४०, -भ्रातृ ३.१७.१६,
भ्रातृन् ३.५.२१, -णाम् ३.२.२३,
३.५.१२९, ३.५.१३२
भ्रातृभ्यो ३.५.३५
भ्रातृगणम् ३.५.९५
भ्रातृजाया ३.५.१३०
भ्रातृजायापीडनकार्यकृत् ३.१७.१०
भ्रातृजैः ३.५.७९
भ्रातृपदे ३.५.१३०
भ्रातृवत् ३.५.१३०
भ्रातृव्यम् ३.५.५४
मकरव्यूहसाधनः २.१.३८
मणम् ३.२.४७
मण्डलम् १.८७, २.१.५४,
-ले २.२.३, २.२.४
मङ्गलाचारनिरतो २.१.७२
मङ्गलाचारपूर्वकम् ३.५.६०
मङ्गलातोद्यनादेन १.७१
मता ३.२.११, ३.२.१४
मत्तोन्मतः ३.४.७
मदहेतुविमुक्तः ३.१८.१५
मदाकुलः ३.५.४८
मदान्धा ३.५.७८
मदाविष्टैः ३.१९.४१
मद्देहे ३.१०.२३
मद्यपैः ३.२.५१
मध्य ३.७.१७, -ध्ये ३.२.४३,
३.२.४८, ३.५.३
मध्यमः ३.७.४, ३.१७.२६,
-म् २.१.१५, -मे ३.८.११
मध्यमसाहसम् ३.१७.६
मध्यमा ३.८.११
मध्या २.१.५
मध्वाम्लकटुतिक्तेष १.९७
मनीषिणा ३.१८.२६
मनुजः ३.५.५८, ३.१७.२६,
-जैः ३.१७.२
मनुष्यगोप्रहर्ता ३.१८.९
मनुष्यप्राणहर्ता २.१.१२
मनुष्याणाम् ३.१.९, ३.५.११
मनोरथाः ३.१२.१
मनोरमा ३.१९.७, -म् ३.१९.३५
मन्त्रम् २.१.३
मन्त्रभेदे २.१.४
मन्त्रि २.१.३४, -णाम् १.२४,
-णो १.४५, -भिः १.४०, २.१.३
मन्त्रियुक् १. ७४
मन्त्रियुता १.१०१
मन्त्री १.६६
मन्देन ३.४.८, -न्दैः ३.१९.४१
मन्या ३.१९.२४
मरणजन्यदोषे ४.१.१६
मरणे २.१.१६, २.१.१६
मर्त्यस्य ३.१०.२
मर्मवित् १.८४
मर्यादा ३.२.६१
मलिनत्वम् ३.१९.२६
मलीनत्वम् २.१.५८
मलोत्सर्गम् ३.१९.३३
मल्लम् ३.१६.१
मल्लिम् ३.१६.१
महत्क्षितौ ३.१०.२
महत्तराभियोगे ४.१.३६
महत्पापविभागी ३.१४.२

महद् ३.२.४
महापराधे २.२.१०
महाबलः १.७७
महार्घवस्तूनाम् ३.११.५
महाशया १.९२
महाशास्त्रात् २.१.७३
महाहिंसादिकम् ४.१.३९
महिला ३.१९.२२
महिषी ३.९.२
महिषीसमः ३.९.४
महीधनः २.१.४६, २.१.५७, ३.१०.१९, ३.१६.७
महीनाथो ३.१३.७
महीपः ३.१४.९
महीपालः ३.१.६७
महीभुजा ३.४.१७, २.१.८, २.२.५, ३.१६.९
माकन्द ३.६.११
मातङ्गयवनादीनाम् ४.१.२
माता ३.५.१०, -तरम् २.२.३१, ३.१२.१७
मातापितरौ ३.४.१२
मातामहादिभिः ३.५.१२७
मातुराज्ञाम् ३.५.८३
मातृ ३.१६.२४, ३.१७.१६, ४.१.३०
मातृपितृभ्याम् ३.५.६९
मातृपित्रादेः ३.५.५८
मातृभक्तियुतः ३.५.८२
मातृविद्वेषी ३.५.९२
मातृसमा ३.५.१०८
मातृस्वस्रा ३.५.१३६
मात्रा ३.५.१३५
माननीयम् ३.१३.१०
मानवम् ३.१७.१८, -नाम् ३.१६.१५, -मानवो ३.१.६८, ३.२.१९, ३.१३.३
मानसमये ३.१७.२८
मानुषे ३.३.७
मान्यः ३.१.४९, -म् ३.५.४६, ३.१३.६
मान्या ३.५.१३०
मायावी ३.१६.२७
मारणकर्त्ता ३.१६.२७
मार्गसमीपगम् ३.९.६
मार्गार्द्धम् ३.७.२६
मार्गे ३.१८.१५, ३.१८.२१, ३.१९.३३
माषकान् ३.१९.३२
माषद्वयेन २.१.१४
मासः ३.१.२६
मासकृत ३.२.१३
मासपक्षदिनेषु ३.२.१२
मासपक्षावधिम् ३.१.६५
मासवृद्धिः ३.२.१५
माससप्तके २.१.३३
मासस्त्रिदशपञ्चभूः ३.८.४
मासैकम् ३.१६.२३
मांसविक्रेता २.२.११
मांसापकर्षकः ३.१८.७
मितम् ३.२.२०,३.१२.१८
मित्रम् ३.१.५१, ३.२.३, -त्रात् ३.५.१३३, -त्रे २.१.३६, ३.१.३८
मिथिला ३.६.३
मिथो २.१.१७, २.१.२८
मिथ्या ३.१२.१३
मिथ्यात्विभिः १.२०
मिथ्यादृक् ४.१.२७
मिथ्याभियोगी ३.१.५५

मिषम् ३.२.४, ३.२.७, ३.२.९, ३.२.१४, -षेण ३.५.५०
मिषक्रमात् ३.२.२१
मिषतः ३.५.१०२
मिषमुक्ता ३.२.३७
मिषलोभतः ३.२.२
मिषवृद्धा ३.२.३५
मिषहानिः ३.२.४४
मिष्टवचनैः ३.१९.३
मिश्रम् ४.१.२५
मुक्तः ३.२.२७, -क्तान् ३.१६.२५
मुखदन्ततृणम् २.१.६२
मुखे २.१.३८,२.१.४९
मुखेक्षणम् ३.५.१३९
मुख्यताम् ३.३.३
मुख्यो ३.३.३, -मुख्यौ ३.५.६८
मुण्डनम् ४.१.४६
मुदा ३.१३.१, ३.१९.१
मुद्राङ्कनादिकम् ३.३.४
मुद्रासार्धशतैर्दमः ३.१२.१०
मुद्रिकाशतैः ३.१२.६
मुनिपुङ्गवैः ४.१.३५
मुनिमुष्टिभिः ३.६.२७
मुमूर्षुः ३.५.९१
मुष्कम् ३.१८.६
मुष्टिमात्रयवाशनम् ४.१.४४
मुहूर्त्तम् ३.१९.४९, -र्त्ते ३.१९.४४
मूकान्धास्पष्टभाषिणी ३.५.७७
मूकः ३.५.९२
मूर्खत्वे ३.१८.२०
मूर्धावशिष्टाम् ३.१०.४१
मूलम् ३.२.२५
मूलमवधौ ३.२.३५
मूल्यप्रमितम् ३.७.२३
मूल्यम् ३.८.३, ३.११.८, ३.१६.१३, -ल्याद् ३.१७.९
मृगपक्षिविनाशकः २.१.१३
मृतः ३.५.९०, ३.९.९, -ते ३.२.४९, ३.५.४२, -तो ३.५.४४, ३.५.५२, ३.५.११४, -तौ ३.५.८१, ३.५.९७, ३.५.१०१, ३.५.११६, ३.१०.१५
मृतवध्वाः ३.५.४८
मृताङ्गोत्सृष्टविक्रेता २.१.२०
मृत्यौ ३.२.५३
मृदः ३.१६.१९
मृदादिभिः २.१.५९
मृद्धातुकाष्ठपात्राणाम् ३.१८.१४
मृद्भाण्डानम् ३.१६.१९
मेलनम् ३.१७.११
मैत्र्यभावेन ३.१०.८
मैत्र्याल्लोभात् ३.१६.२९
मोच्या ३.९.७
मोदक ३.१६.२०
मोहात् ३.१८.३
मोहादिताडने ३.१६.१
मौक्तिकम् ३.१९.३६
मौल्यम् ३.२.३१, ३.२.४३, ३.२.४४, ३.२.६२, -ल्याम् ३.२.४५
म्लेच्छः १.७८, -नाम् ४.१.२
म्लेच्छकारानिवासाद् ४.१.३८
म्लेच्छदेशनिवासेन ४.१.३७
म्लेच्छभाषाविशारदः १.७८
म्लेच्छादि ४.१.३८
म्लेच्छीभूय ४.१.३७
मन्त्रणे २.१.४
मन्त्रभेदकान् २.१.४

मन्त्रिवरैः २.१.२६
मांसविक्रेता २.२.११
मांसापकर्षकः ३.१८.७
यज्ञाः १.४४
यज्ञोपवीतेन ३.१.४६
यथाकर्म ३.७.२०
यथाकार्यम् ३.७.२२
यथाकुलम् ३.१.५६
यथाकृत्यम् ३.७.१७
यथागमम् ३.१५.१
यथादोषम् २.२.५, ३.१.५२, ३.४.१७, ३.१७.२१
यथाद्रव्यम् ३.३.५
यथानीतिः ३.१.११, ३.१.२९, ३.१.४३
यथापराधम् २.२.८
यथाबीजम् ३.१९.१९
यथाभागम् ३.३.८
यथायथम् ३.१.४८
यथारुचिः ३.५.१०१, ३.५.१२२
यथार्थवादी ३.१.४९
यथावसरवाक्यविद् १.७९
यथाविधि २.१.८, ३.१.४५, ३.२.७, ४.१.४
यथाशक्तिः ३.१.५६, ३.५.६१
यथाश्रुतम् २.२.३५, ३.५.१४६, ३.७.२०, ३.७.२२
यथास्थानम् २.१.८, २.२.३५
यथाहितम् १.६७
यथेच्छया ३.५.१२४
यथैश्वर्यम् ३.३.५
यदृच्छागत ३.१०.३१, ३.१०.३७
यद्द्रव्यम् ३.४.४
यमादिप्रबन्धतः २.१.६८
यवनादिलिपौ १.७८
यवान्नम् १.३६
यशःसम्पूर्णभूचक्रो २.१.७१
यशस्करैः १.५३
यशस्वी १.२५
यशो २.१.३०, ३.१६.२६, ३.१६.२९, ३.१९.३८
यशोराशिः १.७७
यशोहेतोः ३.१९.२९
याचितम् ३.४.१०, ३.१०.१५, -ते ३.२.२१, -तेन ३.२.२, -तो ३.२.५
यात्रार्थम् ३.१०.४
यानयानेशस्वामिनः ३.१८.१७
यानम् २.१.६, -नैः ३.१.२४
यानादिभिः ३.१८.१५
यानान्तरेण ३.१८.२१
युगाक्षयन्त्रवक्राणाम् ३.१८.१६
युग्ममुद्राशतम् ३.१८.१९
युग्मशतेन ३.१८.७, -तैः ३.१७.१५
युग्मशतोन्मितैः ३.१२.१७
युग्मसहस्रकैः ३.१४.१८
युग्मिनाम् २.२.६
युग्मे ३.१८.२०
युग्यम् ३.१८.१८
युधि २.१.४५
युद्धदण्डव्यवहारैः २.१.५
युद्धनीतिः २.१.७३
युद्धसज्जः २.१.४४
युद्धम् २.१.१९, २.१.२१, २.१.३३, -द्धे २.१.२०, ३.७.६, ३.७.११, -द्धाय २.१.२८
योगध्यानता ४.१.१

योगविल्लक्ष्यम् १.१
योगिनम् १.१
योगीन्द्रम् ३.६.१
योग्यकर्मकृत् ३.१७. १३
योग्यतायोग्यते ३.१.२१
योद्धव्यम् २.१.२९, २.१.३०, २.१.६०
योद्धृभ्यो २.१.६९
योनिः ३.१९.१७
योषिद् १.३७
यौवने ३.१९.४
रक्तवासा ३.६.१४
रक्ताधिक्येन ३.१९.१६
रक्तांशुकम् ३.६.१७
रक्षकः ३.९.७, ३.१९.४, -भ्यः ३.३.१०
रक्षणीयम् ३.५.५०, ३.५.७९,
-या ३.९.११, ३.१६.३२, ३.१८.२६,
३.१९.५, ३.१९.२६, -यानि १.५४
रक्षा २.१.४०, ३.१९.२३
रङ्गे ३.११.२७
रजको ३.१७.१७, ३.१७.२१
रजतशते ३.२.३५
रजतादि ३.२.७
रजतानाम् ३.२.१२
रज्जुम् ३.१६.१०
रणभूमिका २.१.४४
रणे २.१.१६, २.१.७०
रत्न ३.८.४
रत्नमिवोद्धृतम् ३.७.२७
रत्नवृष्टिः ३.१०.१
रत्नांशुकः ३.५.१४१
रथम् ३.१८.१८, - थे १.३५
रथवाजिभिः २.१.५२
रदितः ३.१०.३१, -तो ३.१०.३५
रभसात् १.९९
रमणोपार्जितम् ३.५.११२
रमातनुम् ३.१४.२३
रमाभिः १.५३
रम्यविग्रहम् १.१
रसामितान् १.३
रसितागसाम् १.४९
रहःसंलपनम् ३.१४.७
रहःस्थितः २.१.३
रहसि ३.११.५, ३.१४.४
राजकर्माधिकारिणः ३.६.५
राजकीयाः ३.९.७, -ये ३.१५.४
राजकोषापहारकम् २.१.१६
राजगृहपुरम् १.८
राजचिह्नैः २.१.४७
राजतम् ३.२.३६
राजदण्डभयेन २.१.१८
राजद्वारे २.१.२२
राजनीतिः ३.१७.१
राजनीतिमार्गः १.११
राजमुद्राङ्कितम् ३.१.१५, ३.५.५९
राजतमुद्रिकाः ३.१७.१७
राजलता ३.६.३
राजलोकनरैः ३.१४.१३
राजा ३.११.१२, -नम् ३.२.५, ३.२.१६,
-ज्ञा १.३६, ३.१०.१८, ३.१४.६,
-म् ३.१३.४, -ज्ञे ३.१.१३, -ज्ञेः २.१.७०
राजाज्ञातो ३.३.४
राजाज्ञालेखकः २.१.१७
राजाज्ञासाक्षिसंयुतम् ३.५.४६
राजाध्वनि ३.१४.५
राजेन्द्रो २.१.३३, २.१.७१
राज्यकर्माधिकारिणः १.७५

राज्यकार्यम् ३.१.१०, -र्येषु ३.५.६४
राज्यकार्यसमाकुला: ३.१.२२
राज्यकृत्ये ३.१.११
राज्यगेहे ३.१०.२२
राज्यदण्डभाक् ३.५.११८
राज्यदण्डच: ३.१.५४
राज्यपदैषिण: १.५८
राज्यवृद्धिकृत् १.६६
राज्यसभास्थलम् ३.१०.३७
राज्यस्तम्भ: १.५७
राज्यस्थाने ३.१५.९
राज्यस्य ३.१०.२९, -ज्ये ३.१५.६,
२.१.३१
राज्याङ्गेषु १.६९
राज्याधिकारिणा ३.६.१२, -षु २.१.१७
राज्यांशम् ३.१५.५, ३.१५.६, ३.१५.१०
रावणादय: ३.१४.२५
राष्ट्र: १.५६, -ष्ट्रे ३.१४.२२
राष्ट्रहितम् १.४२, १.१०१
राशिभङ्गके ३.१८.१६
रिपुम् २.१.१३
रिपुराष्ट्ररक्षा १.४४
रीतिम् ३.५.८३
रुद्धकण्ठो ३.१.५०
रुन्ध्यात् ३.१४.२
रुप्यै: ३.१.५६
रूपसम्पत्तिभृत् १.२५
रोगार्तम् २.१.६२
रोधनेन ३.१६.८
रोमजाते ३.८.१२
रौप्यक्यान् ३.२.२८
रौप्यम् ३.२.३६, ३.१७.२०,
-प्यान् ३.२.८, ३.२.१३, ३.२.४२,
-प्यै: ३.१७.१४
रौप्ययुगम् ३.२.३५
रौप्यशतै: ३.१७.१६
लक्षकम् ४.१.३१
लक्षणम् ३.६.१९, -णानि १.७६,
-णै: १.२४
लक्ष्मणातनयम् ३.५.१
लक्ष्मी: २.१.१६
लक्ष्म्योर्ज्जितप्रभं २.१.१
लग्नात्पूर्वं ३.७.२५
लग्ने ३.७.२४
लघुमध्योत्तमादिभेदै: ३.१७.३
लघ्वर्हन्नीति: १.७
लङ्घनम् ४.१.४१
लञ्च १.८३
लञ्चाग्राहिनियोगिन: १.५९
लता ३.१८.८
ललाटे २.२.२७
लाभार्थम् ३.३.२
लिङ्गम् २.२.३०, ३.१४.९,
-नि ३.६.१५
लिङ्गभेद: ३.१४.१७
लिङ्गिन: १.३१, -ना १.३८,
-नी ३.१९.२९
लुण्ठकानाम् ३.१६.२८
लुब्धानाम् १.५०
लेखम् ३.१.३७, ३.२.३८,
३.२.४९, ३.२.५५
लेखनम् ३.१६.१७
लेखपत्रम् ३.२.६
लेखयित्वा ३.२.७
लेखरीत्या ३.२.८
लेखितम् ३.१०.१५
लेख्येन ३.५.१२८
लोकद्वयहितावह: ३.१९.५१

लोकविरुद्धम् ३.१९.४८
लोकव्यवहारे १.२२
लोकानाम् १.१७, ३.१६.३, -के १.४, ३.२.५७, ३.५.५, ३.१५.११, ३.१६.२६, -कैः ३.५.६३
लोकाधिकारिभिः ३.१.६६
लोमृदर्शनतः ३.१.३
लोप्त्रा ३.१६.१४
लोभतः १.४१, -तो ३.१६.२५, -म् ३.३.१२, -भात् ३.१.४०, ३.२.६२, ३.४.१७, -भी ३.१.५०, -भेन ३.१७.६, ३.१७.२५
लोभवर्जिताः ३.१३.९
लोभादिकारणात् ३.५.१३
लौकिकव्यवहारार्थम् ३.५.२७
वचः ३.१२.३, ३.१२.५, ३.१६.९, -सा ३.६.९
वचनपारुष्यम् १.४६
वज्रेण २.१.५१
वट्टान्निर्माता ३.१७.३१
वडवालोभतः ३.७.७
वणिग् ३.१७.३२, -जाम् ३.१३.११, -जो ३.३.२
वणिग्गौणा ३.३.३
वत्यासतः ३.४.७
वत्सतरा ३.९.१०
वधः १.३७, २.२.२६, -म् ३.१७.८, -धो २.२.१०
वधपर्यन्तो २.१.१८
वधूमधीः ३.१९.३८
वधूः ३.५.१११, ३.५.११४
वध्वानीतम् ३.५.१३८
वनवासिनः ३.६.७
वनवासितपस्विना ३.१२.४
वनिताम् ३.१२.१७
वने ३.१४.६
वमनम् ४.१.४१, -ने ४.१.४१
वयो ३.१.२६
वरवर्णिनी ३.५.५२
वरसाहसम् ३.१७.२७
वरस्य ३.५.१२६
वराटिका ३.२.११, ३.१०.१०
वर्जनीयम् १.६७
वर्णचतुष्टये २.२.९
वर्णत्रये ३.५.४१, -षु ३.१४.९
वर्णना ३.१७.३३
वर्णनीया ३.५.११३
वर्णविनाशः ३.१४.३
वर्णशः ३.२.७
वर्णसङ्करा ३.१४.३
वर्णानुसारतः ३.१२.५
वर्णाश्रम १.१५
वर्णिता ४.१.५०, -तो ३.२.६४
वर्तितव्यम् ३.७.१६
वर्त्तनम् १.६७
वर्धमानाः ४.१.२१
वर्द्धनम् १.४२, ४.१.५
वर्म २.१.३२
वर्षत्रयम् ३.१६.१६, ३.१६.२०
वर्षत्रयावधिः ३.१६.१४
वर्षषट्कावधिः ३.१६.१६
वर्षाजलप्रवाहैः ३.६.२४
वर्षाद् ३.१४.१६
वल्कले ३.८.१२
वशीकुर्वन् ३.१७.१६
वसु ३.५.३७, ३.१०.४

वसुन्धरा ३.९.११
वस्तु ३.५.११२, ३.८.६, ३.११.७, ३.११.९, -म् ३.१७.३२, -नः ३.१०.१४, २.२.३०, -नि ३.१०.२३, -नाम् ३.१७.५, -स्तौ ३.२.६३
वस्तुचोरम् ३.११.११
वस्तुजातम् ३.५.९५, ३.५.१३१
वस्तुमात्रम् ३.१९.१०
वस्त्रम् १.३३, ३.१७.१९, -णि ३.१६.१०, ३.१७.२१, -स्त्रे ३.१७.२२
वंशक्रमागतान् १.४५
वंशजान् २.१.६५
वंशम् २.१.६७
वह्निदो २.२.३३
वह्नौ ३.८.९
वह्न्यादिषु २.१.५७
वाक्पारुष्यम् ३.१.७, ३.१२.२, ३.१२.१८
वाक्यम् ३.१०.१८, ३.१२.११८, -स्य ३.१.५३, -क्यैः २.१.२३, ३.५.८६
वाग्भेदेषु १.९७
वाचा ३.५.१२६, ३.१२.४, ३.१६.२४, ३.१६.२७
वाच्यम् ३.१२.३
वाजिषु १.३५
वाटस्वम् ३.२.४६
वाणिज्य १.१६
वातपितोग्ना ३.१.२३
वातादिदूषिताङ्गा ३.५.७७
वात्सल्यत्रयम् ४.१.१८
वादिकौशिकभास्करम् ३.८.१
वादिः ३.१.१५, -नः ३.१.५६, ३.१.५७
वादिपत्रम् ३.१.२९
वादे ३.२.३७, -दो ३.२.३३
वाद्यभियोगः ३.१.१८
वाद्यम् १.४७
वाद्युक्तम् ३.१०.१२
वाप्यावटेन ३.६.१०
वारणे १.३५
वारुणादीनि २.१.५७
वाला ३.५.९
वालुकाः ३.६.१३
वासतः ३.६.१८
वाससाम् ३.१६.१३, -सांसि ३.२.४५
वासुपूज्यजिनम् ३.९.१
वाहकः ३.७.४
वाहनः २.१.३२, -नैः २.१.६०
विकल्पः ३.४.३
विक्रयः ३.१.६, ३.११.१, ३.११.२, ३.११.४, -म् ३.५.१०, ३.५.१२५, -यी २.२.११
विक्रीणाति ३.११.३
विक्रीतानुशयो ३.८.३
विक्रीतो ३.७.८
विक्रीय ३.८.३
विक्रेता ३.७.७, ३.८.८, -रम् ३.११.७
विक्रेतुम् ३.५.८
विक्रेयम् ३.५.५
विक्रोष्टा ३.१७.१२
विक्षिप्त ३.५.७७, -प्ते ३.५.५२
विख्यातः ३.१९.३६
विग्रहः १.५७, २.१.६, २.१.२७, -म् २.१.१०
विघात ४.१.५१

विघ्नकरो ३.७.२४
विचक्षणः ३.१९.५०, -णाः १.९७, -णौ: ३.४.५
विचारपूर्वकाभाषो १. ७९
विजने २.१.३, ३.१४.६
विजयो २.१.२०
विजातिभिः ३.१०.११
विजातीयाः ३.१०.३३
विजित ३.७.६
विज्ञप्तिः ३.१.१५, ३.१.१७, ३.१.२०
विज्ञाता १.६२
विज्ञापनम् १.१०१
विज्ञे ३.४.१३
विज्ञेया ३.१०.३९
वित्तम् १.९५, २.२.८, -त्ते ३.२.४०
विदिताचारान् ३.१.४४
विद्याः १७
विद्वज्जनैः ३.१.२
विद्याभ्यासैकतत्परः ३.५.८२
विद्याबलेन ३.५.१३३
विद्धमन्नम् ३.१९.३२
विधवा ३.५.४८, ३.५.५६, ३.५.१०९, ३.५.११०, ३.५.१२४, ३.५.१३०
विधायकम् १.७
विधायाशु ३.१३.७
विधिः ३.१४.६, ४.१.२०, -ना ३.१९.२२
विधेयो ३.१९.४७
विनया ३.५.१०५
विनयान्विता ३.५.११३
विनयी १.८३, ३.५.५७
विनाशके २.१.१२
विनिक्षिपेत् ३.१०.६
विनिर्मिते ३.१८.३
विनिर्मुक्ताः १.९२
विनिश्चित्य ३.६.१७
विनिश्चयम् ३.६.१८
विपक्षाणाम् १.४९
विपक्षपक्षदलन २.१.११
विपक्षव्यूहः २.१.२२
विपरीतान् २.१.५८
विप्रम् २.१.६१, ३.१.४६, -प्रो ३.१८.७, २.१.१५, -स्य ३.१२.९
विप्राग्निसाक्षिकम् ३.५.१३७
विपत्तौ ३.५.१४४
विपर्ययो ३.६.१२
विप्रलुञ्चकः ३.१६.२७
विबुध्यध्वम् ३.१४.२४
विभक्ता ३.२.५३, ३.५.१५, ३.५.२६, ३.५.१२४, -क्तान् ३.५.२१, -क्ते ३.२.२३, -क्तेष ३.५.३६, -भ्यो ३.५.३५
विभागकाले ३.५.८९
विभागः ३.५.३६, -गे ३.५.१२८, ३.५.१२९, -गेन ३.५.२६
विभागोत्तरजातः ३.५.३५
विमिश्रेण ४.१.६
विमुक्तः ४.१.२६
विरुद्धम् ३.३.४
विरुद्धवाक् ३.१.५०
विरेकम् ४.१.४१, -रेके ४.१.४१
विवादः ३.१.६, -दे ३.३.५, -दो ३.६.४, ३.१०.९, ३.१४.१
विवादास्पदस्थाने ३.६.५
विवाददर्शनार्थम् ३.१०.३७
विवादभूः ३.१३.२

विवासयेत् ३.१४.१६, ३.१६.१०
विवाहकरणादिभिः ४.१.३९
विवाहकाल ३.५.१३५
विवाहादौ ३.१७.१८
विवाहिता ३.५.२५, ३.५.३४, -तो ३.५.९४
विवाहे ३.५.१३३, ३.५.१३७
विशात्मजा ३.५.३९
विंशतिः ३.१२.७, -विंशतिभिः ३.१७.३०
विशि ३.१२.१३
विशुद्धिः ४.१.५०
विशेषः ४.१.५०
विशेषकृत्ये ३.१.२७
विशोधनाद् ४.१.४०
विशोधनाम् ४.१.४०
विशोधनारूपम् ४.१.४९
विश्वासः २.१.३६, -म् १.५०
विश्रुतः २.१.७१
विश्रम्भाय ३.२.२८
विश्रामदायकः ३.५.११
विषाक्तैः २.१.५९
विषदः २.२.३३
विषमभागिनः ३.५.१६
विष्टाघटम् ३.१४.२४
विषशस्त्रभयाद्यैः ३.१७.७
विषमायाम ३.१९.१६
विस्तरेण ३.४.१८
विसंवादः ३.१०.६
विसर्जयेत् ३.१३.७
वीतिः ३.३.१२
वीरभगवान १.८
वीररसावेश १. ८२
वीररसेन २.१.५६
वीरान् २.१.४६
वीर्याधिक्येन ३.१९.१६
वृक्षभेदकः ३.१८.९
वृत्तम् ३.६.८
वृत्तान्तम् १.९, -न्तो ३.७.१
वृत्तिः ३.३.२, ३.१४.१३
वृथा ३.२.५५, ३.१८.१२
वृथोत्साहो १.९९
वृद्धत्वे ३.१९.४
वृद्धम् ३.१६.३०, -द्धाः ३.१०.३३, -द्धान् ३.६.७
वृद्धानुगः १.२६
वृद्धार्हन्नीतौ ३.१७.३
वृद्धिः ३.२.९, ३.२.११, ३.२.१३, ३.२.१४, ३.२.१८, ३.२.४६, ३.८.११, ३.८.१२, ३.२.४८, ३.८.१०, ३.१९.१७, -म् ३.२.११, ३.२.१२, ३.२.१९, ३.२.४१, -द्धेः ३.२.४८, -द्धौ ३.२.४ ३.४.१२, ३.१७.२८, ३.१७.३१
वृद्धिकामेन ३.१९.२१
वृद्धितया ३.२.९
वृद्धिमृणम् ३.२.४७
वृद्धिहानिता ३.२.३०
वृन्दे ३.१७.१९, ३.१७.२१
वृषः ३.१६.३, -म् ४.१.४३, -षे ३.१८.१६
वृषरोधादौ ३.१८.२१
वृषादीनाम् ३.१७.१५
वेणुभिः ३.६.११
वेतनम् ३.४.६, ३.७.१७, ३.७.२०, ३.७.२२, ३.४.६, ३.७.१७
वेतनादानम् ३.७.१

वेतनादानस्वरूपम् ३.७.२७
वेतने ३.७.१८, ३.७.२१
वेदाऽग्नि ३ ३.१.५७
वेदाग्निद्विपणैः ३.१२.१३
वेधने २.१.५५
वेध्यवेधनकोविदः २.१.५३
वेषान्तरधरैः २.१.३५
वेश्मभिः ३.६.२३
वेश्याम् १.४६
वैचित्र्यम् ३.५.१४५
वैफल्यम् ३.४.१५
वैरम् २.१.६
वैरिषु १.६९
वैशाखप्रत्यालीढानि २.१.५४
वैशाखस्थानके २.१.५५
वैश्यः २.२.१, -म् ३.१८.४, -याम् ३.१४.१९, -येन ३.१२.१०, -यो ३.१४.१९, -स्य ३.१२.११
वैश्याक्रोशे ३.१२.७, ३.१२.९, ३.१२.११, ३.१२.१२
वैश्याज्जातः ३.५.४०
व्यग्रचित्तो ३.५.१७
व्यतिक्रमः ३.१४.५
व्यतिक्रान्तिः ३.१३.२
व्यतीते ३.२.५, ३.२.४८
व्यपासकः १.२९
व्यभिचाररतः ३.५.१७
व्यभिचारिणी ३.५.७६
व्ययः ३.१०.२०, -म् ३.५.१०१, ३.५.१०३, ३.५.१०६, ३.५.१२४, ३.५.१२७, -ये ३.५.१२६
व्यसनसेवी ३.१.५०
व्ययीकर्तुम् ३.५.१००, ३.५.११३
व्यवसायः ३.१९.४७
व्यवहार ३.५.१२९, -रे ३.४.५, ३.९.१३, -रेषु ३.१.२५, -रो ३.१.३
व्यवहारविनिर्णये ३.११.४
व्यवहारपदे ३.४.४
व्यवहारविधिक्रमः ३.१.६८
व्यवहारविधौ ३.४.२
व्यवहारविलोपी ३.१.४
व्यवहारिणः ३.१०.२९
व्यवहृतिम् ३.१०.३, ३.१९.४९, -तौ ३.४.९
व्यसनतत्परः ३.५.८५
व्यसनानाम् १.२९, -नानि १.४८
व्यसनापेतः ३.५.८३
व्याक्रोशम् ३.१२.६
व्याघुट्य ३.५.६१
व्याधौ ३.५.१४४
व्यापारकर्मणि ३.८.१३
व्यावहारिकमार्गे ३.१.८
व्यूहनिर्मितिः २.१.५०
व्यूहसंस्थितैः ३.१३.१०
शकुनम् २.१.४६
शक्तः ३.२.६१, ३.५.१४२, ३.८.५, ३.११.१३, -क्ता ३.५.५३, ३.५.१०१, ३.५.१०४, ३.५.१०९, ३.५.११३, ३.५.१२१, -क्तो ३.५.८, ३.५.८३, ३.२.१९
शक्तित्रिकम् १.५४
शक्तिबलहीनः २.१.१२
शक्तिमान् ३.१६.१२
शक्तिसङ्क्रमः १.८८
शक्तिहीनम् २.१.६४
शक्त्यनुसारेण ३.२.२६

शक्त्यपेक्षया ३.२.९
शङ्का २.१.१५
शतम् ३.९.१२, ३.१२.१२
शतदण्डयाः ३.६.२२
शतद्वयम् ३.९.१२
शतपञ्चकदण्डयः २.१.१८
शतमष्टोत्तरम् ३.१.९
शतमुद्राम् ३.१८.२०
शतराजतैः ३.१४.२०, ३.१७.११
शतरूप्यकैः ३.२.३४
शतरौप्यकैः ३.१.५९
शताद्गवाम् ३.९.१०
शते ३.८.१०, -तैः ३.१२.१४, ३.१७.४, ३.१७.९
शतैर्दमनम् ३.१४.१७
शत्रुमित्रसमेक्षणाः ३.१०.३४
शत्रुः १.८८, -त्रून् १.५९, -त्रौ २.१.६०, ३.१.३८
शत्रुवंश्यान् १.५३
शत्रुसन्मुखम् २.१.६
शपथम् ३.१.६३, ३.१.६४, ३.१.६५, ३.६.८, -थैः ३.१०.१७
शमी ३.६.११
शरणागतम् २.१.६२
शरीरम् ३.१४.२४
शरीरसंस्कृतिम् ३.१९.१२
शर्कराः ३.६.१३, ३.१७.१९, ३.१७.२१
शस्त्रपाणिः २.२.३३
शस्त्रम् ३.१६.३०, १.२८, -णि २.१.४६, -स्त्रेषु २.१.५७, -स्त्रैः २.१.५२, २.१.६०
शस्याः ३.१०.३२
शंसनम् २.२.४
शाखिभिः ३.६.११
शान्तः ३.५.८२, -न्तम् ३.१३.१
शान्ताशिवम् ३.१३.१
शान्तिं ३.१३.१
शान्तिकर्मपुरस्सरम् २.१.३२
शान्तिका ४.१.४
शान्तिकाद्याः ४.१.१०
शारदसोम ३.१.१
शाल ३.६.११
शालिगोधूममुद्गाः ३.१९.१९
शाल्मली ३.६.११
शासनम् ३.४.११, -नैः ३.१७.२४
शास्त्रयोः १.२८
शास्त्रविचक्षणः १.६१
शास्त्रविशारदाः १.९०
शास्त्रसागरात् ३.१३.१२
शास्त्रौषधिगवाश्वानाम् ३.१६.१८
शाश्वती ३.१९.१७
शिक्षा १.६०, १.९६, -क्षाः १.२४
शिक्ता ३.५.११०
शिरः ३.१८.६, -रो ३.१९.४२, -सि ३.१७.८
शिरोमुण्डनम् २.२.२८
शिल्पः १.१६
शिवम् ३.१३.१
शिष्टजनैः ३.१५.११
शिष्टानाम् ३.१६.६
शिष्यः ३.७.२, ३.१६.२४, ३.१७.१६
शुचयो १.९१, ३.१३.९
शुचिः १.७७, ३.१९.४५, ४.१.२३
शुचिगुणः ३.१.१
शुद्धः ३.१.६२
शुद्धचित्ताभिप्रायेण ३.७.१६
शुद्धमार्गात् ३.१२.२

शुद्धराजकुलोद्भवः १.२६
शुद्धवंशोद्भवा ३.१०.३३
शुद्धवंशजा ३.१०.४१
शुद्धा ३.५.९३
शुद्धिः ४.१.८, ४.१.२५, ४.१.३७
शुद्धो ४.१.६, ४.१.१२, ४.१.२०, ४.१.२९, ४.१.४८
शुद्ध्यर्थम् ४.१.१७, ४.१.२०
शुद्ध्यै ४.१.२७, ४.१.३३, ४.१.३४, ४.१.३५
शुभम् २.१.९
शुभशीला ३.५.१०४
शुल्कलोभेन ३.२.८
शूकरव्यूहः २.१.३८
शूद्रः ३.१४.१९
शूद्रकम् ३.१८.४
शूद्रप्रव्रजितान्नभुक् ३.१७.१३
शूद्रमात्रेषु २.२.९
शूद्रसंसक्तम् ४.१.२७
शूद्रस्य २.१.२१, ३.५.४३
शूद्राक्रोशे ३.१२.७, ३.१२.९, ३.१२.१०, ३.१२.१२
शूद्राजातो ३.५.३८, ३.५.४०
शूद्रादीनाम् ४.१.२४
शूद्रानुचारी ३.१४.२०
शूद्रासेवकवैश्यो ३.१४.२०
शूद्रासेवी ३.१४.१९
शूद्रोत्पन्नो ३.५.३९
शूराः १.९०, -न् २.१.५६
शोकेन ३.४.७
शौर्याभिमानिनः २.१.५६
शौर्येण ३.५.१३३
श्मशाने ३.१९.३३
श्वपदाङ्कः २.२.२८
श्वभ्रम् ३.१.४, ३.१५.११
श्वशुरस्थापिते ३.५.१०७
श्वशुरेण ३.५.१३९
श्वशूकरविनाशकृत २.१.१४
श्वश्रूनिर्देशकारिणी ३.५.१०४
श्वश्रूः ३.५.१०८, ३.५.१०९, ३.५.१११, ३.५.११७, -म् ३.५.१०५, ३.५.१०६, -श्वश्र्वा ३.५.१३९
श्वश्रूमनोनुगम् ३.५.१०८
श्वश्रूश्वशुरहस्तगम् ३.५.११०
श्वश्रूसत्त्वे ३.५.१०७, ३.५.११३
श्राद्धभोजनम् १.३२
श्रीणाम् १.४९
श्रीपार्श्वे ४.१.१
श्रीमद् ३.११.१, -द्भिः ३.१०.१०
श्रीयुक्तम् ३.१५.१
श्रीयुतम् ३.१६.१
श्रीविमलस्य ३.१०.१
श्रीशीतलम् ३.७.१
श्रीश्रेयांसम् ३.८.१
श्रीष ३.१९.३१
श्रीसुमतिः ३.२.१
श्रीसुव्रतम् ३.१७.१
श्रुतपाथोधिः ३.७.२७, ३.१६.३३
श्रुतम् १.५, ३.१०.२२, -ताद् ३.१६.१
श्रुतसम्भवम् २.२.१
श्रुतसागरात् ३.९.१३
श्रुताध्ययनसम्पन्नाः ३.१.३८
श्रुताध्ययनसंयुताः ३.१०.३३
श्रुतिमात्रतः ३.१०.२७
श्रेणिक १.९

षट् ३.८.९
षड्गुणाः १.५७, २.१.८
षड्गुण्यम् १.८८
षड्दर्शनेषु १.६४
षड्विधम् ३.४.६, -धो ३.१०.२८
षण्डः ३.९.७, -षण्डो ३.५.९१
षण्डकैः ३.१९.४१
षष्ठांशम् ३.१६.५
षोडशांशम् ३.१०.१९
षोढा ३.६.४
संविधाय २.१.३२
संवृद्धिः १.१००
संवेगभावम् ३.१.१०
संसारार्णवतारकम् १.२
संस्कारविधिः १.१५
संस्थितिम् १.१६
सकलम् ३.२.४३, ३.३.१०, ४.१.१२, -लाम् ३.७.२६, लो ३.१९.४७
सकृद्धौते ३.१७.२२
सङ्गतः ३.१९.३०
सङ्गमः १.३३
सङ्गरे २.१.५८
सङ्घपूजा ४.१.२२, ४.१.३२
सङ्घभक्तिः ४.१.४, ४.१.२६
सङ्घसेवा ४.१.२८
सङ्घार्चनम् ४.१.४८
सङ्घे ४.१.१०
सचिवादीन् २.१.६५
सच्चिदानन्दम् ३.६.१
सच्छास्त्रम् १.७
सज्जनैः ३.५.११९, ३.१७.१२
सत्कार्य ३.५.६२
सत्कृत्य ३.१३.७
सत्पुत्रः ३.१९.४
सत्त्वयुते ३.१९.३४
सत्त्वेऽसत्त्वे ३.५.५३
सत्प्रतिभान्वितः ३.१९.५०
सत्पात्रे ४.१.१९
सत्यताम् ३.१०.११
सत्यधर्मपरायणान् ३.६.८
सत्यनिवेदनम् १.९९
सत्यम् १.९५, २.२.३०, ३.१०.१२
सत्यमन्तः ३.१.६६
सत्यवक्ता ३.५.८२
सत्यवाक् ३.१.६२
सत्यसङ्घः १.२७
सत्यसमाश्रितः १.६१
सत्या ३.१.५७
सत्यासत्यपराक्रमः १.६२
सत्ये ३.१०.४
सत्सङ्गतो ३.१.३
सदने ४.१.२
सदसि ३.१.१०
सदाचाररतात्मनि ३.१०.४
सदातप्तस्तेजस्वी १.७७
सदोचिता ३.१५.९
सदोषवाचा ३.१२.१६
सद्गुरून् १.५
सद्दानम् ३.५.६१
सद्धर्मिवत्सलाः ४.१.३
सधवागीततूर्यादि ३.५.६०
सनाथम् २.१.१
सनियमम् ३.२.२
सन्ततम् ३.१४.२४
सन्ततिः ३.५.८८, ३.१०.२, ३.१४.३

सन्तोष्य २.१.६८, -ष्य: २.१.२७, -ष्या ३.१९.३
सन्दिग्धो २.१.२०
सन्देहतत्त्वयोगत: ३.१.३
सन्धाने १.८५
सन्धि: १.५७, २.१.६
सन्नद्धबद्धकवच: २.१.४७
सन्न्यायरीतित: ३.१६.८
सपत्नीक: ३.५.४५
सपरिच्छद: १.९
सपर्या ३.१९.२२
सपिण्ड: ३.५.७३, -डै: ३.५.७९
सप्तक्षेत्रे ४.१.२३
सप्तदिनम् ३.८.५
सप्तधा २.२.२
सप्तभेदयुक् ३.४.१३
सप्तमम् ३.४.१
सप्तमभागेन ३.७.२५
सप्तवर्षसंस्थम् ३.५.५५
सप्तव्यसनसंसक्ता: ३.५.११९
सप्ताङ्गा १.५६
सप्ताहम् ४.१.४२, ४.१.४५
सप्रकाशो ३.४.१५
सप्रतिज्ञम् ३.२.४२, ३.२.७
सप्रतिबन्ध: ३.५.२
सबन्धन ३.१६.२१
सबन्धिनि ३.३.७
सबन्धी ३.१६.२१
सभागतान् १.७५
सभामध्ये १.७४
सभास्थाने ३.१५.९
सभेट् ३.१५.७
सभेदो ३.४.१८
सभ्यसम्मतिम् ३.१.१०, ३.१.६७
सभ्यै: ३.२.१६
समक्षम् ३.६.२०
समग्रार्थम् ३.१.१२
समतिक्रान्तम् ३.७.२६
समत्वेन ३.२.५३
समद: ३.१.११
समदण्डभाक् २.२.३०
समधर्मिणाम् ४.१.२२
समन्तत: २.१.४०
समन्वित: १.७४
समपादम् २.१.५४
समभागिन: ३.५.४३
सममात्रया १.२७
समय ३.१३.२
समयव्यतिक्रान्ति: ३.१.७, ३.१३.१, ३.१३.१२
समयोचितम् २.१.६०
समर्था ३.५.७८, ३.५.१०६, -र्थो ३.५.८३
समर्पणीयम् ३.१३.८
समवाय: ३.३.३
समवासार्षीत् १.८
समस्ता: ३.६.२१, -नि ३.१०.२३
समायाम् ३.१९.१६
समायातो २.१.४३
समारोप्य २.२.२९
समाशय: १.६३, -या: १.९१
समांशत: ३.५.१५
समांशभाक् ३.५.६७
समांशिन: ३.५.२७
समासत: २.१.७३, ३.१३.१२, ३.१४.२६, ३.१५.१२, -तो ४.१.५०

समासाद्य ३.११.१०
समासेन २.१.६७, ३.१९.५१
समाहितः २.१.३, २.१.१३, -तो २.१.३५, ४.१.४८
समाह्वयसंज्ञिका ३.१५.३
समिषम् ३.१.५७, ३.२.७, ३.२.५४, -षा ३.१०.५
समीहते २.१.२६, ३.८.६
समुत्कः १.९
समुत्थानक्रमम् ३.३.१
समुत्पन्नः ३.५.६९, -न्ने ३.५.२८, ३.६.५
समुदायस्य ३.१३.४
समुदाहृता ३.१७.३
समुद्राधानविक्रयम् ३.१७.३०
समुद्भूतो १.५
समूहे ३.१३.६
समृद्धो ३.२.५६
सम्पदि १.५१
सम्पूज्य २.१.६६
सम्बोधिता ३.५.८६
सम्भवम् २.२.१, -त् ३.५.१४५, ३.६.१२, ४.१.२७
सम्भूय ३.३.१, ३.५.१२
सम्भूयोत्थानम् ३.३.१२
सम्मतिम् ३.५.१००
सम्मुखम् ३.१८.१६, ३.१९.३४
सम्यक् (ग्) १.१०१, २.१.२५, २.१.५८, ३.१.६७, ३.४.१, ३.४.३, ३.५.५९, ३.१८.१
सरसा ३.६.१०
सरिति ३.१९.३४
सरोध २.२.४
सर्वकर्मकरो ३.७.३
सर्वकर्मविनाशकम् ३.१२.१
सर्वकर्माधिकारिषु १.९६
सर्वजीवसुखप्रदः ३.१०.५
सर्वजीवोपकाराय ३.१९.५१
सर्वदेहिनाम् ४.१.५०
सर्वधनस्य ३.५.११५
सर्वबान्धवाः ३.२.५३
सर्वभाषासु १.९८
सर्वमान्याः ३.१३.१०
सर्वलोकप्रपञ्चकः ३.१०.२५
सर्वव्यसननायिका ३.१५.११
सर्वव्यसननिर्मुक्ताः १.९१
सर्वशः ३.१५.५
सर्वश्रुतम् ३.१२.१५
सर्वसम्पत्प्रवर्द्धनी ३.२.१०
सर्वस्वम् २.२.२९, ३.४.१०
सर्वस्वहरणम् २.२.२६, ३.१७.८
सर्वापराधानाम् ३.१४.२२
सर्वारिष्टविभेदने ३.१९.१
सर्वौषधिः ४.१.६
सवर्णाः ३.५.६५, -याम् ३.५.३९, ३.५.४०
सवत्सानाम् ३.९.३
सविस्तारौ २.१.५५
सवृद्धिधनदानाद् ३.७.१०
सव्ययम् ३.२.१७
ससाक्षिकम् ३.२.५४
सस्नेहाम् ३.१९.३५
सहचारिणः २.१.६४
सहसाकर्म ३.१७.२
सहसाकृतिम् ३.२.३८
सहस्तौ २.१.५५

सहस्ररजतैः ३.१४.१८
सहोढजः ३.५.७१
साक्षिणः ३.१.४४, ३.१.४८, ३.१.५८, ३.६.६, ३.६.१९, ३.६.२०, ३.१०.३०, ३.१०.४०, -णाम् ३.१.५२, ३.२.५९, ३.१०.४०, -णो ३.१.४२, ३.१.४३, ३.१.५६, ३.१.५७, ३.१.६०, ३.६.२, -णौ ३.१.६३, -नामानि ३.१.४९, -भिः ३.५.१२८, ३.१८.१३
साक्षिकर्मणि ३.१.५८
साक्षिणस्त्रयः ३.१०.३३
साक्षितः ३.१६.१६
साक्षिता ३.२.५८
साक्षिनिर्णये ३.२.६२
साक्षिनिश्चित ३.१०.२६
साक्षियोग्यता ३.१०.४१
साक्षिसाक्षी ३.१०.३१
साक्षी ३.१.४९, ३.१.५१
साक्षीसाक्षी ३.१.६२, ३.१०.२७, ३.१०.२८, ३.१०.३५, ३.१०.३८, ३.१०.४०
साक्ष्यताम् ३.१.४३
साक्ष्यदायकः ३.१०.४०
साक्ष्यभावे ३.६.१४
साक्ष्यम् ३.१.४७, ३.१.५१
साक्ष्यमान्यः ३.१.५०
साक्ष्ययोग्यता ३.१.६१
साक्ष्यादिभिः ३.१०.११, ३.१०.२६, ३.११.८
साक्ष्यादिशपथैः ३.१०.१७
साक्ष्यादिहेतुभिः ३.१.५४
साक्ष्ये ३.१०.३४
साधनम् ३.१.४८
साधनाङ्गाम् ३.१.४१
साधयेत् ३.११.७
साधर्मिकानाम् ४.१.१८
साधारणम् ३.४.१०, ३.५.९६, ३.५.११८, ३.१३.५
साधुवृत्तयः ३.५.७६
साध्य ३.१.१३
साध्यधर्मेण ३.१.१२
साध्ये ३.७.२०
साध्वर्चनम् ४.१.४८
साम २.१.१२, २.१.१७
सामग्रीम् २.१.३२
सामदामादि १.७८
सामदामौ १.५५
सामन्तः २.१.३४, -न्ताः ३.६.२२, -न्तान् ३.६.७
सामयिकः ३.१३.४, -म् ३.१३.३
साम्ना २.१.१९
साम्यम् २.१.२८, ३.२.६३
सारम् १.६
सारथिः ३.१८.१८, ३.१८.१९, ३.१८.२१, -ना ३.१८.१७, -म् ३.१८.१५, -थेः ३.१८.२०, ३.१८.१८
सार्धकः ३.५.२७, -म् ३.१.१२
सार्द्धम् ३.१२.१२, ३.१९.३९
सार्द्धवर्षे ३.२.४८
सावहित्थस्य १. ८१
साहसम् ३.१७.२, ३.१७.५, -सेन ३.१७.३०, -स्य ३.१७.३३
साहसिकक्रमम् ३.१७.१

सिताकर्पासभस्मनाम् ३.१६.१९
सिद्धम् ३.१.१९, ३.१०.४१, -द्धे ३.७.२२
सिद्धासिद्धौ २.१.२४
सिद्धिम् ३.१.३७, -दः ३.१.१
सिंहाहिविद्युदाग्नै ३.९.९
सीमा ३.६.२, -म् ३.६.२४, ३.६.२५, -याः ३.६.१५
सीमाचिह्नानि ३.६.२६
सीमाज्ञाने ३.६.१
सीमानिर्णयः ३.६.१
सीमानिर्णयकर्मणि ३.६.१६
सीमाभञ्जनपूर्वकम् ३.१७. ११
सीमावादम् ३.६.१७, -दे ३.६.५, -स्य ३.६.३२
सीमासन्धिषु ३.६.१३
सीमासंवादनिर्णयम् ३.६.९
सीमास्थलम् ३.६.१२
सुकुलोद्भवम् ३.५.८८
सुखबोधम् १.७
सुखमक्षयम् ३.१.११
सुखमिच्छता ३.२.४४
सुखानि ३.१०.१
सुखार्थम् ३.५.८८
सुगुरुम् ३.५.६१
सुजनस्य १.४४
सुतः ३.२.६३, ३.५.२९, ३.५.१०२, ३.५.११६, ३.५.१३०, -तान् ३.१७.१६, -ते ३.५.१०३, -तेन ३ २.२२, -तो ३.१.२५, -म् ३.१९.९, -स्य ३.५.३०
सुतराम् ३.१.५३, ३.५.३२
सुताभावे ३.५.१२५
सुतायाः ३.५.३०, -यै ३.५.१२२
सुतासुतम् ३.५.५४
सुतोत्पत्तिः ३.१९.२३
सुतोद्भवः ३.५.७०
सुधीः ३.१४.२३, ३.१९.४४, ४.१.४९
सुन्दरम् ३.१९.२
सुप्ताम् ३.१९.३९
सुबन्धुभिः ३.५.१३०
सुमतिम् ३.२.१
सुमुहूर्त्ते ३.१९.३६
सुमेधसा ३.१९.४७
सुरभिः ३.९.२
सुरासुरनृयोनिभिः ३.१६.६
सुलभानि २.१.४२
सुविनीते ३.५.५१
सुवृद्धिकृत् ३.२.२
सुशय्यायाम् ३.१९.१५
सुशीलाप्रजसः ३.५.७६
सुसमाहितः १.७३
सुस्थिताः १.६०
सूक्ष्मसूत्रैः ३.८.११
सूच्या २.१.५१
सूतिकादयः ३.९.७
सूतो ३.१८.२२
सूत्तरम् ३.१.३१
सूत्रितम् ४.१.५१
सूपकारान् १.४५
सूर्जितम् २.१.११
सूर्याग्नि ३.१९.३४, ३.१७.१६
सेतुः ३.६.२८, ३.६.२९, -ना ३.६.१०
सेनागतिः २.१.४४
सेनाम् २.१.४२
सेनापतिः १.७५, १.७७, २.१.४०

सेवकाः ३.७.२, -कैः १.४०
सेवाम् ३.२.१४, -वया ३.५.१३३, -सु ३.५.१२, ३.५.५७,
सोदरः ३.५.३६, ३.५.७०, -रा ३.५.११९, -रेषु ३.५.९९
सोपधिचेष्टाः २.१.५८
सोम्नि ३.६.२०
सौतः ३.५.७०
सौत्रिके ३.८.१०
सौवर्णम् ३.२.३६, -र्णे ३.२.३६
सौविदल्लान् १.४५
सौहृदे ३.५.११२
स्कन्धावारः २.१.४१
स्तनन्धयाः ३.५.६५, -ये ३.५.८
स्तेन ३.१६.२६, -नो ३.१६.११
स्तेयस्य ३.१६.१६, -याद् ३.१६.११, -ये ३.१.२८
स्तैन्यकर्मणि ३.१८.२५
स्तैन्यकृत्ये २.२.२८
स्तैन्यतः ३.१६.१०
स्तैन्यप्रकरणम् ३.१६.१
स्तैन्यम् ३.१.७
स्तैन्यादिभयतो ३.१०.३
स्तैन्यादिभ्यो ३.१६.२
स्त्री ३.५.४३, ३.५.५८, ३.५.१०४, ३.८.४, ३.१९.४, ३.१९.६, -स्त्रियः ३.५.३७, ३.५.९७, ३.१०.३४, ३.१९.३०, -णाम् १.४९, ३.१०.३४, ३.१९.२२, ३.१९.२३, -भिः ३.१४.१२, -म् ३.२.१९, ३.१६.३०, -षु ३.१९.३१
स्त्रीचरित्रे ३.१.२८
स्त्रीधनम् ३.५.१४३, -नाम् ३.५.१४२
स्त्रीधनताम् ३.५.१३६
स्त्रीपुंधर्मविभागः ३.१.८
स्त्रीपुंधर्मव्यवहृतिः ३.१९.१
स्त्रीबालगर्भघाते ३.१.४७
स्त्रीमनोनुगम् ३.५.४६
स्त्रीस्वम् ३.५.१४४
स्त्रीपुंधर्मविचारो ३.१९.५१
स्त्र्याधीना ३.१४.१३
स्थविरा ३.१.२२
स्थानम् ३.१५.४, -नि २.१.५४, -ने ३.१४.६
स्थापनाज्ञा ३.५.१२३
स्थापनीयो ३.५.८८
स्थापयामि ३.१०.२३, -येद् ३.६.१४, ३.१६.१४, ३.१७.१७
स्थापितम् ३.५.४७, -तः ३.१०.३८, -तुम् ३.५.१०९, ३.५.१२१, ३.५.१२३
स्थाप्याः ३.६.१६, ३.१७.१४
स्थाप्यो ३.५.१३०, ३.१६.१६, ३.१६.१८
स्थावरम् ३.५.३, ३.५.५, ३.५.७, ३.५.८, -स्य ३.४.१५, ३.५.६, -राणि ३.५.४, -रे ३.१.१५
स्थितः ३.१४.४, -तानाम् ३.९.३, -तिः ३.१३.२, -तैः ३.१३.६
स्नपयेत् ४.१.४७
स्नात्वा ३.१९.६, ४.१.६
स्नानम् ३.१९.२८, ४.१.११, ४.१.४५
स्नानकाले ३.१९.७, ३.१९.९
स्नायात् ३.१९.४२, ३.१९.४३
स्नुषायै ३.५.१३९

स्नेह ३.१७.२९
स्पृहा १.९६
स्पर्शचुम्बनम् ३.१४.८
स्पृशन् ३.१७.१२
स्पृशेद् ३.१९.१०, ३.१९.४२
स्फुटम् ३.१.१२, ३.१.५१,
३.१.५२, ३.२.६
स्मार्या ३.१५.११
स्मृतम् ३.१७.५, -ता ३.२.९,
-ताः २.२.२, ति १.७, -तो ३.१.५०
स्मृतिहीना ३.५.७८
स्यन्दना २.१.७०
स्व ३.१.५७
स्वम् २.२.२५, ३.२.४, ३.२.५,
३.५.१२२, ३.११.३
स्वकन्यायै ३.५.८०
स्वकम् ३.७.२१, ३.१०.४
स्वकर्मफलम् ३.२.३३
स्वकर्माणि १.७६
स्वकीयकुलरीतिः ३.१९.२६
स्वकीयम् ३.१०.८, -ये ३.१५.४
स्वकुटुम्बात्मजम् ३.५.५४
स्वकोषात् ३.२.२०
स्वक्षेत्रविषये ३.२.३३
स्वगृहे ३.१५.१०
स्वच्छन्दविधवा ३.१७. १२
स्वजातितः ३.१७.१४
स्वजीविकार्थम् ३.५.९
स्वताातकरमुद्राङ्कम् ३.२.४९
स्वदापने ३.१५.८
स्वधर्मनिरता ३.५.१०४, -ताः ३.१०.३२
स्वधर्मम् ३.१३.३
स्वधर्मविच्युता ३.१६.२४
स्वनामयुक् ३.२.६
स्वनामाङ्कम् ३.५.४६
स्वपक्तिषु ४.१.७
स्वपतिना ३.१९.१५
स्वपर्यायानुसारतः ३.१९.१९
स्वपिता ३.१.१४
स्वपुत्रीप्रेमपाशतः ३.५.११४
स्वपुरम् २.१.७२
स्वपेत् ३.१९.४०
स्वपौरुषात् २.१.७०
स्वप्रजानाम् १.५०
स्वप्रजापालनम् ३.१६.२
स्वप्राणरक्षणम् १.८९
स्वबुद्ध्या ३.१९.२
स्वभावतः १.७७
स्वभर्त्रा ३.५.११०
स्वभावध्वस्तकल्मषम् ३.६.१
स्वभूमौ ३.१७.११
स्वभ्रातृभिः ३.५.९२
स्वमर्थी ३.१.५४
स्वमादत्ते ३.२.४३
स्वयम् २.१.१७, ३.१०.३८
स्वयमागतः ३.७.११
स्वयमानीतो ३.१०.३५
स्वरक्षार्थम् ३.५.४५
स्वरामाभूषणादिकम् ३.५.१३१
स्वराष्ट्र २.१.३१
स्वर्गम् ३.१६.८
स्वर्गगत ३.१६.२६
स्वर्णनिष्कतः ३.१८.६
स्वर्णरत्नादि ३.५.१४०
स्वर्णरौप्यादि ३.५.४
स्वलोभेन ३.१७.२९

स्वल्पान्तसंहतान् २.१.५१
स्ववित्तस्य ३.५.१२५
स्वविश्वस्तैः ३.५.४९
स्वसन्निवेशः ३.१.१४
स्वसाक्षि ३.२.६
स्वसृ ३.१७.१६
स्वस्तिकम् ३.५.६०
स्वस्त्रीकलङ्कभीत्या २.१.१८
स्वस्थः २.१.३, ३.१६.४, -स्थाः ३.१६.३२
स्वस्थचित्ता ३.१९.१५
स्वस्रादीन् ३.५.६२
स्वस्वत्वापादनम् ३.५.२
स्वस्वधर्मकः ३.५.१२०
स्वस्वपक्षसमर्थकः ३.१.४१
स्वस्वपक्षे ३.१.४३
स्वस्वामी ३.५.७३
स्वहस्तेन ३.१४.८
स्वहित ३.१४.२५
स्वा ३.१४.१२
स्वाज्ञाम् २.१.६५
स्वाधिकारपदच्युत ३.५.४९
स्वाधिकारम् ३.५.१२०
स्वाधीना ३.१९.४
स्वानुचरैः ३.१४.१०
स्वान्तध्वान्तनिवारकम् ३.१४.१
स्वापम् ३.१९.१२
स्वामि १.५६
स्वामिकार्य १.८३, १.९८
स्वामिकार्यहित ३.१०.११
स्वामिकार्ये १.६९
स्वामिगवेषणे ३.३.८, ३.३.८
स्वामित्वम् ३.५.९६
स्वामिदत्ताधिप ३.५.११०
स्वामिन् १.११, ३.१०.१०, -नम् २.१.२५, ३.१.६, ३.६.२९, ३.७.९, ३.७.२३, -ना १.९४, ३.५.४७, ३.७.१७, ३.८.८, -नि ३.२.४९, -नी ३.५.११४, ३.५.११५
स्वामिभृत्ययोः ३.९.१३
स्वामिभृत्यविवादो ३.९.१
स्वामिवाञ्छा ३.७.१९
स्वामिवित्तस्य ३.७.१९
स्वामी ३.१४.२२, ३.१८.१८, ३.१८.१९
स्वाम्यज्ञातकृते ३.११.३
स्वाम्यर्थसाधकम् १.१००
स्वाम्यसत्त्वे ३.११.२, ३.११.४
स्वाम्याप्तम् ३.११.१३
स्वार्थसिद्धये ३.५.७२
स्वांशम् ३.१५.५, ३.१५.१०, -शेन ३.१५.६
स्वीकृतो २.२.३
स्वीयधवाननम् ३.१९.१३
स्वीयभर्तृपदे ३.५.१२३
स्वीयम् ३.७.१४, -यात् ३.१०.२५
स्वीयार्जितम् ३.५.८
स्वौरस ३.५.५६
हरणम् ३.४.१३, -णे ३.१६.१५
हर्ता ३.१०.२१, ३.१६.१८, ३.१६.२०, -र्तुः ३.१६.१३
हर्षेण २.१.७२
हलवाहनम् ४.१.४३, -ने ४.१.४३
हस्तौ २.१.२४
हस्त्यश्वादि ३.२.६१
हानिः १.६९, २.१.३०, ३.८.७
हानीरजतस्य ३.८.९
हिंसा १.२०

हितम् ३.१२.१८
हितवादिवचो ३.१३.६
हिताहितम् १.१०१
हिताहितविचारणम् २.१.२
हितेच्छुभिः १.४३
हिरण्यधान्यवस्त्राणाम् ३.२.१८
हिरण्यरजतादीनाम् ३.१६.१३
हीनः ३.१.३६, -नेन २.१.३०
हीनपक्षकाः ३.१.२२
हृतम् ३.२.३२, ३.५.१३२, -ते ३.२.४३
हृष्टत्वम् २.१.५८
हेतुना ३.१४.५, -भिः ३.१०.२४

—o—

Kalikālasarvajña Ācārya Hemacandra's

LAGHVARHANNĪTI

(Text with commentary, variant readings, Hindi translation and appendices)

Editor
Ashok Kumar Singh

राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन
॥ विज्ञानमुपास्व ॥
National Mission for Manuscripts